सात्विक-जीवन-ग्रन्थमाला—नवम पुष्प

मन और उसका निग्रह

द्वितीय भाग

लेखक—

श्री स्वामी शिवानन्दजी सरस्वती

अनुवादक—

श्री द्वारकानाथ झिंगन्

एम० ए०, एल-एल० बी०, एडवोकेट, देहली

प्रकाशक—

जेनरल प्रिण्टिङ्ग वर्क्स लिमिटे

८३, पुराना चीनाबाजार स्ट्रीट,

कलकत्ता।

प्रथम बार] १९४४ [मूल्य ३)

ॐ

महर्षि पतञ्जलि

की

पुण्य स्मृति

को
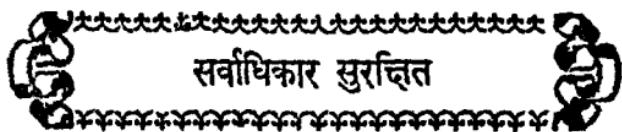
जिन्होंने अपने योग सूत्रोंमें
मनोनिग्रह के उपायों का
सफल दिग्दर्शन
कराया है।

ॐ

ॐ

सद्गुरु स्तोत्र

ॐ ब्रह्मानन्दं परमसुखदं केवलं ज्ञानमूर्ति
द्वन्द्वातीतं गगनसदृशं तत्वमस्यादिलक्ष्यम् ।
एकं नित्यं विमलमचलं सर्वधीसाक्षिभूतम्
भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्गुरुं तं नमामि ॥

अर्थ—मैं सद्गुरु ब्रह्मको प्रणाम करता हूँ, जो आनन्दस्वरूप हैं, परमानन्दका देनेवाला है, जो अद्वितीय है, ज्ञानस्वरूप है, सुख-दुःखके द्वन्द्वोंसे ऊपर उठा हुआ है, जो सूक्ष्मता और सर्वव्यापकतामें आकाश सदृश है, जो तत्वमसिका लक्ष्य है, शाश्वत, पवित्र, अचल और सर्वद्रष्टा है, जो ध्यान और अनुभवसे परे त्रिगुणातीत है ।

यस्यान्तो नादि मध्यं न हि करचरणं नामगोत्रं न सूत्रं
नो जातिर्नैव वर्णो न भवति पुरुषो नो न पुंसं न च स्त्री ।
नाकारो नो विकारो न हि जमिरणे ना पुण्यं न स्त्री पापं
नो तत्त्वं तत्त्वमेकं सहजसमरसं सद्गुरुं तं नमामि ॥

अर्थ—मैं उस सद्गुरुको प्रणाम करता हूं जिसका न आदि है, न मध्य है और न अन्त है, जिसके न हाथ है, न पांव है, न नाम है और न गोत्र है, जिनका वंश, श्रेणी या जाति कुछ भी नहीं है, जिसका न रूप है, न परिवर्तन है, जन्म है, न मृत्यु है, न पाप है, न पुण्य है, न तत्व है । परन्तु जो एक सत्ता है जो नैसर्गिक रूपेण समचित्त वृत्ति ली है ।

अनुवादकके दो शब्द

योगिराज परमहस श्री स्वामी शिवानन्दजीकी यह मनोविज्ञानकी शास्त्रीय कृति वेदान्त और योगके विषयमे मनोनिग्रहके लिये अनुपम और परमोपयोगी है। हिन्दी साहित्यमें ऐसी पुस्तककी आवश्यकताका अनुमान करके इसका भाषान्तर करनेका बाल प्रयास किया है। हिन्दी-प्रेमी जनता इसको कहाँ तक अपनायेगी यह भविष्यके गर्भमें है।

इसको पूर्ण करनेमें मुख्य सहायक श्री स्वामीजी महाराजकी प्रेरणा और कृपा है। पाश्चात्य मनोविज्ञानके समानार्थक पारिभाषिक शब्दोंका भाषामें पर्यायवाची शब्द सुगमतासे नहीं मिल सका। इसलिये कहीं-कहीं कठिनाई उठानी पड़ी है। फिर भी भाषाको सरल और सुबोध रखते हुए श्री स्वामीजीके आशयको सुरक्षित रखनेका प्रयत्न किया है। उदार चित्त साहित्यिक विद्वज्जन इस पुस्तककी त्रुटियोंको क्षमा करके आगमी प्रकाशनोंमें इसके सुधारके लिये अपनी सम्मति प्रदान करते रहें, यही मेरी हार्दिक प्रार्थना है।

श्री स्वामीजीके शब्दोंमें "यदि इसके पाठकोंमेंसे एक भी सज्जन सच्चे निश्चय पूर्वक सत्य और आत्म-साक्षात्कारके पथपर चलनेकी चेष्टा करने लगे तो यह प्रयास सफल माना जावेगा।"

ईश्वर करे इस पुस्तकके हिन्दी प्रकाशनसे भाषा पाठी जनता सच्चा लाभ उठाकर मन पर प्रभुत्व प्राप्त कर सकें।

कटरानील, दिल्ली
कार्तिक कृ० २, स० १९९९
२५ अक्टूबर १९४२

विनीत सेवक
द्वारकानाथ झिंगन्

प्रकाशकका वक्तव्य

आज अध्यात्म-प्रेमी, श्रद्धालु, मननशील पाठकों और कला-कोविदोंके पाणिपल्लवोंमें सात्विक-जीवन-ग्रन्थमालाके नवम पुष्प "मन और उसका निग्रह २ य भाग" को समर्पित करते हुए हमें अपार हर्ष हो रहा है।

जीवनको उन्नत बनाने वाले, दिव्यानन्द, प्रेम और पवित्रताकी सद्भावनाओंसे भरने वाले धर्म-प्राण आध्यात्मिक साहित्यकी सस्कृतमें भरमार है, परन्तु अभी हिन्दीमें इस प्रकारके आध्यात्मिक साहित्य का बहुत अभाव है, इसी विचारको दृष्टिमें रखते हुए और प्रेमी पाठकोंकी सेवाके पवित्र भावसे प्रेरित होकर ही, इस मँहगीके जमानेमें हमने यह ग्रन्थरत्न प्रकाशित करनेका साहस किया है।

पाठकों द्वारा प्रस्तुत पुस्तकके प्रथम भागका सहृदयता और उत्साह-पूर्ण स्वागत किए जानेपर तथा अपने कई लब्ध-प्रतिष्ठ, साहित्यिक विद्वान् मित्रोंके सतत अनुरोध पर हम इस २ य भागको जो ध्यान योगके क्रियात्मिक दृष्टि-विन्दुसे अधिक महत्व पूर्ण है, प्रकाशित करनेका लोभ सवरण न कर सके।

प्रस्तुत पुस्तकमें अनेक आध्यात्मिक ग्रन्थोंके प्रणेता, अध्यात्म-विद्याविशारद योगिराज श्री स्वामी शिवानन्दजी सरस्वतीने मनकी रचना, उसकी कार्य विधि, उसकी अलौकिक शक्तियां तथा उनको समुचित प्रयोग द्वारा दिव्यानन्दकी प्राप्तिका वर्णन आदि बड़े विस्तृत सुबोध और सरल ढगसे किया है। सक्षेपमें यह पुस्तक मनकी फिलासफी पर एक छोटा सा इनसाईक्लोपीडिया है, जिसमें विद्वान् लेखकने अपने गम्भीर अध्ययन और यौगिक आत्मानुभवके आधार पर मनके समस्त रहस्योंका उद्घाटन किया है। इस ससारमें जितने भी उच्च कोटिके साधक, सन्त महात्मा हुए हैं, उनका कहना है कि यह दुनिया मनका खेल है। मन ही मनुष्योंके बन्धन और मोक्षका कारण है। यदि आप विश्व विजय करना चाहते हैं, तो सबसे पहले मन पर चढ़ाई करो। मनकी विजयके उपरान्त ससारकी किसी अन्य वस्तुके विजयकी आवश्यकता नहीं रहती। मनकी बादशाहत ही सच्ची बादशाहत है। जिसने श्रवण, मनन और निदिध्यासनके सतत अभ्याससे मनको वशमें कर लिया है, जो धारणा, ध्यान और समाधिकी दिव्यानन्दकी सरितामें गोते लगा चुका है, उस महापुरुषके लिए राजाधिराजोंका सिंहासन भी तुच्छ और निर्मूल्य है। सत्य, शिव, सुन्दरके पुनीत ध्येयकी ओर अग्रसर होनेवाले जिज्ञासु साधकके लिए, जहां यह पुस्तक परम उपयोगी है, वहां साधारण संसारी पुरुषोंके लिए भी इस पुस्तकका कम महत्व

नहीं है। साधारण गृहस्थ इस पुस्तकके श्रद्धापूर्वक अध्ययन और तदनुकूल आचरणसे अपने दैनिक जीवन और सांसारिक व्यवहारोंमें क्रान्तिकारी परिवर्त्तन ला सकते हैं।

प्रस्तुत पुस्तकका अनुवाद आदरणीय स्वामीजीके श्रद्धावान् शिष्य श्री द्वारकानाथजी भिंगन M A L-L, B. ने, जिन्होंने निरन्तर श्री स्वामीजी महाराजके सपर्कमें रहकर अध्यात्म विद्याके गूढ़ तत्वोंका विवेचन किया है। विद्वान् लेखकको अनुवादमें पूरी-पूरी सफलता प्राप्त हुई है, इसमें तिल मात्र भी सन्देह नहीं है। पुस्तककी भाषा अत्यन्त सरल, सुबोध, सरस और माधुर्यसे भरी हुई है। कहीं-कहीं कविताकी धारा स्वच्छन्द, मस्त सरिताकी तरह बहती चली जाती है। पुस्तकके कई अश इतने प्रभावशाली है कि पढ़ते ही हृदय सागरमें अनिर्वचनीय आनन्दकी उत्ताल तरङ्गे उठने लगती है। पुस्तककी भाषा हृदय-स्पर्शी है, और उसमें इतनी ताकत मौजूद है कि वह दिलोंको हिला सके, दिमागोंमें परिवर्त्तन कर सके। इस सफल अनुवादके लिये हम श्री भिंगनजीको अन्तस्तलकी कोमल भावनाओंके साथ हार्दिक धन्यवाद देते हैं और आशा करते हैं कि भविष्यमें इसी प्रकार स्वामीजीके अन्य ग्रन्थोंका सुललित अनुवाद कर हमें वे हिन्दी ससारकी सेवाका स्वर्णावसर प्रदान करेंगे।

भारत वर्षकी विख्यात् आध्यात्मिक ग्रन्थ-प्रकाशन-सम्बन्धी संस्था गीता प्रेस गोरखपुरको भी हम धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकते जिन्होंने मूल पुस्तक अंग्रेजीमें प्रकाशित की है। उनकी ही कृपासे आज हम यह पुस्तक हिन्दी प्रेमियोंके सामने रख रहे हैं।

आशा है, प्रेमी पाठक प्रस्तुत पुस्तकसे लाभ उठायेंगे; इसीमें मेरे प्रयासकी सफलता है।

कलकत्ता
होलिकादहन सं० २०००

—रलियाराम गुप्त

प्रस्तावना

ॐ सद्गुरु परमात्मने नमः

मनुष्य अविद्याका तीन ग्रन्थियों—अज्ञान, इच्छा और कर्मके कारण, जन्म,जरा, मृत्यु और रोगकी निरन्तर बहनेवाली धारामें गिरता रहता है। बाह्य पदार्थोंको देखने और ऐहलौकिक तथा पारलौकिक आनन्दोपभोगकी ओर मनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति आत्म-साक्षात्कारमें बाधक है। वह परब्रह्म, अन्त. नियन्त्रक, विनश्वर पदार्थोंमें अविनाशी, अनित्योंमें नित्य और अचेतनोंमें चेतन भगवान् सब प्राणियोंके हृदय-मन्दिरमें विराजमान है। जो उस भगवान्के दर्शन कर लेता है वह शाश्वत शान्ति और दिव्यानन्द प्राप्त करता है।

आत्मा या ब्रह्म प्रत्येक प्राणीमें छिपा हुआ है परन्तु वही इसके दर्शन कर पाता है जिसका मन शुद्ध पवित्र और उसके पूर्ण नियन्त्रणमें है।

मनके दृढ़ नियन्त्रणका नाम योग है। योग एकता है। योग भगवान्के साथ समरसता है। जब पांचों इन्द्रियों सहित मन शान्त हो जाता है तभी परमानन्द अनन्त ज्ञान, अमरता और परम शान्तिकी उपलब्धि होती है। जिसका मन पर पूर्ण शासन है, वह अपने जीवनके लक्ष्यको सुगमतया प्राप्त कर लेगा क्योंकि इस शरीर रथको खींचने वाली इन्द्रियां उसके लिए अच्छे घोड़ोंकी तरह अपना कार्य सपादन करेंगी।

जिसने मनके स्वभाव और क्रिया पद्धतिको पूर्णतया समझ लिया है, उसके लिए मनोनिग्रह बड़ा सरल है। सम्पूर्ण साधनाका लक्ष्य मनोजय है जिससे आत्म-ज्ञान मिलता है और जीव जन्म-मरणके बन्धनसे छुटकारा पा लेता है।

इस पुस्तकमें मनको नियन्त्रित करनेके कुछ क्रियात्मिक उपाय बतलाए गए हैं। इसलिए यह आत्म-साक्षात्कारके पथ पर चलनेवाले साधकोंके लिए बड़ी सहायक सिद्ध होगी। संस्कृत शब्दोंके हिन्दी भावार्थ साथ-साथ दे दिया गया है। यथासम्भव विशिष्ट परिभाषाओंके निवारणका प्रयत्न किया गया है। मनको नियन्त्रित करनेके योगके विभिन्न उपायोंका सरल, सुबोध भाषामें वर्णन किया गया है। यह पुस्तक निरन्तर, तीव्र अध्ययनके लिए है क्योंकि इसमें योगके साधकोंके लिए क्रियात्मिक, अनुभव, निर्देश और सुझाव है।

यदि कोई भी पाठक इस पुस्तकके अध्ययनसे सत्य और आत्म-साक्षात्कारके पथ पर आरूढ़ हों तो मैं अपने प्रयत्नोंको धन्य समझूंगा।

दिव्य प्रकाश सबमें पूर्ण रूपसे चमके। आनन्द, अमरता, शान्ति और दिव्य शोभा सबमें सदाके लिए विराजमान रहे।

ॐ ॐ ॐ

—स्वामी शिवानन्द

विश्व-प्रार्थना

ऐ दया और प्रेमके सिन्धो ! आनन्द और ज्ञानके स्रोत प्रभो ! आप हमारे नेत्रोंके नेत्र हैं, श्रोत्रोंके श्रोत्र हैं, प्राणोंके प्राण हैं, मनोंके मन हैं और आत्माओंके आत्मा हैं। हे प्रभो ! आप सबको देखते हो परन्तु हम आपको नहीं देखते, आप सब कुछ सुनते हो परन्तु हम आपको नहीं सुनते, आप सबका विचार करते हो, परन्तु हम आपका विचार नहीं करते, आप सर्व ज्ञाता हो, परन्तु हम आपको नहीं जानते। प्रभो ! हमें सब प्रलोभनोंसे मुक्त करो। हमें प्रकाश पवित्रता और ज्ञानका दान दो।

हे प्रभु प्राणनाथ, विभु-विश्वनाथ ! हमारी प्रार्थना स्वीकार करो, -हमारा पथ-प्रदर्शन करो। हमें ससारके पङ्कसे बाहर निकालो हमें प्रकाशित करो। हमारी रक्षा करो। हम केवल आपकी ही अर्चना करते हैं, हम केवल आपका ही ध्यान करते हैं और आपकी शरणमें आते हैं।

ॐ तत्सत्

शान्ति-मन्त्र

ॐ॥ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाँसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः ॥

अर्थ—हे देवो! हम अपने कानोंसे सुन्दर शब्द सुनें, हे पूजनीय देवताओ! हम अपने नेत्रोंसे सुन्दर, भव्य दृश्य देखें; अपने सुदृढ़, सुगठित शरीरोंसे जीवनके आनन्दका उपभोग करें।

ॐ शान्तिः। शान्तिः॥ शान्तिः॥

हरि ॐ तत्सत्

विषय सूची

प्रथम परिच्छेद

द्वितीय परिच्छेद

तृतीय परिच्छेद

चतुर्थ परिच्छेद

श्री स्वामी शिवानन्दजी सरस्वती

मन और उसका निग्रह

दूसरा भाग

प्रथम परिच्छेद

१—ईश्वर कौन है ?

ईश्वर सत्य है, प्रेम है, ज्योतियोंकी ज्योति है, शान्ति है, ज्ञान है, आनन्द-विग्रह है। ईश्वर सच्चिदानन्द है। अनन्त है, अमृत है, असीम है। ईश्वर अविनाशी है, परम

वस्तु है। ईश्वर सर्वव्यापी तत्व है। ईश्वर ही सार वस्तु है और अकथनीय सौन्दर्य है।

वह अद्वितीय परमात्मा जो आपके हृदय-कोषमें अन्तर्यामी, सूत्रधार साक्षी, अन्तरात्माके रूपमें निवास करता है, जो आदि, मध्य और अन्त रहित है, जो इस संसारका, वेदोंका, शरीर, मन, इन्द्रियों और प्राणोंका स्रोत है, जो सर्वव्यापक, निर्विकार है, जो सदा एक रस है, जो सर्वकालमें विद्यमान स्वयम्भू है, जो स्वतन्त्र स्वयं ज्योति है, वही ईश्वर है, आत्मा है, ब्रह्म है, पुरुष है, चैतन्य है, भगवान् या पुरुषोत्तम है।

नित्य सुख, परम शान्ति, नित्य तृप्ति, अनन्त अखण्ड सुख केवल ईश्वरमें ही प्राप्त हो सकता है। इस ईश्वर ज्ञान, आत्म साक्षात्कार या ईश्वर दर्शनको अनन्य भक्ति या विचार द्वारा प्राप्त करो। यही जीवनका लक्ष्य है। यही आपका परम धर्म है, और सारे धर्म गौण हैं।

ईश्वर नियामक, अन्तर्यामी और प्रेरक भी है। वह साधकोंकी अनेकों प्रकारसे सहायता करता है। स्वप्न द्वारा, अन्तरकी पुकारसे, दूसरोंके मुख द्वारा नित्यकी बात-चीतसे या मित्रोंके परामर्शके द्वारा भी।

सृष्टि (रचना), स्थिति (पालन करना), संहार

(नाश करना), तिरोधान (छिपाना) और अनुग्रह (आशीर्वाद देना) यह ईश्वरकी पंच-क्रिया हैं (पांच प्रकारके कार्य) हैं।

ईश्वर या भगवान् दोनों ही नाम परमात्माके हैं। जिसमें ज्ञान, वैराग्य, यश, ऐश्वर्य, श्री और धर्म अपने पूर्णरूपसे स्थित हों वह भगवान् हैं।

सर्वज्ञत्व, सर्वेश्वरत्व, सर्वान्तर्यामित्व, सर्वकारणत्व, सर्वनियन्तृत्व, सर्वकर्तृत्व, सर्वशक्तिमत्व, और स्वतन्तृत्व ये आठ लक्षण ईश्वरके हैं।

वायु पुराणके अनुसार:—सर्वज्ञता, स्वतंत्रता, सर्वदा शक्तिमत्ता, अनन्त ज्ञान, और असीम शक्तिमत्ता ये पाँच लक्षण परमात्माके बताये गये हैं।

ज्ञान, इच्छा-रहित होना, संयमकी शक्ति, पावन कर्म, सत्य, क्षमा, तितिक्षा, सृष्टि रचना; आत्मज्ञान और समस्त क्रियाओंकी आधार भूमि होना ये दश अव्यय लक्षण सर्व सुखमूल परमात्मामें सदा निवास करते हैं।

२—मनकी बाते।

मन न केवल प्रतिदिन बनता है अपितु सर्वदा बनता है। यह बिज्जूकी तरह प्रतिक्षण अपना रंग और आकार बदलता रहता है। यह अत्यन्त चञ्चल और अस्थिर है।

सृष्टि रचने वाले ब्रह्माके सिवाय और कौन इस मनकी आश्चर्यमयी शक्तिको समझ सकता है।

केवल मनके कर्म ही कर्म हैं शरीरके नहीं।

जब मनमें किसी वस्तुके लिये अति तीव्र अनुराग हो तो प्राणान्त होते हुए भी कष्टका सवेदन नहीं होगा। जब मन किसी पदार्थमें पूर्णतया निमग्न होवे तो और कौन शरीरकी क्रियाओंको देखेगा और इनसे दूर भागेगा ?

स्वभावत: सूक्ष्म विषयोंके अध्ययनसे जीवनका रूप ही बदल जावेगा। इससे सूक्ष्म विचार शक्ति बढ़ेगी। और जल्दी-जल्दी ऊपरी विचार द्वारा, एक पदार्थसे दूसरे पदार्थ पर कूद जानेकी आदतसे अगले जीवनमें अत्यन्त बेचैन बेढङ्गा मन मिलेगा।

अग्रिम विचार शक्ति द्वारा मन अनेक प्रकारकी मूर्तिया कल्पित कर लेता है। जब चित्रकार कोई चित्र बनाने लगता है तो अपने मनमें पहलेसे अङ्कित किसी चित्रसे ही सामग्री ले लेता है।

अति तीव्र रजोगुण सात्विकतामें बदल जाता है। डाकू रत्नाकार महर्षि वाल्मीकि बन गया। जगई और मधई जो अत्यन्त राजसिक थे और श्री गौराङ्ग महाप्रभु

पर पत्थर फेका करते थे, वे ही उनके सर्वप्रथम शिष्य वन गये।

मन एक पदार्थको विभाजित करता चला जाता है और अन्ततः वह अति सूक्ष्म परमाणु तक पहुच जाता है जिसे अंग्रेज़ीमे साइकोन Psychon कहते हैं।

मनके ये स्वभाव हैं—परिणाम या विकार (वदलते रहना), चेष्टा (क्रिया), निरोध (किसी विचारको दवा देना) और क्रियामे विचार शक्ति, जीवन और धर्म वनाना।

अग्निकी चिंगारीको यदि जल्दी-जल्दी घुमाया जावे तो वह अग्नि चक्राकार प्रतीत होने लगती है। इसी प्रकार यद्यपि मन एक समयमें एक ही कार्य कर सकता है सुनना, देखना या सूंघना और एक समयमें केवल एक ही प्रकारका संवेदन ग्रहण कर सकता है, परन्तु क्योंकि यह एक वस्तुसे दूसरी वस्तु पर इतनी शीघ्रतासे जाता है कि इसकी क्रमशः की हुई अनेक क्रियायें एक ही अवाधित क्रिया प्रतीत होती है और हमें यह विश्वास हो जाता है कि मन एक ही साथ कई-कई कार्य करता है।

सीमित या परिमित मनके द्वारा अनुभव या दर्शन

या पदार्थ ज्ञान क्रमशः होता है, एक साथ ही सहसा कई पदार्थोंका ज्ञान नहीं हो जाया करता। एक साथ अनेक विषयोंका ज्ञान केवल निर्विकल्प समाधिमें प्राप्त हो सकता है जिसमें भूत और भविष्य दोनों ही वर्तमान-कालमें लीन हो जाते हैं। केवल योगीको ही सारी वस्तुओंका एक साथ ज्ञान हो सकता है। संसारी मनुष्य जिसका मन सीमित है, वह तो क्रमशः ही ज्ञान प्राप्त कर सकता है। यद्यपि भिन्न-भिन्न इन्द्रियोंसे तत्तत्सम्बन्धी विषयोंका स्पर्श एक ही कालमें हो जाता है फिर भी मन द्वारपालका कार्य करता हुआ फाटकमें एक समयमें एक ही मनुष्यको आने देता है। एक समयमें एक ही प्रकारका संवेदन मानसिक प्रयोगशालामें यह द्वारपाल भेजता है जिससे सम्यग्दर्शनके फलस्वरूप सुन्दर आकृति तैयार होती है।

जब मन युद्ध-कार्यमें पूर्ण रूपसे संलग्न होता है तो योद्धाको गोली लगनेसे भारी आघातका अनुमान नहीं होता। उसे अधिक परिमाणमें रक्त बह जानेका भी ज्ञान नहीं होता। उसमें आवेश होता है। उतने समयके लिये वह अपने शरीरसे भी बेसुध होता है। जब वह आवेश बीत जाता है जब वह अपने वस्त्रोंपर खूनके धब्बे

देखता है या जब उसका कोई मित्र उसकी टांगके ज़ख्मको उसे दिखाता है तब उसे इसका ज्ञान होता है। तब उसे थोड़ासा भय प्रतीत होता है। अब अनुमान शक्ति विनाश करती है और वह अचेत होकर गिर पड़ता है। अनुमान शक्ति हमेशा बातको बढ़ा दिया करती है।

जब कभी दो मित्रोंमें मन-मुटाव हो जाता है तो उन दोनोंके मन नई २ बातें घड़ने लगते हैं और बातको बढ़ा देते हैं। एक दूसरेके दोष ढूंढ़नेका स्वभाव बढ़ जाता है। इन दोनों मित्रोंके वक्तव्यसे सत्य बात तक पहुचना बड़ा कठिन हो जाता है। उनकी बातें उनकी अपनी भावनाओंके रंगमें पगी हुई होती है। यहां भी अनुमान शक्ति विनाश करती है। माया मनके द्वारा और इसकी अनुमान शक्तिके द्वारा विनाश करती है।

मनमें तीन शक्तियां होती हैं—इच्छाशक्ति, क्रिया-शक्ति और ज्ञान शक्ति। मनमें एक वासना उठती है यह इच्छा शक्ति है। मन इस वासनाको तृप्त करनेका प्रयत्न करता है यह क्रिया शक्ति है। यह उसकी पूर्तिके उपाय सोचता है यह ज्ञान शक्ति है।

एन्डोक्रीन थैलियोंसे जिनमें नाली नहीं होती द्रव पदार्थ बनता रहता है। यह द्रव पदार्थ सीधा ही रक्तमें

मिल जाता है। इस द्रव पदार्थका प्रत्येक मनुष्यका स्वभाव बनानेमें मुख्य भाग होता है। मनुष्यका स्वभाव उसकी समीपवर्ती परिस्थिति, उसकी शिक्षा दीक्षा, और उसके अनुभवसे विशेषकर परिणत हो सकता है। परन्तु इसका बिल्कुल बदल जाना असम्भव है। इसी कारण गीतामें बताया है कि—

सदृशं चेष्टते स्वस्या प्रकृतेर्ज्ञानवानपि।

गीता ३-३३

जब दृष्टि बहिर्मुख हो जाती है तो द्रुतगामी घटनाओंके वेगमें मन व्यस्त हो जाता है। तब मनकी बहिर्मुख वृत्ति अपना कार्य करने लगती है। अत्यन्त उन्नत मनुष्यका मन भी उसी प्रकार मन ही रहता है अर्थात् अपने गुण और धर्मको नहीं छोड़ता जैसा कि साधारण मनुष्यका मन।

मनकी सूक्ष्म क्रियाओंको समझनेके लिये मैंने कई वर्ष लगा दिये। अनुमान शक्तिके द्वारा मन विनाश करता है। अनेक प्रकारके अनुमानगत भय, बातको बढ़ा कर बताना, निर्मूल बातको घड़ना, मानसिक कल्पनासे नाटककी-सी घटनायें घटाना, मनोराज्य बनाना, यह सब कार्य अनुमान शक्ति करती है। मनकी

कल्पना शक्तिके कारण पूर्णतः स्वस्थ मनुष्यको भी कोई न कोई कल्पित रोग होता ही है। किसी मनुष्यमे कोई तनिकसी दुर्बलता (त्रुटि) होवे तो जब वह आपका शत्रु बनता है आप तुरन्त ही उसकी त्रुटियों और दोषोंको वामन अवतारकी भाति बढ़ा देते हो, और आप बहुतसे अनेक दोषोंका उसमें आरोप कर देते हो। यह दूषित कल्पनाके कारणसे होता है। कल्पित भयके कारण बहुतसी शक्ति क्षीण हो जाती है।

(विश्वास, तर्क, ज्ञान और श्रद्धा यह चार मुख्य २ मानसिक क्रियायें हैं।) पहले आपको किसी चिकित्सकमें विश्वास होता है और आप उसके पास रोग निदान और चिकित्साके लिये जाते हो। वह आपकी भली प्रकार परीक्षा करके कुछ औषधि निश्चित करता हैं। आप दवाई खाते हैं और तर्क करते हो कि अमुक रोग है। डाक्टरने लोह और आयोडाइड दिया है। लोहेसे रक्तमें उन्नति होगी और आयोडाइडसे जिगरकी वृद्धि रुकेगी। एक मास तक यह दवाइयां खानेसे रोग चला जाता है तब आपको ज्ञान होता है और उस औषधि और चिकित्सकमें पूर्ण श्रद्धा हो जाती है। और आप अपने मित्रोंको भी उसी डाक्टरके पास जानेके लिये कहते हो।

"मेरा मन कहीं और था मैंने सुना नहीं। मेरा ध्यान नहीं था मैंने देखा नहीं॥" इससे प्रकट होता है कि मनुष्य मनके द्वारा सुनता है और मनके द्वारा देखता है। कामना, निश्चय, अनिश्चय, विश्वास, अविश्वास, स्थिरता, अस्थिरता, लज्जा, बुद्धि, भय ये सब कुछ मनमें ही होते हैं। इसलिये जब पीछेसे स्पर्श किया जावे तो मनुष्य मनके द्वारा जानता है।

अब हम आपको मनका नाटक समझाते हैं। मनकी रीति देखिये। अपने मित्रोंसे वार्तालाप करते हुए कभी आपका मन व्यर्थ कल्पना करता है कि आपके मित्रके भावोंको ठेस पहुची है। तब यह अनावश्यक भावनामें बहुत शक्तिका अपव्यय कर देता है। आप सोचते हैं "कल सवेरे मैं उससे किस प्रकार मिल सकता हूं। शायद वह मुझसे नाराज़ हो।" अगले दिन प्रातः काल जब आप उससे मिलते हो तो कुछ भी नहीं होता। आपका मित्र आनन्दप्रद वार्तालाप प्रारम्भ कर देता है और मुस्करा कर आपसे मिलता है। आपको आश्चर्य होता है कि वार्तालापका रंग कुछ और ही बदल जाता है। जब महामारी (प्लेग) का प्रकोप होता है तो गृहस्थी मनुष्य विचार करता है "यदि अब मेरी स्त्रीको

'प्लेग हो गया और वह मर गई तो मैं क्या करूंगा।" मेरे छ: बच्चे है। यह उसकी वृथा कल्पना होती हैं। कुछ भी नहीं होता। कभी २ जब श्रीरामेश्वरम्‌के निकट समुद्रके ऊपर पम्बन पुलपर रेलगाड़ी मन्दगतिसे चलती है तो मन सोचता है "यदि अब पुल टूट जावे तो मेरा क्या हाल होगा। मेरे तो टुकड़े २ हो जावेंगे। उसी समय भयका संचार हो जाता है।" इनके ही समान हजारों रीतियोंसे मन नाटकके दृश्य घड़ा करता है। इसमे कल्पना शक्तिका बहुत मुख्य भाग होता है।

समय भी मनका रूप है। यह काल शक्ति है। यह भी अन्य पदार्थोंकी भांति भ्रम मूलक है। (जब) आपका मन गम्भीरतासे एकाग्र होता है तो दो घन्टेका समय पांच मिनिटके समान प्रतीत होता है। यदि मन चञ्चल और अस्थिर हो तो आधा घन्टा भी दो घन्टेके समान हो जाता है। यह प्रत्येक मनुष्यके अनुभवकी बात है। स्वप्नमें भी बहुतसी घटनाये जो पचासों वर्षोंमें पूरी होने वाली हैं दस मिनिटमें हो जाती हैं। मनकी लीलाके द्वारा एक कल्प क्षणमात्र प्रतीत होता है और क्षणमात्र समय कल्पसम बीतता है।

देखिये! एक संकल्पका ही थोड़ेसे समयमें कैसा

विस्तार हो जाता है। मान लीजिये आपके मनमें मित्रोंकी चाय गोष्ठी करनेका संकल्प उठता है। चायके एक विचारके साथ २ एकदम ही चीनी, दूध, प्याले मेज, कुर्सिया, मेजपोश, रुमाल, चमचे, मिठाइया नमकीन आदि अनेक पदार्थोंके विचार आ जाते हैं। यह ससार संकल्पोके विस्तारके सिवाय और है क्या? मनके विचारोंका पदार्थोंकी ओर विस्तार कर लेनेसे ही बन्धन हो जाता है। संकल्पोंका त्याग ही मोक्ष है। आपको सदा सचेत रहना चाहिये कि जैसे ही मनमें संकल्प उठे वैसे ही उसे नष्ट कर दो। तभी आप सचमुच सुखी होगे। मन छल करता है। आपको उचित है कि इसके स्वरूप स्वभाव और क्रिया रीतिको भली प्रकार समझ लो। तब आप इसे बड़ी सुगमतासे वशमें कर सकोगे।

मनकी छलनासे एक फरलाग भी बहुत दूर प्रतीत होता है तीन मील बहुत निकट लगते हैं। आपने नित्यके व्यवहारमें यह तो देखा होगा।

मन जिस पदार्थको तत्परतासे सोचता है उसीका रूप बन जाता है, सन्तरेका ध्यान करता है तो सन्तरेका रूप बन जाता है, वंशीधारी भगवान श्री कृष्णका ध्यान करता है तो उनका ही रूप बन जाता हैं। आपको उचित

है मनको यथावत् सधाओ और इसके सामने उचित रूपसे सात्विक पदार्थ ही रखो। सात्विक मानसिक मूर्ति ही रखनी चाहिये।

यदि आप सन्यासियोंकी संगतिमें रहो, योग और वेदान्तकी पुस्तकें पढ़ो तो भगवत ज्ञान प्राप्त करनेके लिये मानसिक संलग्नता उपजती है। परन्तु केवल इस मानसिक संलग्नता ही से आपको अधिक सहायता नहीं मिलेगी। तीव्र वैराग्य और उग्र मुमुक्षत्व, तथा आध्यात्मिक साधनके लिये शक्ति, तत्परतासे निरन्तर अभ्यास और निदिध्यासनकी आवश्यकता है। तब कहीं आत्म साक्षात्कार संभव हो सकता है।

जैसे स्थूल शरीर ठोस, द्रव तथा वाष्पमय पदार्थोंसे बना हुआ है, इसी प्रकार मन भिन्न २ प्रकारके सूक्ष्म द्रव्योंसे बना हुआ है और उनके कम्पनकी गति भिन्न भिन्न होती है। राजयोगी तीव्र साधनाके द्वारा मनके भिन्न २ स्तरोंको भेदन कर देता है।

मन बाह्य जगतके रूपमें प्रकट होता है। कर्ता रूपसे मन चेतन है और पदार्थ रूप (कार्य रूपसे) यही मन यह संसार है।

लिंग शरीरमें मन बड़ी द्रुत गतिसे सारे कर्म करता

है और इसीसे अस्थिर रहता है परन्तु स्थूल शरीरमें यह कुछ भी नहीं जानता और निश्चेष्ट रहता है।

अनन्तरूप आत्मा संकल्पके द्वारा जो रूप बनता है वह मन है। मन ही परब्रह्मकी शान्त अवस्थाको प्राप्त करता है। पहले इसने विवेकसे पीठ मोड़ी और इसलिये पदार्थोंकी वासनाओंके पर्तमें फंस गया।

अर्धपरिपक्व ज्ञानीके मनको वासनाओंका त्याग करते हुए बडी तीव्र वेदना होती है। यह प्रार्थना करके उन्नत आत्माओंसे सहायताकी याचना करता है।

जब मन निर्मल ब्रह्ममें लीन होता है उस समय इसे जो सुख अनुभव होता है वह शान्त और मधुर हंसी द्वारा प्रकट होता है।

मन सर्वदा डोलायमान और विकार युक्त रहता है। यह मनकी चञ्चल प्रकृति अनेक प्रकारसे प्रकट होती है। मनकी इस चञ्चल वृत्तिको रोकनेके लिये आपको सचेत रहना होगा। गृहस्थीका मन सिनेमा, थियेटर, सरकस आदिमें भ्रमता है। साधुका मन काशी, वृन्दावन और नासिकमें डोलता है। बहुतसे साधु साधना कालमें एक स्थान पर स्थिर होकर नही रहते।

मनके चञ्चल स्वभावको एक ही स्थान पर रहकर,

एक ही साधन पथपर चलकर एक ही गुरुका आश्रय लेकर और एक ही योगका अभ्यास करके निग्रह करना चाहिये। जगह-जगह भटकने वाला साधक सिद्धि प्राप्त नही कर सकता। जब आप एक पुस्तक पढ़नेके लिये उठाओ तो उसे समाप्त करनेसे पहले दूसरी पुस्तक मत लो। जब आप कोई काम करने लगो तो आप उसे पूर्ण सावधानीसे करके समाप्त कर दो, उसके बाद ही कोई दूसरा काम शुरू करो। एक समयमे एक ही कामको भली प्रकार करना अच्छा है। यही योगियोंकी काम करनेकी रीति है।

यदि सारे विचारोंको निकाल दिया जावे तो कोई वस्तु नहीं रह जाती जिसे 'मन' कहा जा सके। इसलिये विचार ही मन होते हैं। फिर विचारोंसे स्वतन्त्र 'संसार' कुछ वस्तु ही नही है।

दीप्त प्रकाश, सौन्दर्य, चमत्कारी बुद्धि, भांति-भांतिके रग और रोचक शब्दोंसे मन आकृष्ट होता है। इन तुच्छ वस्तुओंसे भ्रममें मत पड़ो। अन्दर खोज करो कि इन सब वस्तुओंका अधिष्ठान क्या है। मन और इस प्रतीति-मात्र विषय जगतके पीछे एक परिपूर्ण और आत्माराम तत्व है। वह तत्व उपनिषदोंका ब्रह्म है। वही तत्व

प्यारे पाठको ! आप हो। 'तत्त्वमसि' तुम वही हो।

क्योंकि मन आनन्द ब्रह्मसे उत्पन्न हुआ है इसीलिये यह सदा आनन्दके पीछे भागता है। आप आमको इसलिये पसन्द करते हो कि आम आपको आनन्द देता है। सब वस्तुओंमें आप अपने आपको सबसे अधिक प्रेम करते हो इसीसे पता लगता है कि आनन्द आत्मा ही का धर्म होगा।

सर्वदा आशावादी, आत्म-निर्भर, साहसी और दृढ़ निश्चय युक्त मन अपने लक्ष्य पर लगा हुआ पञ्चतत्वों और पदार्थों में से अपनी कार्य सिद्धिके लिये उपयोगी और सहायक शक्तियां ग्रहण कर लेता है।

मन अन्धेरेमें टटोलता है। यह भूलता है। यह प्रतिक्षण बदलता रहता है। यदि कुछ दिन तक आहार न मिले तो यह सुचारु रूपसे विचार भी नहीं कर सकता। सुषुप्ति (प्रगाढ़ निद्रा) में मनकी क्रिया नही होती। यह मल, वासनाओं और तृष्णाओंसे परिपूर्ण है। क्रोध होनेपर यह मोहको प्राप्त होता है। भय होनेपर इसे कम्प होता है। धक्का (आवेग) लगनेपर यह बैठने लगता है। तो आप मनको शुद्ध आत्मा कैसे मान सकते हो।

अति हर्षित मन होनेपर शारीरिक और मानसिक व्यथायें मन्द हो जाती हैं क्योंकि शान्तिसे हर्ष प्राप्त होता है। जब व्यथायें शान्त हो जाती है तब शारीरिक और मानसिक आनन्दका उदय होता है। आनन्द-युक्त मनुष्यका मन सर्वदा शान्त रहता है।

मन शुद्ध हो जानेपर इसकी संवेदन शक्ति बढ़ जाती है। थोड़ेसे भी शब्द या झटकेसे बाधा मालूम होती है और किसी भी दबावको तीव्र मानता है। आपको मनकी शुद्धिके लिये भरसक प्रयत्न करना चाहिये। साधककी संवेदन शक्ति विकसित होनी चाहिये तो भी उसको अपने शरीर और नाड़ियोंको संयमित रखना चाहिये। ज्यों-ज्यों संवेदन शक्ति बढ़ती जाती है संयम भी अधिकतर कठिन होता जाता है। बहुत शब्दोंपर साधारण मनुष्य ध्यान तक नहीं देता परन्तु जिसकी संवेदन शक्ति अत्यन्त विकसित हो गई है, उसके लिये अत्यन्त सूक्ष्म शब्द भी बडी व्यथा पहुंचाता है।

ऐत्तरेय उपनिषद्में बताया है कि सृष्टिके आदि कालमे ब्रह्माने सोचा कि इन समस्त लोकोंके लिये मुझे लोकपालोंकी रचना करनी चाहिये। तब उसने जलमे से हिरण्यगर्भ (पुरुष) को संग्रह करके बनाया। उसे

ध्यानकी अग्निसे तपाया। इस तरह तपाया जानेसे उसका हृदय फट गया। हृदयमेंसे मन निकला और मनमेंसे उसका अधिष्ठातृ देवता चन्द्रमा निकला। मनका अधिष्ठान हृदय है इसलिये मन हृदयमेंसे निकला। समाधिकालमें मन अपने अधिष्ठान हृदयमें प्रवेश कर जाता है। सुषुप्ति अवस्थामें भी यह हृदयमें प्रवेश करता है। तब मन और ब्रह्मके बीचमें अज्ञानका आवरण रहता है।

अनादि कालसे बहिर्मुख होना मनकी बड़ी खोटी आदत है। परमात्माके पवित्र नामोंका निरन्तर उच्चारण करते रहनेसे मन शुद्ध होता है और अन्तर्मुख होनेमें सहायता मिलती है।

मन सदा ही कुछ न कुछ करते रहना चाहता है। जब अपनी इष्ट वस्तुओंमें आसक्त होता है तो इसे आनन्द मिलता है। ताशके खेलमें कुछ नही है, किन्तु जो अवधान और आसक्ति इसमें रखनी होती है उससे ही आनन्द मिलता है। जो मन बचपन ही से बाहरी वस्तुओंमें आनन्द खोजनेकी बुरी आदतमें पड़ गया है उसे इस स्वभावसे फेरना कठिन है और यह सदा ऐसा ही करता रहेगा, जब तक आप इसके आमोदके लिये

कोई उत्तम पदार्थ नहीं दोगे।

मनमें शङ्का होती है। निश्चय भी होता है। ईश्वरके अस्तित्वके विषयमें शंका होती है। यह संशय भावना कहलाती है। एक और शंका होती है कि मैं ब्रह्मको प्राप्त कर सकता हूं या नहीं। तब एक पुकार कहती है ईश्वर सत्य है, हस्तामलकके समान सत्य है। वह प्रज्ञानघन, चित्‌घन और आनन्दघन है। मैं उसे प्राप्त कर सकता हूं।

हमने यह बात भली प्रकार समझ ली और ये विचार खूब पक्के हो गये। कुछ विचार धुंधले और अदृढ़ होते हैं वे आते हैं और चले जाते हैं। हमें विचारोंको विकसित बनाना होगा और उन्हें उस समय तक दोहराना और घोटना होगा जब तक वे अन्तःकरणमें दृढ़तासे जम जावें। विचारोंके साफ़ करनेसे मनका भ्रम और मोह जाता रहेगा।

अवधान दो प्रकारका होता है—कर्त्तावाचक अर्थात् आन्तरिक विचार सम्बन्धी और कार्यवाचक अर्थात् बाह्य पदार्थ सम्बन्धी।

दो विचार आपसमें चाहे जितने भी सम्बद्ध क्यों न होवें एक ही समयमें साथ-साथ नहीं रह सकते।

हमारे अन्तःकरण का स्वभाव एक क्षणमें एक पदार्थको एकसे अधिक रूपमें चेतनाके सम्मुख जानेसे रोकता है।

अच्छे-अच्छे दार्शनिक और ऋषि इस बातपर एक स्वरसे सहमत हैं कि वास्तवमें मन एक समयमें एक वस्तुसे अधिककी ओर ध्यान नहीं दे सकता परन्तु जिस कालमें वह ऐसा करता हुआ प्रतीत होता है वह बड़ी तीव्रगतिसे एक सिरेसे दूसरे सिरे तक आगे पीछे दौडता रहता है।

संसारसे इन्द्रियों द्वारा जो रूपरेखा अङ्कित होती हैं उनमेंसे ही मनका उद्गम होता है। सारे संसारका पूर्ण अनुभव प्राप्त करनेके लिये इसे अनेक शरीर धारण करने पड़ेंगे।

अपनी क्रियाओंके अधिकांशको मन स्वयं नहीं जानता है। क्योंकि मनको एक समयमें केवल एक ही वस्तुकी चेतना हो सकती है, हमारे ज्ञानका एक अंश ही एक समयमें हमारी चेतनाके सम्मुख आ सकता है।

पशु स्वयं अपनेको नहीं जान सकता। इसको केवल स्थूल चेतना होती है। इसको आत्म चेतनाका अनुभव नहीं होता। पशुको दुःख और पीड़ाकी संवेदना होती

है। यह अपनी मनोदशाओंका विश्लेपण नहीं कर सकता। मनुष्य केवल जानता ही नहीं अपितु उसे यह ज्ञान होता है कि वह जानता है। यह उच्च मानसिक चेतना या आत्म चेतना है। मनुष्य केवल संवेदन और भावना ही नही करता अपितु वह अपने अनुभवको शब्दों द्वारा कुशलतासे वर्णन कर सकता है। वह अपने आपको अनुभव करता हुआ जान सकता है। वह अपनेको उस संवेदन या भावनासे पृथक् कर सकता है। वह सोच सकता है "मैं स्पर्श करता हूं, मैं सुनता हूं, मैं देखता हू, मैं सूंघता हूं. मैं स्वाद लेता हूं, मैं कामना करता हूं, मैं कार्य करता हूं, मैं भोगता हूं।"

मैं इस पुस्तकको जानता हूं। मैं यह भी जानता हूं कि मैं इस पुस्तकको जानता हूं। यह आत्मचेतना कहलाती है जो मनुष्योंमें विशिष्टतया पाई जाती हैं।

कुछ आदमी जब अधिक परिमाणमें रक्त देखते हैं तो अचेत हो जाते हैं। कोई-कोई डाक्टरी चीराफाड़ीकी क्रियाको नहीं देख सकते वे अचेत हो जाते हैं। यह सब मानसिक दुर्वलतायें हैं। कोई मनुष्य भोजन नहीं कर सकते यदि उनके निकट ही टट्टी या उल्टी किया हुआ पड़ा हो। इस सब प्रकारकी मानसिक दुर्वलताको

विचार द्वारा दूर करना चाहिये।

जब कभी आप मनके किसी पुराने विचारको निकाल कर कोई नया स्वस्थ विचार मनको देना चाहते हो तो मन इसको आसानीसे ग्रहण नहीं करता। इसके विरुद्ध प्रबल विद्रोह और झगड़ा करता है। बहुत संख्यामें मनुष्य रूढ़ियोंके दास हैं। उनमे मनके पुराने स्वभाव और विचारोंको बदल देनेकी शक्ति नहीं होती।

विश्व-मन हिरण्यगर्भ कहलाता है। वह सारे मनोंका समष्टि होता है। वह सूत्रात्मा है। अ का व्यक्तिगत मन यद्यपि अन्य पुरुषोंके मनसे पृथक् होता है, और बीचमें अति सूक्ष्म पदार्थका पतला-सा परदा रहता है परन्तु वास्तवमें वह इस सूत्रात्मासे तथा अन्य व्यक्तियोंके मनके साथ संसर्गमें रहता है।

अधिकाश मनुष्य अपने मनको स्वेच्छाचारी और उद्दण्ड बना देते हैं। यह मां-बापके दुलारमें बिगड़े हुए बालक या कुशिक्षित पशुकी भांति होता है। हममें से बहुतसे मनुष्योंके मन जंगली जानवरोंके बाड़ेके समान होते हैं जिनमें प्रत्येक अपने-अपने स्वभावमे वर्तता हुआ अपने मनोनीत पथपर चलता है। बहुसंख्याके मनुष्य मनको निग्रह करना नहीं जानते।

इन्द्रियोंका सार मन है, मनका सार बुद्धि है। बुद्धिका सार अहंकार है। अहंकारका सार जीव है। ब्रह्म या शुद्ध चैतन्य प्रत्येक वस्तुका अधिष्ठान है। वह प्रत्येक वस्तुका साक्षी है।

छान्दोग्य उपनिषद्में कहा है "जब मनुष्य सोचता है तो वह समझता है। बिना सोचे वह जानता नहीं, केवल सोचनेके बाद ही वह समझता है।

जिसे आप छतरी कहते हो वह केवल एक लम्बी छड़ी, काला कपड़ा और कुछ पतली-पतली लोहेकी सलाइयोंके सिवाय कुछ नहीं है। इसी प्रकार जिसे आप व्यक्तित्व कहते हो वह केवल बाह्य स्थूल शरीर, मस्तिष्क शिराजाल और मनके सिवाय कुछ नहीं है।

मन बराबर बदलता रहता है। आप नित्य नये-नये अनुभव प्राप्त करते रहते हो ; जो आपकी धारणायें और अन्तःकरण और विवेक बुद्धि १९३२ में थी वह १९४२ में बदल जायेगी। अनुभवके द्वारा मन उन्नत होता है। संसार सबसे अच्छा उपदेशक और गुरु है।

कुएंकी ईंटोंकी मुंडेरीके सहारे रस्सी और डोलसे जब आप पानी खींचते हो तो ईंटमें एक गढ़ा पड़ जाता है और उस गढ़ेके सहारे रस्सी बड़ी सुगमतासे जाती

है। इसी प्रकार एक ही रीतिसे बार-बार विचार करनेसे जो अङ्क (निशान) मस्तिष्कमें पड जाते हैं उन्हीं अङ्कोंके सहारे मन बड़ी सुगमतासे जाता है।

मन सदा किसी स्थूल वस्तुसे संसक्त होता है। यह अकेला नही ठहर सकता। यह मन ही इस शरीरमें (मैं) की घोषणा करता है। यह लिङ्ग शरीरका सबसे मुख्य तत्व है। लिङ्ग शरीर या सूक्ष्म शरीर प्राणके द्वारा स्थूल शरीरसे संयुक्त होता है। मृत्युकालमें यह स्थूल शरीरसे पृथक् होकर स्वर्गगमन करता है। यह सूक्ष्म शरीर ही कर्मफलसे सुख या दुःख भोगता है और आवागमनमें रहता है। विदेह मुक्ति होनेपर इस सूक्ष्म शरीरका लय हो जाता है।

किसी वृक्षकी सत्ता आप मनके द्वारा ही जान सकते हो। आपको शुद्ध मनके द्वारा पहिले ब्रह्म तत्वको निश्चयात्मक बुद्धिसे भली प्रकार अवगत कर लेना चाहिये। किसी पदार्थके दर्शन या ब्रह्मको समझनेके लिये मनकी सहायता सर्वथा अभीष्ट है। ध्यान भी केवल मनसे ही होता है।

यदि आप निर्मल मनके द्वारा अकर्ता और निष्काम भावसे कर्म करोगे तो आपका शरीर फलभागी नहीं

होगा। मन ही अपने ऊपर सुख और दुःख लाता है और पदार्थोंकी ओर अपनी अत्यासक्ति होनेके कारण उनको (सुख दुःखादिको) भोगता है।

मनके अनेक प्रकार होते हैं। बंगाली मन भावुक होता है और कला तथा भक्ति-योग्य होता है। मद्रासी मन बुद्धिमय होता है और गणितके योग्य होता है। पंजाबी और महाराष्ट्र मन वीर और साहसी होता है। बंगालमे श्रीगौराग महाप्रभु और श्रीरामकृष्ण परमहंस देव जैसे भक्त हुए हैं। मद्रासमें श्रीरामानुजाचार्य और श्रीशङ्कराचार्य जैसे प्रतिभाशाली दार्शनिक विद्वान हुए हैं। पंजाबमें श्रीगुरु गोविन्द सिंह जैसे वीर उत्पन्न हुए हैं। साधना और योगपथ मनके प्रकार, स्वभाव और शक्तिके अनुकूल हुआ करता है। रुचियां भी भिन्न-भिन्न होती हैं। मछली देखकर बंगालीको अत्यन्त हर्ष होता है। खटाई और मिर्चको देखकर मद्रासीके मुंहमें पानी भर आता है। पलमीराका फल देखकर लंकाके जाफ़ना तामिल बहुत खुश होते हैं। मांस देखकर मांसाहारीको बड़ी खुशी होती है। क्या यह रहस्यकी बात नही है कि एक वस्तु बाहर पड़ी रहे और उसे देखकर ही मुंहमें पानी भर आवे। क्योंकि साधारण जीवनमें नित्य ही आपको यह अनुभव होता है

आप इस बातका महत्व नहीं समझते। मन बड़ा रहस्य-मय है और ऐसी ही माया भी।

जो वस्तु आपको सुख देती है, वही दुःख भी देती है। जो भोग इन्द्रियों और पदार्थोंके समागमसे प्राप्त होते हैं, उनमें निश्चय ही दुःख भरा होता है।

पुलिस चौकीमें चपरासी दरवाजेपर १० बजाता है। वह शब्द मनुष्यों और पशुओं (सब) के कानमें जाता है। पशु भी घण्टेकी आवाज़ दस बार सुनते हैं। परन्तु मनुष्य उनको गिनते हैं और बुद्धिके द्वारा जान लेते हैं कि दस बज गये हैं। मनुष्यमें यह विशेष ज्ञान होता है और पशुओंमें सामान्य ज्ञान होता है। यह विशेष ज्ञान ही मनुष्य और पशुमें भेद करता है। आहार, निद्रा, भय और मैथुन दोनोंमें समान हैं। इस विशेष ज्ञानके द्वारा वह भलाई, बुराई, ठीक और गलत कर्तव्य और अकर्तव्यकी पहिचान करता है।

मन निरवयव (अङ्ग रहित) है। केवल एक ही विचार एक समयमें ग्रहण कर सकता है। यह नैयायिक मत वालोंका सिद्धान्त है। वे वेदान्ती भी जो मनको सावयव (अङ्ग सहित) बताते हैं और इसके लिये चोर-नारी दृष्टान्त देते हैं अर्थात् जैसे दुष्टा स्त्री घरका धन्धा

करती हुई भी अपना मन प्रेमीमें लगाये रखती है, वे भी यह मानते हैं कि उसके मनकी विशेष वृत्ति प्रेमीमें होती है और सामान्य वृत्ति घरके काममे होती है।

आप एकही समयमें विषयाकार वृत्ति और ब्रह्माकार वृत्ति नहीं रख सकते। यह शास्त्र विरुद्ध है। और क्रियात्मक अनुभव भी ऐसा नहीं बताता। जब मन दृष्टिके साथ लगा होता है तो यह केवल देखता ही है सुन नहीं सकता। यह एक समयमें दोनों काम नही कर सकता। यह प्रत्येक मनुष्यका नित्यका अनुभव है। अन-पढ़ मनुष्य कहते हैं कि वे एक साथ ही सुन भी सकते हैं और देख भी सकते हैं। मन बड़ी तीव्र गतिसे दोनो ओर दौड़ता है. और लोग समझते हैं कि मन दोनो काम एक साथ कर सकता है। यह भारी भूल है।

जब आपका मन किसी रोचक पुस्तकमें लगा होता है तो यदि कोई जोरसे चिल्लावे भी तो आप नहीं सुन सकते क्योंकि मन कानके साथ नहीं था। आप जब किसी विषयपर बड़ा गम्भीर विचार कर रहे हो तो आप न सुन सकते हो, न स्पर्श कर सकते हो, और न देख सकते हो। सारी इन्द्रियां मनसे पृथक होती हैं। उस समय चित्तके द्वारा अनुसन्धान की क्रिया चल रही होती

है। हिरण्यगर्भ अथवा कार्य ब्रह्म या सम्भूति ही विश्व-मन है। वह विश्व प्राण भी है। वह सारे मनोंका समूह है। हिरण्यगर्भ मानो विश्वका विद्युत् पावरहाउस हे। अनेक जीव भाति २ की छोटी २ बत्तियां हैं। पावर हाउससे विद्युत शक्तिका सचार तावेके तारो द्वारा बत्ति-योंमें होता है। इसी प्रकार हिरण्यगर्भसे शक्ति संचार जीवोंमें होता है।

लिङ्ग शरीर और अन्तवह शरीरमें भेद है। लिङ्ग शरीर १७ तत्वों वाला सूक्ष्म शरीर है। पाच कर्मेन्द्रिय, पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाच प्राण, मन और बुद्धि ये १७ तत्व हैं। अन्तवह शरीर अत्यन्त शुद्ध होता है। यह सत्वसे पूर्ण होता है और रजोगुण तथा तमोगुणसे रहित होता है। इस शरीरके द्वारा योगी एक शरीरसे दूसरे शरीरमें निवेश करता है। भगवती सरस्वतीकी कृपासे लीलाने इसी अन्तवह शरीरके द्वारा स्थूल देहसे निकल कर उर्ध्व लोकोंमें गमन किया था। आपको यह योग वासिष्ठमें मिलेगा। श्री शङ्कराचार्य, राजा विक्रमादित्य, हस्तामलक और तिरुमूलारके अन्तवह शरीर था। इसकी सहायतासे वे अन्य पुरुषोंके देहमें प्रवेश करते थे। अन्तवह शरीरवाले योगीका सत्सङ्कल्प या शुद्ध सङ्कल्प होता है।

मनुष्यका अन्तरात्मा (अन्तःकरण) उसके ज्ञानके अनुसार बनता है, जैसे २ समयानुकूल नया ज्ञान प्राप्त होने पर जब उसका मत परिशोधन होता हैं वैसे २ उसका अन्तःकरण बनता रहता है। बच्चेका या बर्बर मनुष्यका अन्तःकरण पूर्ण परिपक्क सभ्य मनुष्योंके अन्तःकरणसे भिन्न होता हैं, और सभ्य मनुष्योंमें भी ज्ञानका अन्तर इतना होता है कि उनके अपने अपने अन्तःकरण भिन्न-भिन्न क्रिया पद्धतिका निर्देश करते हैं। सात्विक मनुष्यका अन्तःकरण राजसी मनुष्यके अन्तःकरणसे भिन्न होता हैं। सात्विक मनुष्यका अन्तःकरण बहुत निर्मल और शुद्ध होता है।

मन प्रलोभन दिखाता है और ठगता है। किसीको अपना पक्का मित्र सोचो और वही विचार सत्तामें परिणत हो जाता है। उसीको अपना शत्रु मान लो तो मन उसी भावको सत्तामें परिणत कर देता हैं। जिसने मनके कार्यको समझ लिया है और जो इसपर अभ्यासके द्वारा नियन्त्रण रखता है वही सचमुच सुखी है।

बचपनमें मनकी ग्रहण शक्ति अच्छी होती है। परन्तु समझनेकी शक्ति नहीं होती। १६ वें, १८ वें, २० वें वर्षमें समझनेकी शक्ति प्रकट हो जाती है। इस अवस्थामें

स्मरण शक्ति भी अधिक होती है। ३० वर्षकी अवस्थामें मन स्थिर हो जाता है। इससे कम अवस्थामें मनमें बड़ी चञ्चलता होती हैं। ३० वर्षसे कम अवस्थाका मनुष्य स्वयं विचार कर निश्चय नहीं कर सकता। उसमें निश्चयात्मक शक्ति नहीं होती। ४५ वर्षके बाद ग्रहण शक्ति घटने लगती है। स्मरण शक्ति भी कम होती जाती है। जो कुछ उसने पहले सीखा हैं उसे ही धारण कर सकता है। वह नये विज्ञान नहीं सीख सकता। ब्रह्मचर्य मनुष्यकी धारणा शक्ति और अन्य मानसिक शक्तियोंके विकासमें सहायता करता है।

२ मन पदार्थमय है

मन पदार्थमय है। यह सूक्ष्म पदार्थ है। यह भेद इस सिद्धान्त पर किया जाता है कि ज्ञानका स्रोत केवल आत्मामें है। यह स्वयं प्रकाश है। परन्तु मन और इन्द्रिया अपना जीवन और क्रिया शक्ति आत्मासे प्राप्त करते हैं। वे अकेले आपही निर्जीव (जड़) हैं। इसलिये आत्मा सर्वदा कर्ता ही रहता है कार्य नहीं। मन आत्माका कार्य हो सकता है, और यह वेदान्तका मुख्य सिद्धान्त है कि जो पदार्थ किसी दूसरेका कार्य होता है वह जड़ होता है। अहंकारका सिद्धान्त भी जड़ है क्योंकि इसकी पृथक्

रूपसे स्थिति नहीं है। यह आत्माके अनुदर्शनका कार्य है।

मन और पदार्थ एक ही परिपूर्ण ब्रह्मके दो रूप हैं और ब्रह्म दोनोंमें से एक भी नहीं है, अपितु दोनों ही उसके अन्तर्गत हैं।

मनको इस भावसे अपार्थिव कहा जा सकता है कि उसमे अन्य पदार्थोंकी सी पार्थिवता नही है जिसे इन्द्रियों द्वारा ग्रहण किया जा सके। परन्तु जिस भावसे ब्रह्म अपार्थिव (अपदार्थीय) कहा जाता है उस अर्थसे मन अपदार्थीय नहीं है। मन सूक्ष्म तन्मात्राओंसे बना है।

४—मनकी सत्ताका प्रमाण

मनके कार्य सारे पदार्थ होते है और भूत, वर्तमान और भविष्य तीनों कालमें व्यापता है। यह एक ही है परन्तु क्रियायें अनेक होती हैं। आत्मा अव्यय पदार्थ है। हमें एक अंतरंग अवयवकी सत्ता माननी पड़ेगी जिसके अवधान तथा अनवधानसे पदार्थोंका प्रत्यक्ष दर्शन होता हैं।

बृहदारण्यकके भाष्यमें श्री शङ्कराचार्यने मनकी सत्ताके दो प्रमाण दिये हैं, एक तो यह कि इन्द्रियों द्वारा संवेदनका ग्रास करना मनका ही कार्य है। यह सर्व कर्म विषय योगी कहलाता है। दूसरा प्रमाण हमारी

निश्चयात्मक शक्ति है। कोई मनुष्य जिसे हम नहीं देख सकते हमें स्पर्श करता है और हम उसका अनुमान कर लेते हैं। केवल स्पर्शसे ही हमें इसका ज्ञान नहीं हो सकता। जिस शक्तिके द्वारा हम ऐसा अनुमान करते हैं वह मन है।

आत्मा या ब्रह्मका धर्म (स्वभाव) सच्चिदानन्द है व्यापक है। फिर व्यक्तिगत जीवात्माकी दृष्टिको सीमित कौन रखता है? मन। इससे भी एक अन्तरङ्ग अवयव (मन) की सत्ताका प्रमाण मिलता है।

मन और इन्द्रियोंके संसर्गसे इन्द्रियजन्य ज्ञान (संवेदन) प्राप्त होता है। इसीलिये अनेक इन्द्रियों द्वारा प्राप्त होनेवाले संवेदन एक ही समयमें एक साथ नहीं व्यापते। मनुष्य कहा करते हैं कि मेरा मन कहीं और जगह लग रहा था, मैंने उसे नहीं देखा। इस समकालीन सवेदनकी असम्भवतासे भी मनकी सत्ताका प्रमाण मिलता है।

अन्तःकरण (मन) की सत्ताके लिये एक युक्ति यह है। आत्मा और इन्द्रियोंके बीचमें एक संयोजककी आवश्यकता है। यदि हम इस अन्तरङ्ग अवयव (मन) की सत्ताको स्वीकार नहीं करते, तो या तो सदा दर्शन

(Perception) ही होता रहेगा या अदर्शन ही—जब आत्मा, इन्द्रिय और पदार्थोंका संस्पर्श होगा तो दर्शन ही होगा क्योंकि ये ही तीनों दर्शनके करण हैं : यदि इन तीनोंके संसर्गसे दर्शन नहीं प्राप्त होता तो सदा अदर्शन ही बना रहेगा। परन्तु वास्तवमें इन दोनों बातोंमेंसे एक भी सत्य नहीं है। इसलिये हमें एक अन्तरङ्ग अवयव (मन) की सत्ता माननी पड़ती है जिसके अवधान और अनवधानके फल-स्वरूप पदार्थ दर्शन या अदर्शन प्राप्त होता है।

५—मनका स्थान

सुषुप्तिमें मनका स्थान हृदय होता है। स्वप्नमे मनका स्थान कण्ठ होता है। जाग्रतमें मनका स्थान दक्षिण नेत्र या अग्नि चक्र होता है। देखिये गम्भीर विचारमें आप क्या करते हो। आप ठोड़ीपर उंगली रखकर गर्दन दाईं ओरको झुकाते हुए दृष्टिको भ्रूमध्य स्थापन करके अपनी समस्या पर विचार करते हो। इससे प्रतीत होता है कि मनका स्थान अग्नि चक्र है।

यद्यपि राजाका अधिकार सारे राज्यपर होता है फिर भी उसके निवासके लिये नियत स्थान होता है। एक विशाल महल राजधानीमें होता है और गर्मियोंके

लिये एक सुन्दर स्थान मंसूरी या आबूके पहाड़ पर बना होता है। ऐसे ही मन यद्यपि सारे शरीरमें व्यापक है तीनों अवस्थाओं (जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति) में इसके लिये स्थान (नेत्र, कण्ठ और हृदय) नियत हैं। जब-जब प्राणकी गति होती है तभी मनकी गति होती है। नासिकासे बाहर श्वास जानेपर भी मन श्वासके साथ बाहर निकलता है।

मनका स्थान मस्तिष्कमे होता है। भौतिक जगत्की अनुभूति इसको मस्तिष्कके स्पन्दन द्वारा होती है। जैसे पाश्चात्य पण्डितोंका मत है मस्तिष्क मन नहीं है। मनकी अनेक शक्तियां और केन्द्र होते हैं और यह मस्तिष्कके तत्तत्सम्बन्धी केन्द्रों द्वारा कार्य करता है।

६—*मनका बीज*

क्योंकि सर्वप्रथम विचार "अहभाव" का होता है और यही सारे विचारोंका मूल है इसलिये (मनका बीज अहंकार है) क्योंकि भेदबुद्धि इस अहंभावका कारण है इसलिये अहकारकी बीज वुद्धि कही जाती है।

७—*अर्ध चेतन मन*

(वेदान्तकी परिभाषामें अर्धचेतन मनको चित्त कहते हैं।) आपके अर्धचेतन मनका अधिकाश अन्तस्तलमें छिपे

हुए अनुभवों और पीछे डाली हुई उन स्मृतियोंका बना हुआ होता है जो फिर प्राप्त हो सकती हैं।

जब वृद्धावस्थाके कारण आपमें स्मृति लोप होने लगती है तो पहला चिह्न यह है कि आपको मनुष्योंके नाम याद रखनेमें कठिनाई होती है। इसका कारण यह है कि सारे नाम कल्पित होते हैं। नामके साथ कोई अन्य सहयोगी स्मारक नहीं होते। मन सहयोगी स्मारकके साथ याद रखता है क्योंकि उससे स्मृतिके अङ्क गहरे हो जाते हैं। वृद्धावस्थामे भी आप स्कूल और कालेजमें पढ़े हुए कुछ अंशोंको भली प्रकार याद रखते हो। परन्तु जो अंश आपने प्रभातमें ही नया पढ़ा है सन्ध्या समयमें उसको ही याद रखनेमें आपको कठिनाई मालूम होती है। इसका कारण यह है कि मनने अपनी धारणाशक्ति खो दी है और मस्तिष्कके जीवनतन्तु जीर्ण हो चुके हैं।

जो लोग मानसिक काम अधिक करते हैं, ब्रह्मचर्य पालन नहीं करते और जिन्हें मानसिक व्यथा और चिन्ता अधिक सताती है उनकी स्मरण शक्ति जल्दी जाती रहती है।

वृद्धावस्थामें भी आप किन्ही घटनाओंको याद रख

सकते हो क्योंकि उनके साथ-साथ सहयोगी स्मारक भी होते हैं।

मानसिक क्रियायें चेतनाके क्षेत्र तक ही सीमित नहीं होती। अर्धचेतन मानसिक क्रियाओंका क्षेत्र अधिक व्यापक होता है। चित्तमेंसे तैयार हुए सन्देश मनके तलपर शीघ्र आजाते हैं। केवल दस प्रतिशत मानसिक क्रियायें चेतनाके क्षेत्रमें आती हैं और नव्वे प्रतिशत अर्ध-चेतन मन अथवा चित्तमें होती रहती हैं।

हम कोई समस्या सुलझानेको बैठते हैं और असफल रहते हैं। फिर उठकर थोड़ी दूर घूमकर आते हैं और फिर प्रयत्न करते हैं फिर भी नहीं सुलझा पाते। अकस्मात् एक विचारका उदय होता है जिसके द्वारा हमारी समस्या सुलझ जाती है। अर्धचेतन मन इसके सुलझानेका कार्य बराबर कर रहा था।

कभी-कभी आप रातके दस बजे इस विचारसे सोते हो कि मुझे २ बजे जागकर रेलपर जाना है। यह सन्देश आपका चित्त ग्रहण कर लेता है और ठीक दो बजे निश्चय ही आपको जगा देता है। यह अर्धचेतन मन आपका सच्चा मित्र और निरन्तर सहचर है।

रातको गणितका कोई प्रश्न निकालनेमें आप बार-

स्वार असफल रहते हो। प्रातःकाल जब आप सोकर जागते हो तो उस प्रश्नका उत्तर ठीक-ठीक मिल जाता है। यह उत्तर आपके अर्धचेतन मनसे विद्युत्प्रकाशके समान प्राप्त होता है। निद्रामें भी आपका अर्धचेतन मन बराबर काम करता रहता है। सारी बातोंको यह यथा स्थान रखकर सन्तोपजनक उत्तर निकाल देता है।

इस अर्धचेतन मनकी सहायतासे आप अपने दूषित स्वभावको बदल सकते हो और उन सद्गुणोंकी स्थापना कर सकते हो जो प्रत्येक मानव हृदयमें निहित रहते हैं। यदि आप भयसे मुक्त होना चाहते हो तो अपने मनसे भयका निषेध कर दो और इसके विरोधी सद्गुण—साहस—की मानसिक धारणा करो। जब साहसकी वृद्धि होगी तो भय स्वयं ही दूर हो जावेगा। असली हमेशा नकलीको दबा लेता है। यह प्रकृतिका अचूक नियम है। इसे राजयोगी प्रतिपक्ष भावना कहते हैं। इसी प्रकार अरुचिकर कार्यों के लिये भी आप रुचि बना सकते हो। नये स्वभाव, नये विचार, नई रुचियां और नये आदर्श चित्तमें बना सकते हो और पुरानोंको बदल सकते हो।

स्मरण करना, धारणा और अनुसंधान चित्तके कार्य

हैं। जब आप किसी मन्त्रका जप करते हो तो चित्त स्मरण करता है। यह मन या बुद्धिसे भी अच्छा और अधिक कार्य करता है।

८—बन्धन और मोक्षका कारण मन है

" मन एवं मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयो । "

मन ही मनुष्यको इस संसारसे बंधा हुआ रखता है। जहां मन कार्य नहीं करता वहां बन्धन भी नही होता। अविवेक और अज्ञानके द्वारा मन कल्पना करता है कि आत्माको इस देहमें बांधा हुआ है और इसलिये यह आत्माको बद्ध मानता है। यह अपनेको जीवात्मासे अभिन्न मानता है और स्वयं 'मैं" बन जाता है और सोचता है 'मैं बन्धनमें हूं।" अहंकार युक्त मन ही बन्धनका कारण है। निरहंकारी मन मोक्षका कारण है। अज्ञान और अविवेकके कारण मन अपने मिथ्या व्यक्तित्व-को सत्य कर जानता है। अपनेको सारे कर्मोंका कर्ता मान लेता है और अहंकारी बन जाता है। यह स्वयं जीवात्मा बन जाता है और अच्छे बुरे कर्म करने और उनका फल भोगनेकी जिम्मेदारी अपने ऊपर ले लेता है। मन ही कर्मोंका कर्ता हैं और कर्मोंका दायित्व उसपर ही रहता है।

मन और जीवात्मा सदा साथ साथ रहते हैं। एकको दूसरेसे जुदा नहीं किया जा सकता। मन जीवात्माको विषयोंमें घसीटता है। जीवात्मा आभास-चैतन्य है।

मन आत्माका चुराने वाला है। इसे विचार मनन और निदिध्यासन द्वारा मार दो।

मनके दो स्वरूप होते हैं एक विवेकशील दूसरा कल्पनाशील। अपने विवेकशील रूपसे यह बन्धन रहित होकर मोक्ष प्राप्त करता है और कल्पना शील रूपसे यह संसारके साथ बँध जाता है।

(६) अन्तःकरण

वेदान्तमें मनको अन्तःकरण कहते हैं। इसका अर्थ है भीतरी औज़ार (अन्तः=अन्दरका, करण=औजार)। बाह्य करण इन्द्रियोंको कहते हैं।

विशाल आकाश पर ध्यान लगाओ। यह भी एक प्रकारका निर्गुण चिन्तन है। इस प्रकार मन किसी आकार विशेषका ध्यान करना छोड़ देगा। धीरे धीरे ज्यों ज्यों इसको आकारों और मूर्तियोंसे शून्य बना दिया जावेगा यह शान्तिके समुद्रमें मग्न होने लगेगा और अधिकतर सूक्ष्म होता जावेगा।

यद्यपि समष्टि अथवा विश्व चेतना एक ही होती है

तो भी जब रामके बिच्छू काटता है तो रामको पीड़ा होती है पास खड़ा हुआ उसका मित्र श्याम इस पीड़ाको अनुभव नहीं करता। प्रत्येक मनुष्यका अन्तःकरण भिन्न होता है। वास्तवमें तो अविद्याका आवरण हट जाने पर मनुष्य और परमात्मामें कोई भेद नहीं रहता परन्तु यह अन्तःकरण ही मनुष्यको सीमाबद्ध रखता है।

जब आप किसी आमके बगीचेके पाससे होकर निकलो तो आपके मनकी एक किरण आंखके द्वारा बाहर निकल कर एक आमको घेर लेती है। यह आमका स्वरूप बन जाती है। इस किरणको वृत्ति कहते हैं।

ढक लेनेकी क्रियाको वृत्ति व्याप्ति कहते हैं। पदार्थ और उपहित चैतन्यको जो आवरण ढक लेता है उसको हटाना वृत्तिका काम है। जो आवरण पदार्थ रूप आमको ढके हुआ है वह वृत्ति द्वारा दूर हो जाता है। वृत्तिके साथ चैतन्य होता है। यह चैतन्य पदार्थ रूप आमको प्रकाशित करता है। इसे फलव्याप्ति कहते हैं। जिस प्रकार टार्चकी रोशनीमें पदार्थ भी प्रकाशमें आ जाते हैं। उसी प्रकार वृत्ति चैतन्य पदार्थको प्रकाशित कर देता है। फिर आमका दर्शन होता है। मन संकल्प विकल्प करता है कि यह आम है या नहीं। बुद्धि मनकी सहायता

करती है और पूर्व अनुभवके द्वारा निश्चय करती है कि आम है। चित्त अनुसन्धान करता है कि मुझे आम किस प्रकार मिल सकता है, क्या मैं मालिकसे पूछूं या मालीसे मांगूं ?" अहंकार कहता है "मुझे किसी न किसी प्रकार आम मिलना चाहिये। मैं इसे चाहता हूं। फिर मन कर्मेन्द्रियोंको आदेश देता है।

आत्मा इस विशाल मानसिक कार्यालयका मालिक है। बुद्धि इसकी मैनेजर है। मन हैड क्लर्क है। हैड क्लर्कको दो काम करने पड़ते है। उसे मैनेजरसे आज्ञा लेनी होती है और अन्य मजदूरोंके कामकी देख भाल करनी होती है। इसी प्रकार मनको दो काम करने पड़ते हैं। इसका सम्बन्ध बुद्धि रूपी मैनेजर और कर्मेन्द्रिय रूप मजदूरोंसे होता है।

अहंकार शरीरको बनाता है। प्राण सब प्रकारकी चेष्टा करता है। मन सुख और दुःखका अनुभव करता है।

सुख और दुःख अन्त-करणके धर्म हैं। उनका शुद्ध नित्य मुक्त असंग आत्मासे कोई सम्बन्ध नहीं हैं। आत्मा इन भावोंसे प्रभावित नहीं होती। वह इनकी साक्षी मात्र है। यह उस शीशेकी भांति मुक्त रहती है जो रौशनीके

सात रंगोंसे प्रभावित नहीं होता। यह सर्वव्यापी आका-शकी भाति मुक्त रहती है।

१०—मनोमय शरीर

भिन्न-भिन्न मनुष्योंमें भिन्न-भिन्न मनोमय शरीर होता है। जिसके अन्दर जितना चैतन्य अधिक या कम दीप्त होता है उतना ही स्थूल या सूक्ष्म पदार्थसे उसका मनोमय शरीर बना हुआ होता है। शिक्षित मनुष्योंमें यह चेतना क्रियाशील और अधिक प्रकट होती है और अशिक्षित तथा असंस्कृत पुरुषोंमें यह धुंधली और कम प्रकट होती है।

प्रत्येक प्राणीके लिये पुनर्जन्मके वास्ते नया मनोमय शरीर वनता है। दार्शनिक ग्रन्थोंका स्वाध्याय, सद्विचार अच्छी भावनाओंका अभ्यास, प्रार्थना और परोपकारी कार्य और सर्वोपरि नियमबद्ध और तीव्र ध्यान मनको सुधारनेके साधन हैं। इनके द्वारा जल्दी मनकी उन्नति होगी।

तीव्र क्रोधके आवेशमें सारा मन द्वेष और घृणाके काले वादलोंसे घिर जाता है और उसमें से क्रोधके अग्नि-मय वाण निकलते हैं और क्रोधके कारण भूत पदार्थको आहत करते हैं।

जिस प्रकार विशेष विचारोंके लिये मस्तिष्कमें अनेक खाने बने हुए हैं उसी प्रकार मनोमय शरीरमें भी भिन्न-भिन्न केन्द्र बने होते हैं।

११—अहंकार

यदि आप अहंकारका नाश करके इन्द्रियोंको वशमे कर लो तो वासनाओंका क्षय हो जाता है। (सारे दुखोका मूल कारण अहंकार है।) जिस प्रकार कुटुम्बके अन्य लोग पिताके आश्रित रहते हैं वैसे ही सारी तृष्णायें, वासनायें इस शरीर रूपी कुटुम्बके वृद्ध पिता अहंकारके आश्रित रहती हैं।

बालकपनमें अहंकार दृढ़ नही होता ऐसा ही होता है जैसे दर्पणमें छाया। युवावस्थामें जब विवाह हो जाता है और आप अनेक संसारी वासनाओंकी पूर्तिमे लग जाते हो अहंकार पक्का हो जाता है। बालकपनमे निर्भय रहते हो और जैसे ही आपके अन्दर यह अहकार दृढ़ हो जाता है उसी प्रकार अनेक प्रकारकी वासनायें, भय और भ्रम अपना घर कर लेती हैं और आपको संसार भी अधिक-अधिक सत्य प्रतीत होने लगता है।

जब कभी अहंकार प्रकट होवे तो प्रश्न करो "इस 'मैं' का स्रोत क्या है" बार-बार इस प्रश्नको दोह-

राओ। धीरे-धीरे इस 'मैं' का लोप हो जावेगा। यह शून्य "मैं" लीन हो जावेगा।

जब आप कहते हो 'मैं ब्रह्म हू" तो यह सात्विक अहकार है। यह मोक्ष अहकार है। यह आपको किसी प्रकार भी बन्धनमें नहीं रखेगा। यह आपको ब्रह्म साक्षात्कारमे सहायक होगा।

यदि आप अपनेको आन्तरिक सूक्ष्म शरीरसे भी अभिन्न मान लो तो भी आपको आत्म साक्षात्कारमें सहायता मिलेगी। स्थूल हाड़ मासके शरीरसे आत्माको अभिन्न माननेसे अहंकारके द्वारा सारी कठिनाइया आती हैं। यह स्थूल 'मैं' बड़ी भारी अड़चन है। जैसे बादल सूर्यको ढक लेता है ऐसे ही अहकारका बादल ज्ञान सूर्यको ढकेलता है। 'अहकार' का पौधा 'मेरी' और 'तेरी' लम्बी शाखाओंसे इधर-उधर फैलता है और बड़ा दृढ़ हो जाता है। इसकी गहरी जडोंको ज्ञानाग्निसे जला देना चाहिये। तब आपको मोक्ष रूपी धन बड़ी सुगमतासे मिल सकता है। सारे क्लेश दुःख और कष्ट समाप्त हो जावेंगे।

अहंकार कुछ भी नही है परन्तु इसका प्रभाव कितना बड़ा है। माया ही अहंकार है। मन अहंकारका दूसरा नाम है। संसार अहकार है। अहंकार स्थूल देहमें रहना

चाहता है स्थूल मांस खाना चाहता है और मांसको ही लिपटाना चाहता है। यह अविद्या है। मायाके धोखेको देखो। सचेत रहो। ज्ञान प्राप्त करो।

आप एकदम अहंकारको नहीं निकाल सकते। इसे थोड़ा-थोड़ा करके कम करनेकी कोशिश करो। तीन महीनेमें एक आना भर अहंकार दूर कर दो। चार सालमें आप इसे पूरा हटा सकोगे। आप कर्मयोग द्वारा आत्म बलिदानसे या भक्तियोग द्वारा आत्म निवेदनसे या वेदान्तिक आत्म-विचार द्वारा अहंकारको दूर कर सकते हो।

यदि आपमें तनिक-सा भी अहंकार है किसी भी एक नाम या रूपमें थोड़ी-सी भी आसक्ति है वासनाका लेशमात्र भी है और मनमें किञ्चित् मात्र भी संसारी कामना है तो आप ईश्वरका साक्षात्कार नहीं कर सकते।

मनके विचारोंसे अहंकारकी वृद्धि होती है। यह 'मैं' का विचार अपने पीछे-पीछे काल, देश तथा अन्य सम्भावनाओंका विचार ले आता है। इन परिस्थितियोंके साथ इसे जीवका नाम मिलता है। इसीके समकालीन बुद्धि, स्मृति और मन उपजते हैं जो संकल्प रूपी वृक्षका बीज है।

अहंकार एक सूत्रके समान है। यह समस्त इन्द्रियोंको अपने साथ जोड़ लेता है। जब सूत्र टूट जाता है तो सारे मोती गिर जाते हैं। इसी प्रकार जब 'अहम् ब्रह्मास्मि' भावना द्वारा, साक्षी भाव द्वारा या निमित्त भाव लेकर आत्मनिवेदनकी रीतिसे (अर्थात् यह मानकर कि मैं भगवानके हाथोंमें केवल निमित्त मात्र हूं) यह मन रूपी सूत्र तोड़ दिया जावे तो सारी इन्द्रियां भी टूट जावेंगी। इन्द्रियोंके साथ सम्बन्ध विच्छेद हो जावेगा।

काम, क्रोध, इत्यादि विभिन्न वृत्तियोंका नाश करनेके लिये प्रयत्न मत करो। यदि आप एक ही वृत्ति अर्थात् अहंकारको नष्ट कर सकते हो तो अन्य सारी वृत्तियां स्वय ही नष्ट हो जावेंगी। जीव रूपी भवनका अहंकार मूल भित्ति है यदि इसे हटा लिया जावे तो यह सारा भवन गिर जावेगा। यही रहस्य है। आप स्त्री, सन्तान धन, क्रोधादिको सुगमतासे त्याग सकते हो परन्तु अहंकारको त्यागना अति कठिन है।

बुद्धि संयुक्त आत्मा अहंकार बन जाता है। अहंकारका आधार बुद्धि है। अहंता और ममता जीव सृष्टि है। जीव सृष्टि मनुष्यको संसारमें बांधे रखती है। ईश्वर सृष्टि भगवत्साक्षात्कारमें मनुष्यकी सहायक होती है। इन्द्रिय

दमन और प्राणायामसे बुद्धिके विकासमे सहायता मिलती है। छिलकेके बाद छिलका उतारते रहनेसे प्याज़का कुछ भी शेष नहीं रह जाता। जब आप इस छोटी-सी "मैं" का विश्लेषण करते हो तो यह अभाव ही हो जाती है। शरीर 'मैं' नहीं है। टांग काट देनेपर भी 'मैं' शेष रहती ही है। जीव सृष्टिको त्याग दो।

१२—तीन अवस्थायें

(जाग्रत अवस्था)

जाग्रत अवस्थाकी चेतना स्वप्न या सुषुप्तिमें नहीं रहती। इसलिये यह भ्रममूलक है। तत्व पदार्थ सारी अवस्थाओंमे वर्तमान रहता है।

जब तक मनके विकारों द्वारा जीव विभिन्न बाह्य पदार्थों से सम्बद्ध रहता है तब तक जाग्रत कहलाता है। यह इन पदार्थों को समझता है, अपनेको स्थूल देहसे भिन्न मानता है जो उन ही बाह्य पदार्थों में से एक है।

जाग्रत और स्वप्न अवस्थाका अन्तर यह है कि जाग्रत-अवस्थामे मन बाह्य पदार्थों के अङ्कोंका आश्रय लेता है और स्वप्नावस्थामें यह अपने ही अङ्क (रूपरेखा) बनाता है और उनको भोगता है। परन्तु निश्चय ही इसके लिये

भी जाग्रत कालसे सामग्री लेता है। जाग्रत अवस्था एक दीर्घ स्वप्न ही है।

(स्वप्न जाग्रत)

मनोराज्य (मंसूवे घड़ना), स्वप्नके पदार्थों और घटनाओंको याद करना, सुदूर जाग्रत अवस्थाकी वस्तुओंकी स्मृति यह सब स्वप्न जाग्रत (अर्थात् जाग्रत अवस्थामें स्वप्न देखनेके समान) हैं।

(स्वप्नावस्था)

हित नाड़ी हृदयमेंसे निकल कर इसके चारों ओर वड़ी झिल्लीके घेरे हुई है और वालके सहस्रांशके समान सूक्ष्म है और सफेद, काले, पीले और लाल रंगोंके सूक्ष्म अशोंसे पूर्ण है। जव मन इसी हित नाड़ीमे प्रवेश करता है तो जीव स्वप्नावस्थाको भोगता है।

आप स्वप्न देखते हो कि आप राजा हो। आप सारे राजोचित ऐश्वर्योंका उपभोग करते हो। ज्योंही आप जागते हो सव कुछ लोप हो जाता है। परन्तु आप इस हानिसे दुःख नहीं मानते क्योंकि आप जानते हो कि स्वप्नके सारे पदार्थ मिथ्या होते हैं। जाग्रत अवस्थामे भी यदि आपकी इसी भावमें निष्ठा हो जावे कि संसार एक मिथ्या भ्रम है, तो आपको दुःखका अनुभव नहीं होगा।

जब आप परमतत्व (ब्रह्म) को जान लोगे तो जाग्रत चेतना भी स्वप्नके समान मिथ्या प्रतीत होने लगेगी। मेरे बच्चे ! जागो और ब्रह्म ज्ञान प्राप्त करो।

मनुष्योंमें स्वभावका भेद हुआ करता है। कुछको स्वप्न बहुत कम होते हैं। आत्म ज्ञानीको कभी स्वप्न नहीं होता।

स्वप्नमें आप अत्यन्त तेजोमय प्रकाश देखते हैं। यह कहांसे आता है ? आत्मासे। स्वप्नमे प्रकट होने वाला प्रकाश आत्माके स्वयं ज्योति होनेका प्रत्यक्ष प्रमाण है। बाह्य पदार्थों के अङ्कोंसे जब विकार होता है तो जीव स्वप्न देखता है। स्वप्नावस्थामें इन्द्रियां शान्त होती है और मनमें लीन हो जाती हैं। केवल मन स्वतन्त्र और अबाधगतिसे कार्य करता रहता है। स्वयं मनही मक्षिका पुष्प, पर्वत, हस्ती, अश्व नदी आदिके रूप बन जाता है। द्रष्टा और दृश्य दोनों एक होते हैं।

(सुषुप्ति अवस्था)

चेतना अविरल (धारावाही) रहती है। जागने पर आप जानते हो कि आपका अस्तित्व सुषुप्तिमें भी बना रहा है। आप समझते हो कि आप सर्वदा स्थिर रहते हो।

जब मन पुरीतत् नाड़ीमें प्रवेश करता है तो सुषुप्ति

अवस्था होती है। अपनी निद्राको कम करनेका यह उपाय है। पहले चार महीने ११ वजे सो जाओ और चार वजे जाग उठो। केवल पांच घन्टेकी नीन्द लो। आगे ४ महीने १२ वजे सो जाओ और चार बजे उठो। केवल चार घन्टेकी नीन्द लो। फिर चार महीने एक वजे सो जाओ और चार वजे उठो। केवल तीन घन्टेकी नींद लो।

दृढ़ सुषुप्तिमें आपको अनुभव जन्य चेतना बन्द हो जाती है। आत्माकी सत्ता रहती है और उसमें कोई अनुभव नहीं रहता। इस अवस्थामें मनकी क्रिया भी नहीं रहती और राग द्वेष भी नहीं रहते। मन अपने अधिष्ठानमें लय हो जाता है। यह मनोलय कहलाता है। इन्द्रियोंकी भी क्रिया नहीं रहती। यह दृढ़ सुषुप्तिकी अवस्था अतिशय अभावको दशा नहीं है क्योंकि यदि ऐसा मान लिया जावे तो जागने पर सुखपूर्ण निद्राको स्मृति कैसे हो सकती है। वेदान्ती अपना शास्त्र-निर्माण इसी अवस्थाके चारों ओर करते हैं। यह अवस्था उनको अद्वैत दशाका संकेत देती है। वेदान्तको भली प्रकार समझ लेनेके वास्ते जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति इन तीनों अवस्थाओंको भली प्रकार जानना चाहिये।

गाढ़ निद्राके समय चैतन्य रूप आत्मा कहां था?

बृहदारण्यकोपनिषत् में अजातशत्रु ने गार्ग्य को समझाते हुए कहा है कि जब यह जीव गाढ़ निद्रामें रहता है तो हृदयाकाशने इन्द्रियोंकी चेतनाको भी अपनेमें लय कर लिया। जब जीव इन्द्रियोंके ज्ञानको हृदयके अन्दर खींच लेता है तब ही वह सुषुप्तिमे रहता है। इस प्रकार प्राण, वाणी, चक्षु, कान, और मन ये सब अन्दर खींच लिये जाते हैं।

सुषुप्तिमें मन सूक्ष्म दशामें रहता है। वृत्तियोंकी भी सूक्ष्म दशा हो जाती है। परन्तु अद्वैत निष्ठामें मन होता ही नहीं। संसार नहीं रहता। संसार ब्रह्ममें लीन रहता है।

स्वप्न रहित सुषुप्तिमें कुछ भी भाव नहीं रहते और इसीलिये संसार नहीं रहता। जाग्रत और स्वप्न अवस्थामें भाव या विचारोंकी क्रिया चलती रहती है इसी लिये संसार भी नहीं रहता।

शंकराचार्य कहते हैं कि मनकी क्रियासे उत्पन्न द्वैत भाव केवल जाग्रत और स्वप्नावस्थामें ही रहते हैं, परन्तु सुषुप्ति कालमें नहीं रहते। स्वप्न रहित गाढ़ निद्रामें जब हम विक्षेपयुक्त संसारसे पृथक हो जाते हैं तो हमें आनन्द घनका अनुभव हुआ करता है।

मन ही भेद और द्वैत भाव उत्पन्न किया करता है। यदि सत्त्वकी वृद्धि करके और अहंग्रह उपासना द्वारा इस अशुद्ध मनका नाश कर दिया जावे तो आपको सर्वात्म भावका अनुभव होने लगेगा। इसके लिये साधकको दृढ़ और सतत प्रयत्न करना चाहिये।

जब स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर और तद्भव विकारोंके पृथक हो जाने पर यह मन आत्मामें लीन होकर सुषुप्ता-वस्थामें रहता भासता है तो इसको सोया हुआ कहते हैं।

हे तात्! जब संसारमें मनुष्य सोता है तो वह सत्से युक्त होता है वह अपने आत्मामें चला जाता है। इसीलिये उसे कहते हैं"स्वपिति" अर्थात् (स्वं अपिति) अपने आत्माको प्राप्त हो रहा है।

छन्दोग्योपनिषत्

१३ प्रत्यक्ष दर्शनका सिद्धान्त

दर्शनके अद्वैत सिद्धान्तके अनुसार हमारे अन्दरका चैतन्य दर्शनकी सम्भावना बताता है। हमारे अन्तरकी चेतना विषयकी चेतनासे संयुक्त होती है और परिणाममें दर्शन होता है। इसका यह अर्थ नहीं है कि मन और इन्द्रियोंका कुछ उपयोग ही नहीं है। दर्शनको तत्तत्सम्बन्धी विषयोंके साथ यथास्थान पहुंचानेके लिये इन्द्रियां

आवश्यक हैं। आत्माके चैतन्य स्वरूप होनेसे इन्द्रियोंकी निरर्थकता सिद्ध नही होती क्योंकि ये प्रत्येक इन्द्रियका विषय विशेष निरूपण करती हैं।

१४—संसारके विषयमें सिद्धान्त

श्रीयुत नारायण जो मेरा मित्र मेरे सम्मुख खड़ा है यह मेरे अपने ही मनका कार्य है। यह संसार भी मेरे ही मनका कार्य है।

मायावादके सिद्धान्तके अनुसार वास्तवमें संसार है ही नही। यह केवल मानसिक कल्पना है। बौद्धमतमें इसे विज्ञानवाद कहते हैं।

यथार्थवादके अनुसार संसार एक ठीक यथार्थ सत्ता है। माध्वाचार्यका द्वैतवाद, रामानुजाचार्यका विशिष्टा-द्वैतवाद और महर्षि पतञ्जलिका राजयोग ये सब संसारको सत्य मानते हैं।

परिछिन्न मन जो स्थूल है और जो काल, देश और कारण कार्यके नियममें स्थित है संसारके विषयमें 'क्यों और कैसे' नहीं जान सकता यह अतिप्रश्न है। इसका उत्तर किसी शास्त्र, ऋषि या आचार्यने कभी नहीं दिया है। इस प्रश्नपर मस्तक मत खपाओ। क्योंकि इस समस्याका उत्तर आपको कभी नही मिल सकता।

संसारकी रचना ब्रह्मकी मौज है। यह उसका लीला विलास है। यह उसकी माया है। यह उसका स्वभाव है।

१५—मन और आहार

आहारका सूक्ष्मतम अंश हृदयमें पहुचता है और वहांसे हितनाड़ीमें प्रवेश करके वाक् इन्द्रिय समूहको वनाता है और मनके रूपमें वदल कर मनको वढ़ाता है। इस प्रकार आहारसे वर्द्धित मन भौतिक है और जैसा वैशेपिक मानते हैं नित्य नहीं है।

जिज्ञासुको मांस, मछली, मद्यका नितान्त त्याग कर देना चाहिये क्योंकि ये पदार्थ मनको स्थूल वनाते हैं और मनमें उत्तेजना उत्पन्न कर देते हैं।

उपनिपद् वेत्ता शास्त्रज्ञोंका विश्वास था कि मनकी वनावट आहारपर निर्भर रहती है। जो भोजन हम करते हैं उससे मन वनता है। छान्दोग्य उपनिपद्में कहा है "हमारा आहार तीन विभिन्न गतियोंको प्राप्त होता है। स्थूल या गरिष्ट भागकी विष्टा वन जाती है, साधारण स्थूल अंशका मांस वनता है और अति सूक्ष्मतर भागसे मन वनता है।" जिस प्रकार दही चलानेमें इसके उत्तम अंश ऊपर आकर मक्खन वन जाते हैं ऐसे ही जव भोजन

पचता है तो इसका सूक्ष्मतम अंश ऊपरको आकर मन वन जाता है। पश्चात् भगवद्गीता कालमें भी हमे पता लगता है कि सात्विक, राजस और तामस, तोनों प्रकारके स्वभावोंका कारण तोनों प्रकारका भोजन ही होता है। जब मनकी कोटि हमारे भोजनपर निर्भर रहती है तो उन साधकोंके लिये जो विचारपूर्ण जीवन विताते हैं और उन वयस्क गृहस्थियोंके लिये जो संसारमें आध्यात्मिक जीवन व्यतीत करनेका प्रयत्न कर रहे हैं शुद्ध सात्विक भोजन शैलीपर जोर देना समुन्नत नैतिकताके लिये स्वाभाविक ही है।

आहारशुद्धौ सत्वशुद्धिः सत्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः ।
स्मृतिलाभे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षः ।(छान्दोग्योपनिषत्)

जव भोजन शुद्ध होता है तो स्वभाव शुद्ध रहता है। स्वभाव शुद्ध होनेसे दृढ़ स्मरणशक्ति होती है। स्मरण-शक्तिके दृढ़ हो जानेसे सारी ग्रन्थियां खुल जाती हैं।

नारदका मल धुल जानेके वाद ही श्रद्धेय सनत्कुमारने उनको मोक्षका मार्ग वताया था। जो मार्ग हमें अंध-कारसे परे ले जाता है उसे भोजनकी शुद्धिमें खोजना चाहिये क्योंकि इससे मनकी शुद्धि स्वत ही हो जाती है।

(भोजनके सूक्ष्म सारसे मन बनता है।) इसलिये जिन मनुष्योंसे भोजन प्राप्त होता है उनमें मन आसक्त हो जाता है। यदि आप कुछ महीने तक अपने किसी मित्रके साथ रहो और उसीका भोजन करो तो उस अन्नदाता मित्रमें आपका मन आसक्त हो जावेगा। यही कारण है कि संन्यासीको तीन या पांच घरोंसे मधुकरी भिक्षापर गुजारा करनेका नियम है। वह आसक्तिसे बचता है। एक गांवसे दूसरे गांवमें फिरता है। परिव्राजक जीवनमे उसे एक ग्राममें एक दिनसे अधिक ठहरनेकी आज्ञा नहीं है। जो परमहंस इस प्रकार भिक्षा पर रहता है उसका मन गङ्गा जलके समान निर्मल हो जाता है, और वह सब प्रकारकी आसक्तिसे मुक्त रहता है। आसक्तिसे बंधन हो जाता है। आसक्ति मृत्यु है। आसक्ति सारी बुराइयोंकी जड़ है।

१६—मन संसार है

मन माया है। मन संसार है। जब मन पवित्र हो जाता है तो मध्यमें एक छिद्र बन जाता है जिसमें की पवित्रता, प्रकाश और ज्ञान ब्रह्मसे बहते हैं। मनके सिवाय यह जगत् कुछ भी नहीं है। जिसे आप दुनिया कहते हो वह केवल मन ही है (मनोमात्र जगत्, मनो कल्पित

जगत्); उस परब्रह्मकी आत्म ज्योति ही मनके रूपमें या जगत्के रूपमें भासती है।

जगत्में जितना हर्ष-शोकका अनुभव होता है वह मनकी क्रियासे ही होता है। मनके सुख और दुःखके वास्ते ही त्रिलोकीकी रचना होती है। मनकी क्रियाके रोक देनेसे तीनों लोक और उनके दुःख सब लोप हो जावेंगे। मनके निग्रहका ज्ञान होनेसे सारी सिद्धियां प्राप्त हो जाती हैं। यदि मनका निग्रह नहीं हो तो सब कुछ दुःखमय और व्यर्थ हो जाता है।

छान्दोग्य उपनिषत्में बताया है कि मन वाणीसे महान् है। जैसे बंधी मुट्ठीमें दो आमलक होवे ऐसे ही मनके अन्दर वाणी और नाम होते हैं। जब मनुष्यके मनमें वेद पढ़नेका विचार उठता है तो वह वेद पढ़ने लगता है। जब उसकी इच्छा कर्म करनेकी होती है तो वह कर्म करता है। जब उसका मन पुत्र और पशु प्राप्त करनेको होता है तो वह उसकी इच्छा करता है। जब उसका मन इस लोक और परलोकको प्राप्त करनेको होता है तो वह उनके लिये इच्छा करता है। निस्सन्देह मन ही आत्मा है मन ही संसार है और मन ही ब्रह्म है। मनका ध्यान करो।

जगत्‌के अभाव या नाशका यह तात्पर्य नहीं है कि इसके पर्वत, सरोवर, वृक्ष और नदियां सबका नाश हो जावे। जब संसारके मिथ्या होनेका आपको निश्चय दृढ़ होता जावे और जब आपकी स्थिति इस विचार पर दृढ़ हो जावे कि यह संसार मृगतृष्णाके समान भ्रम पूर्ण है, तो ये ही जगत्‌का नाश कहलाता है।

यह संसारकी जादूगरीका खेल केवल मन ही तो बनाता है। यह संसार मनके सिवाय और कुछ नहीं है। केवल परब्रह्मकी आत्म ज्योति ही मन या संसारके रूपमें प्रकट होती है। मन प्रज्ञाशक्ति है और पदार्थ भूत शक्ति तथा प्राण ब्रह्मकी क्रिया शक्ति है। हर वस्तु ब्रह्मकी है। वास्तवमें जीव है ही नहीं। केवल ब्रह्म ही है।

यह संसार ऐसा ही है जैसे जाग्रतमें स्वप्न होता है। दर्पणमें जैसे प्रतिबिम्ब होता है ऐसे ही मनरूपी दर्पणमें यह संसार एक विशाल प्रतिबिम्ब है। मन एक बडी चद्दरके समान है जिसमें भांति-भांतिके चित्र लगे हों।

चैतन्यसे उठनेवाली मनकी क्रियासे यह संसार बनता है। न तो चित्रकार है न चित्रपट और नही चित्रकारोंकी

अन्य सामग्री। निर्मल ज्ञान आकाश पर संसारका चित्र खिंचा हुआ प्रतीत होता हैं।

मायाकी विक्षेप शक्ति जाग्रत और स्वप्न दोनों अवस्थाओंमें कार्य करती है। इसीके कारण नाम और रूप उत्पन्न होते हैं। इसीके कारण संसारकी प्रतीति होती है। सुषुप्तिमें यह लोप हो जाता है।

बाह्य संसारके रूपमें जगत प्रकट होता है। कर्त्ता रूप से मन चैतन्य सत्ता है और कार्य रूपसे यह संसार है।

यदि ज्ञान, दर्शन और क्रियाका कारण भूत मन लोप हो जावे तो उसके साथ ही साथ यह कर्त्तारूप जगत् भी लय हो जाता है।

यह मन जो संकल्प विकल्पके द्वारा वृद्धिको प्राप्त होता है अपने कारण भूत ब्रह्मसे उत्पन्न होता है। सारे लोक जो केवल मनके द्वारा प्रकट होते हैं वे तो केवल मनके विकार मात्र हैं। मनके ही द्वारा संसार सत्य-सा प्रतीत होता है। माया ही मन है। मनकी क्रियायें माया की ही क्रियायें हैं। रूपमें मनकी आसक्ति माया है। स्वयं अपनेको मनसे अभिन्न समझना माया है। प्राणकी गतिसे मन भी गतिशील होता है। मनकी गतिसे संसार बनता है नाम और रूप प्रकट होते हैं।

जैसे आपके भ्रमपूर्ण मनके द्वारा आकाशकी नीलिमा प्रतीत होती है (जो वास्तवमें कुछ भी नही है) उसी प्रकार अनेक भेद युक्त सारे लोक यद्यपि वे आत्मज्ञान ही हैं संसारकी भाति भासते हैं।

द्वितीय परिच्छेद

१—शुद्ध मन

शुद्ध मन तो ब्रह्म ही है। यह मूर्तिमान पवित्रता है।

सारी महान् आकांक्षायें, शुद्ध दया समष्टि-प्रेमकी वृत्तियां और कृपा यह सब मनकी सात्विक सामग्री बढ़ानेमें बड़ी सहायक होती है। उच्च मनकी वृद्धि होती है।

शुद्ध मनकी परीक्षा वाणी, मुख और नेत्रों द्वारा हो सकती है। इनके द्वारा पवित्र मनवाले मनुष्योंका मत जाना जा सकता है।

आपका वास्तविक शत्रु केवल अशुद्ध मन है जिसमें तृष्णा, भ्रम, वासना और अपवित्र विचारोंका समूह भरा

होता है। शुद्ध मनके द्वारा इस अशुद्ध मनका नाश कर दो तब आपको स्थायी अपरिछिन्न शान्ति और आत्मानन्द प्राप्त होगा। तब ही आप जीवन्मुक्त हो जाओगे।

सात्विक और राजसिक मनकी गति एक दूसरेके विरुद्ध हुआ करती है। सात्विक मनको एकान्त, मौन, सरल जीवन, उच्च विचार धारा; आध्यात्मिक ग्रन्थोंका स्वाध्याय, दार्शनिक वाद, मनकी एकाग्रता, और साधु महात्माओं और सन्यासियोंका सत्सङ्ग पसन्द होता है। राजसिक मनको भीड़-भाड़ वाले नगर, ज्यादा बातचीत, विलासी जीवन, नीच विचार धारा, स्त्रियोंकी संगति प्रेम उपन्यासोंका अध्ययन, स्वादु भोजन और स्वार्थपूर्ण कार्य पसन्द होता है।

जैसे एक लोहेके सांचेसे दूसरे लोहेका आकार बनता है वैसे ही मनुष्यका शुद्ध मन जो धार्मिक मार्गमें प्रयत्न करता है अशुद्ध मनको सुधारने और पवित्रतामें ढालनेमें समर्थ होना चाहिये।

यदि उच्च मनके द्वारा नीच मनका निराकरण कर दिया जावे तब ही आपको नित्य सुख और शान्ति मिलेगी। तब ही आपको मोक्ष, परम ज्ञान और चिरस्थायी सुख मिलेगा।

इस संसार सागरमें इच्छायें मगर रूप हैं। जैसे ही वे मनके उपरिस्तलपर उभरें उनको नाश कर दिया जावे। उनके आधीन मत हो। अपनी परीक्षाओंमें निराश मत हो। शुद्ध सात्विक मनको मित्र बनाओ और उसकी सहायतासे अशुद्ध मनका नाश कर दो। अपने मनको आनन्दपूर्ण आत्मामें विश्राम करने दो। विवेक और निर्भीक तथा अथक प्रयत्नसे इच्छाओंको उभरते हुए ही नाश कर दो।

नीच मनमें कामना भरी हुई होती है। उच्च मनमें पवित्रता भरी हुई होती है। इस प्रकार दो मन होते हैं। यदि आप ध्यानका अभ्यास करना चाहते हो तो इन दोनोंको एक कर दो।

विचार ही शान्त और निर्मल होना चाहिये। तब आपको प्रेरणा मिलेगी। ऐसी दशामें ही उच्च मन अपना उदार प्रभाव नीच मनपर डाल सकेगा। ऐसी शान्त मानसिक अवस्थाओंमे आप ईश्वरके साथ संसर्ग रख सकोगे। युक्ति निकालना, क्रोध और उदास दशायें सब ही मनमें उद्वेग पैदा करती हैं और ईश्वर प्राप्तिमें रुकावट का काम देती हैं।

उच्च कामनायें, महान आकांक्षायें; ऊंचे आदर्श, सच्ची

धार्मिक भावना, दया, सहानुभूति शुद्ध निःस्वार्थ प्रेम, भक्ति, आत्मिक विचार, प्रेरणा, और प्रतिभा ये सब उच्च मनसे प्राप्त होते हैं। नीच अशुद्ध और पशु-बुद्धि-युक्त मन-को कुचलकर आपको शुद्ध मनकी वृद्धि करनी होगी। सात्विक मन एकता बनाता है। पशु-बुद्धि-युक्त मन विभाग और भेद बनाता है।

शुद्ध मन और अशुद्ध मन—ये दो प्रकारके मन होते हैं। बुद्धि भी दो प्रकारकी होती है—व्यावहारिक बुद्धि और शुद्ध बुद्धि। अहंकार भी दो प्रकारका होता है—शुद्ध अहकार जो ब्रह्मसे एकीभाव बनाता है और अशुद्ध अहं-कार जो शरीरसे एकीभाव बनाता है। सकल्प भी दो प्रकारका होता है—शुद्ध संकल्प अर्थात् ईश्वर सम्बन्धी विचार और अशुद्ध संकल्प अर्थात् शरीर और संसार सम्बन्धी विचार।

२—अशुद्ध मन

आत्माका शत्रु यह अशुद्ध मन है जो अतिशय भ्रांति और विचारोंके समूहसे परिपूर्ण है। कहीं ऐसा न हो कि यह मन रूपी शत्रु आपको अनेकों प्रकारसे संसारके नाना सुखोंके उपभोग द्वारा बिगाड़ दे इसलिये नित्य सुख और आत्मिक ज्ञान प्रकाशके लिये इसको मार डालो।

१० करेटके सोनेको तेज़ाव मिलाकर भट्ठीमें बार-बार तपाकर सुनार १६ करेटका बना लेता है। इसी प्रकार आपको इस विलासी मनको मनकी धारणा, गुरु वचनोंके मनन, उपनिषद्वाक्योंपर विचार, ध्यान, जप तथा मौन नाम स्मरण द्वारा शुद्ध बनाना होगा।

मैले दर्पणमें मैला प्रतिबिम्ब दिखता है। निर्मल दर्पणमें आकार भी साफ़ दिखता है। गन्दे मनवाले लोग अपने ही प्रमाणके अनुसार दूसरोंको जांचते हैं और इस प्रकार बड़ी भारी भूल करते है। यदि वे किसी भले सदाचारी मनुष्यको भी किसी स्त्रीके साथ रास्ता चलते हुए देख लें तो वे एकदम कुछ दृढ़ सन्देह बना लेंगे और उसकी गन्दी चर्चा वहां ही उसी समय कर देंगे। उनको इस प्रकार बदनामी करनेके सिवाय और कुछ काम नहीं है। ऐसे मनुष्य दया के पात्र हैं। एक समय किसी पासके गांवको जाते हुए एक किसानका लड़का अपनी माताके साथ एकान्तमें बैठकर ठण्डा पानी पी रहा था। दूसरे बटोहीको सन्देह हुआ कि ये दुराचारी लोग मदिरा पी रहे हैं। अन्तमें जब उसे सच्ची बात मालूम हुई तो बहुत पछताया। इसीलिये दूसरोंकी जांच करनेमें सदा सावधान रहो।

विषय भोगसे रोग उत्पन्न होते है और विवेक शक्ति नष्ट होती है। यह मनको मलिन बनाता है। इसलिये विषय भोगसे बचे रहो। अपने अन्दर ही आत्म-साक्षात्कारका प्रयत्न करो जहा नित्य सुख और अमृतत्वका वास है।

पशुबुद्धियुक्त मन नीच मलिन काम मानस है जिसमें कामनायें, वासनायें और इच्छायें होती हैं। अधिक संख्यामें मनुष्योंका यह पशुबुद्धियुक्त मन ही होता हैं। शिक्षित और सभ्य कहलानेवाले मनुष्य भी इसी पशु बुद्धियुक्त मनके स्तरपर रहते हैं। उनकी इन्द्रिया बड़ी निपुण होती हैं और वह उनकी तृप्तिके लिये अधिक परिष्कृत पदार्थोंकी खोजमें रहते हैं। वे अपनेको भौतिक शरोर और इन्द्रियोंसे एक रूप मानते हैं। सूक्ष्म आत्माका उनको ज्ञान नहीं होता जो शरीर और इन्द्रियोंसे बिल्कुल पृथक् है। उनको 'मैं' यह भौतिक स्थूल शरीर ही है यद्यपि वे यह जानते हैं कि मन भी होता है।

अशुद्ध मनसे अशुद्ध संकल्प, व्यावहारिक बुद्धि और अशुद्ध अहंकार बनते हैं। इन तीनोंकी दुष्ट टोली है। ये एक दूसरेके सहयोगसे काम करते हैं। मनका बीज अहंकार है। मन विचारोंकी गठरी है। सारे विचारोंकी जड़

अहंभाव है। यही विचार सबसे पहले मनसे निकला था। अहंकारकी नींव बुद्धि है। बुद्धि ही आपको भौतिक शरीरके साथ एक रूप हो जानेको विवश करती है। बुद्धि ही भेद और नाना भाव उत्पन्न करती है।

३—वृत्ति और मन समुद्र

चित्त मनका तत्व है। यह मानसिक सार वस्तु है। वृत्ति या विचार तरंग इसी सार वस्तुका विकार है। यह एक कार्य प्रणाली है। जैसे समुद्रके उपरिस्तलसे बुलबुले और लहरें उठती हैं उसी प्रकार मन समुद्रके उपरिस्तलसे ये वृत्तियां उठती हैं। जैसे सूर्यसे किरणें निकलती हैं उसी प्रकार मानसिक किरणें (विकार या वृत्तियां) मन रूपी सूर्यसे निकलती हैं। जैसे सूर्यास्तके समय अपने किरण समूहको समेटकर सूर्य पश्चिम दिशामें लीन हो जाता है इसी प्रकार आपको भी उस सूर्योंके सूर्य, चिद् घन, नित्य शान्ति रूप आत्मामें मनकी सारी बिखरी हुई किरणें समेटकर मनको लीन करना होगा।

मौन हो जाओ। शान्तिमें प्रवेश करो। आत्मा शान्तिरूप है। ब्रह्म शान्तिरूप है। मौन ही केन्द्र है। मौन ही हृदय गुहा है। जब मनका पूर्ण निग्रह हो जाता है तो वृत्तियां बन्द हो जाती हैं। जब सारे विकार शान्त हो

जाते हैं तब ही आप शान्ति रूप मौनमें प्रवेश करते हो। इसी क्षण साक्षात्कार करो। नेत्र वन्द करके इन्द्रियोंका प्रत्याहार करके, मनको शान्त निश्चल करके, विचारोंको रोककर, वुद्धिको तीव्र करके, ॐकार चिन्तन द्वारा चित्त शुद्धि करके भाव सहित प्रणवोच्चार द्वारा दिव्य महिमा और ब्रह्म तेजका अनुभव करो। चौवीसों घण्टे ब्रह्ममयी चेतनाको अनवरत जारी रखो। आत्म ज्ञानका निरन्तर प्रवाह रखो। यह अत्यन्त आवश्यक है। यह सवसे वड़ी शर्त है। यही वहुत वड़ी वांछनीय वस्तु है।

वृत्ति कहासे उठती है। चित्तसे या मनसे। वृत्ति क्यों उठती है? यह अन्तःकरणका स्वभाव है। इसका क्या कर्म है? यह आवरण भग करती है अर्थात् स्थूल अविद्याके आवरणको जो पदार्थोंको ढक रखता है हटाती है। यह मनुष्यको पूर्णता (जीवन्मुक्ति) प्राप्त करने तक उन्नतिमें सहायक होती है।

आपको पदार्थ या विषय नहीं बांधते। वृत्ति और उसके साथ तादात्म्य सम्बन्ध ही आसक्ति और वन्धनका कारण होते हैं।

वृत्ति ज्ञानिजनोंमें आज्ञा चक्रमें कुण्डलिनीको खोलती है और उसे सहस्रार चक्रसे मिलाती है। यह एक मार्ग है।

अपने ही प्रयत्नों द्वारा जिस पदार्थपर मन धारणा करता है उसीका रूप बन जाता है। यह स्त्रीका चिन्तन करता है तो स्त्रीका रूप बन जाता है। यह वृत्ति तदाकार कहलाती है। यदि यह ईश्वर या ब्रह्मका चिन्तन करता है तो ईश्वर या ब्रह्मका रूप बन जाता है। ब्रह्माकार वृत्ति अब पैदा होती है। पहली अवस्थामें मनमें राजस भर आता है और दूसरी अवस्थामें सत्व या पवित्रता भरती है।

यदि आप सुवर्णके प्यालेमें नींबू या इमलीका रस भरो तो प्याला खराब नही होता। यदि आप पीतल या तांबेके बर्तनमें भरोगे तो रस एकदम खराब हो जावेगा और विषैला बन जावेगा। इसी प्रकार यदि किसी मनुष्यके शुद्ध मनमें विषय वृत्तियां हों तो वे उसको मलिन नहीं करेंगी और विकार उत्पन्न नहीं होगा। यदि मलिन पुरुषोंके मनमें विषय वृत्तियां हो उनमें उत्तेजना होगी जब वे विषयोंके सम्मुख आवेंगे।

एक बड़े आपरेशनके हस्पतालमें सहायक चिकित्सक एक समयमें एक ही रोगीको प्रधान चिकित्सकके कक्षमें परीक्षाके लिये भेजता है। इसी प्रकार मन भी मनोद्वारसे एक विचारको ही मानसिक कारखानेमें प्रवेश

करने देता है।

अर्धचेतन मन स्मृति कार्यके समय चेतन मनके द्वार पर और सब वस्तुओंको दबाकर यथा समय उचित वस्तु ही लाता है। यह निरीक्षकका काम करता हैं और केवल उपयुक्त स्मृतियोंको ही गुजरने देता है। यह कैसी आश्चर्य जनक यन्त्र क्रिया है। इन दोनों प्रकारके मनका सचालक कौन है? इनको किसने बनाया? वह कितनी महान् व्यक्ति होगी। जब मैं उसका ध्यान करता हूं तो रोमाञ्च खडे हो जाते हैं। जब लिखता हूं तो लेखनी कम्पित हो जाती है। क्या आप उसके साथ रहना नहीं चाहते। उसके साथ संसर्गमें रहना कितना बड़ा सम्मान (विशेषाधिकार) और हर्षकी बात है।

महर्पि पतञ्जलिके राजयोगके अनुसार पांच प्रकारकी मनोवृत्तियां होती हैं अर्थात् प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति। यदि यह पांचों मानसिक क्रियायें दबा दी जावें तो इच्छाओं और अन्य क्रियाओंका निग्रह स्वयं ही हो जावेगा।

ठीक मत या ठीक सबूतको प्रमाण कहते हैं। उल्टा अर्थ समझनेको विपर्यय कहते हैं। निर्मूल कल्पनाको विकल्प कहते हैं। सुषुप्तिका नाम निद्रा है और स्मरण

क्रियाको स्मृति कहते हैं।

मनोवृत्तिसे विवेक वृत्तिपर पहुंचना चाहिये। मनोवृत्तिका सम्बन्ध मनोमय कोषसे है। विवेक वृत्तिका विज्ञानमय कोषसे सम्बन्ध है। विज्ञानमय कोषको समृद्ध करनेसे मनोवृत्तियोंको जीता जाता है। विवेक वृत्तिसे साक्षी वृत्तिपर पहुंचना चाहिये। साक्षी वृत्तिसे अखण्डाकार वृत्ति प्राप्त करनी चाहिये। अखण्डाकार वृत्तिसे अखण्ड एक रस प्राप्त करना चाहिये। यही ब्रह्म स्वरूप है, कैवल्य है और जीवनका अन्तिम लक्ष्य है।

वृत्तियां मनके विकार हैं और वे अविद्याके कार्य हैं। जब ज्ञान द्वारा अविद्या नष्ट हो जाती है तो वृत्तियां भी उसी प्रकार मनमें लय हो जाती हैं जैसे गर्म तसलेपर डाला जल उसीमें सूख जाता है।

क्रोध बुद्धिको आच्छादित कर देता है। यदि आप खेदके भावको भूल भी गये हों तो भी यह मनके भीतर सुप्तावस्थामें छिपा रहता है। इसका असर कुछ काल तक रहता है। यदि आप इसी प्रकारके ईर्षा, द्वेष, घृणाके विचार एक ही मनुष्यके बारेमें बार-बार दुहराते रहो तो उनका असर अधिक समय तक रहता है। क्रोध भावको दोहरानेसे द्वेषकी वृद्धि होती हैं। साधारणसी

दुर्भावना भी तीव्र द्वेषमें बदल जाती है यदि क्रोध बार-म्बार लाया जावे। जब मनमें बड़ी वेगवान उथल-पुथल होती है तो एक पुस्तकके किसी अंशको आप साफ-साफ नहीं समझ सकते। आपकी विचार शैली ठीक और निर्मल नहीं रह सकती। आप शान्त चित्तसे एक चिट्ठी भी नहीं लिख सकते। क्रोध दिमागको, नस-जालको और रक्तको विकृत कर देता है।

पक्षपातसे मन और मस्तिष्क मन्द पड़ जाते हैं। मन ठीक-ठीक विचार नहीं कर सकता। पक्षपात शरीर पर खुले हुए फोड़ेके समान है जिसमें मनुष्यकी इच्छा शक्ति झरती रहती है। अपना मत निश्चय करनेमें उदार बनो। हर एक दर्शनशास्त्र और धार्मिक विचारको स्थान दो। किसी जातिका एक धर्म उसकी उन्नतिकी अवस्था, जन स्वभाव और सामर्थ्यके अनुपातसे अनुकूल होता है। आर्यसमाज, ब्राह्मसमाज, नवीन विचारशैली, रहस्यवाद और और अनेक प्रकारके मत मतान्तर अपनी-अपनी उपयुक्त सेवा करते हैं। पक्षपात तो केवल अयुक्ति-संगत अरुचि है। प्रयत्न और उचित विचार द्वारा इसको दूर करना चाहिये।

पक्षपात, विचारहीन धारणा और असहिष्णुता ये

तीन अवाञ्छनीय मनोवृत्तियां हैं। पक्षपातसे मन कठोर हो जाता है। यह एक प्रकारका मानसिक फोड़ा है। यदि मुसलमानोंके विरुद्ध आपको पक्षपात है तो कुरानमें दिये हुए मोहम्मद साहबके उपदेशोंको आप ठीक-ठीक नही समझ सकते। क्योंकि पक्षपातने मनको कठोर बना दिया है इसलिये कुरानके आध्यात्मिक उपदेशोंको ग्रहण करनेके लिये मन और मस्तिष्क एक रस होकर स्पन्द नही करेंगे। संकुचित विश्वास, धारणा और विचारोंसे उत्पन्न हुई संकीर्ण हृदयताको असहिष्णुता कहते हैं। अपने मत स्थिर करनेमें आपको नितान्त अनासक्त और गम्भीर होना चाहिये। आपका मत दूसरेके मतके विरुद्ध भले ही हो तो भी आपमें पूरी सहन-शीलता होनी चाहिये। सहनशील मनुष्यका हृदय विशाल होता है। इससे स्थायी शान्ति मिलती है।

(Self-Sufficiency) आत्म-तृप्ति मनका एक विचित्र विकार है। यह व्यर्थ मद, अहंकार और दम्भका कार्य है। यह राजस् वृत्ति है। इसे उचित विचार और विनयके द्वारा दूर करो।

४—विचार शक्ति

यदि आपके विचार स्वस्थ होंगे तो आपका शारी–

रिक स्वास्थ्य भी ठीक होगा। यदि आपके मनमें रोगी विचार होंगे अर्थात् रोगी तन्तुओं, दुर्बल नसों और अङ्गोंकी क्रियाओंके उचित रूपमें क्रिया न करनेके विचार होंगे तो आपको स्वास्थ्य, सौन्दर्य और एक रसत्वकी आशा नहीं रखनी चाहिये। मुझे फिर भी कहना पड़ता है (शरीर मनके द्वारा बनता है। यदि आपके विचार बलवान होंगे तो भौतिक शरीर भी बलिष्ट होगा।)

यदि आपके मनमें घृणाके विचार हैं तो जिसके प्रति आपको घृणा है वास्तवमें आप उसके हत्यारे हैं। इस प्रकार आप स्वयं अपनी ही हत्या करते हो क्योंकि ये विचार लौटकर आपके ही पास आते हैं।

जितने दृढ विचार होंगे उतनी हो जल्दी उनका फल होगा। विचार और कर्मकी क्रियाको ब्योरेवार सम-झाना कठिन हैं। प्रत्येक कर्मका दो प्रकारका फल होता है एक व्यक्तिगत मनपर और दूसरा जगत पर। विचारोंमें प्रत्येक परिवर्तनके साथ मनस्तत्वमें भी स्पन्द होता है।

सब प्रकारके बुरे विचार मनको गन्दा और आहत करते हैं और यदि उनको जारी रखा जावे तो वे सचमुच रोग बन जाते हैं और मनको ऐसा विकृत बना देते हैं

कि जीवन पर्यन्त उनकी चिकित्सा नहीं हो सकती।

मनुष्य अपना स्वभाव आप ही बनाता हैं जैसा सोचता है वैसा ही बन जाता है। वह अपने भावी जीवनकी परिस्थितियां दूसरोंपर अपने कर्मोंका प्रभाव डालकर स्वयं बनाता है। यदि आपके उच्च विचार होंगे तो शनैः शनै आप अपने लिये ऊंचा चारित्र्य बना लोगे परन्तु यदि आपके विचार नीच श्रेणीके हैं तो हीन चारित्र्य ही बनेंगे। विचार द्वारा मनुष्य बनता है। एक जन्ममें जिस वस्तुका वह अधिक विचार करता है अगले जन्ममे स्वयं भी वही बन जाता है।

यदि मन निरन्तर एक ही विचार धारामें चलता रहे तो एक नाली सी बन जाती है जिसमें विचार शक्ति स्वतः ही दौड़ती रहती है और ऐसी विचारकी आदत मृत्युके बाद भी रहती है। क्योंकि इसका सम्बन्ध आत्मासे होता है यह भावी भौतिक जीवनमें भी एक सामर्थ्य और विचार शैलीके रूपमें बनी रहती है।

दूसरोंके स्वत्वकी स्वार्थ-पूर्ण लालसाको यद्यपि वर्तमान कालमें कभी क्रियात्मक धोखेके रूपमें परिणत न भी किया हो यह मनुष्यको आगामी जीवनमें चोर बनाती है और गुप्त रूपसे दबाये हुए मनमें घृणा और

प्रतीकारके भाव आगामी जीवनमें हत्यारेको जन्म देते हैं। ऐसे ही निस्वार्थ प्रेमके फल-स्वरूप परोपकारी जीव उत्पन्न होता है और दया-पूर्ण भावोंसे सब जीवोंमें मैत्री भाव रखने वाला मनुष्य बनता है।

इस मनका विस्तार ही सकल्प है और अपनी नाना-त्वशक्तिके द्वारा संकल्प जगतको जन्म देता है। अपनेको बिल्कुल संकल्प रहित बना दो और निर्विकल्प बन जाओ। तब आप पूर्ण शान्ति और आनन्दमें रहोगे।

हर एक कर्मकी एक पूर्वावस्था होती है, जिसके द्वारा वह कर्म बनता है। हर एक कर्मका एक भविष्य होता है जो उस कर्मसे बनता है। कर्मके बनानेमें एक इच्छा होती है जो उसे प्रेरणा करती है और एक विचार होता है जो उसे आकार देता है। कार्य और कारणकी अनन्त शृंखलामें प्रत्येक कर्म एक कडी होता है, प्रत्येक कार्य स्वयं कारण बन जाता है और प्रत्येक कारण पहले कार्य बन चुका होता है। इस अनन्त शृंखलाकी हर एक कड़ी इच्छा, विचार और क्रिया रूपी तीन अंशोंसे बनी हुई होती है। इच्छा विचारको चलाती है और विचार क्रिया रूपमें परिणत हो जाता है।

"मनुष्य जैसा विचार करता है वैसा ही स्वयं बन

जाता है। विचारके द्वारा मनुष्य बनाया जाता है। जिस वस्तु पर मनुष्य विचार करता है स्वयं भी वही बन जाता है।" यदि आप साहसकी धारणा करो तो अपने स्वभावमें आप साहस भर लोगे। यही बात पवित्रता, सन्तोष, निःस्वार्थता और आत्म संयमकी है।

स्थिर और दृढ़तासे बने रहने वाला विचार मनकी एक निश्चित आदत बना देता है और वह आदत मनुष्यके चरित्रमें एक स्वभाव (लक्षण) के रूपमें प्रकट हुआ करती है। आप अपने चरित्रको इतने ही निश्चयके साथ नियमानुसार काम करते हुए बना सकते हो जैसे मिस्तरी दीवारको बनाता है।

विचारोंके सूत्रोंने मिल कर मानसिक और नैतिक स्वभाव बनाया हैं, और यह स्वभाव मिलकर ही चरित्र कहलाते हैं।

विचार-पूर्वक चरित्र गठनका प्रथम सोपान यह है कि हम अपने विचारोंका विषय सतर्क होकर पसन्द कर लें और फिर उसी लक्षण पर बार बार विचार करें। शीघ्र ही उस लक्षणको प्रकट करनेकी रुचि हो जावेगी। थोड़े समय बाद इसका अभ्यास स्वाभाविक हो जायेगा। विचार ही चरित्रको बनाते हैं। आप विचार के द्वारा ही

प्रारब्धका सूत कातते हो।

विचार बड़ी शक्ति है। इसमें अनुपम बल है। यह जान लेना बड़े महत्वकी बात है कि इस शक्तिको सबसे उत्तम विधिसे और अधिकसे अधिक फलके लिये किस प्रकार उपयोग किया जावे। ध्यानके अभ्याससे यह अच्छी प्रकार जाना जाता है।

संकटमें पड़े हुए अपने मित्रकी सहायता सुखके विचार भेज कर कर सकते हो। जिस मित्रको सत्यकी खोज है उसकी सहायता उन सच्चाईयोंके विचार भेज कर कर सकते हो जिनको आप जानते हो। आप मानसिक वातावरणमें ऐसे विचार भेज सकते हो जिनसे उनके ग्रहण करने वाले मनुष्योंको प्रेरणा, पवित्रता और उन्नति मिलेगी।

जिस मनमें खोटे विचार भरे हों वह इसी प्रकारके विचार अपनी ओर खीचनेमें चुम्बकका काम करता है और इस प्रकार आदि बुराईको और भी बढ़ा देता है। मानसिक वातावरणमें भेजे हुए खोटे विचार उनके ग्राही मनोंको विषाक्त कर देते हैं। खोटे विचारमें लगे रहनेसे उससे विरक्ति कम होती जावेगी और मनुष्य उस विचारके अनुरूप ही कार्य करनेको प्रेरित हो जावेगा।

विद्युतकी गति एक सेकन्डमें १८६००० मील होती है। परन्तु विचारोंकी गतिमें कुछ समय नहीं लगता। विद्युतके माध्यम आकाशसे मन ज्यादा सूक्ष्म है इसलिये विचारोंकी गति विद्युतसे विशेष अधिक होती है।

वह कौनसा माध्यम सम्भव है जिसके द्वारा विचारोंकी प्रगति एक मनसे दूसरे मन तक होती है? इसकी सबसे उत्तम व्याख्या यही हो सकती है कि आकाशकी भांति मन भी समस्त देश या स्थानमें व्याप्त है और इसीके द्वारा विचारोंकी प्रगति होती है, जिस प्रकार भावोंकी प्रगति प्राणके द्वारा होती है। उष्णता, ज्योति (तेज) और विद्युतकी प्रगति आकाशके द्वारा होती है, और शब्दकी प्रगति वायुके द्वारा होती है।

यदि हम तालावमें पत्थरका एक टुकड़ा फेंक दें तो इसमें एक केन्द्रीय लहरें उस स्थानसे चारों ओरको क्रमगतिसे उठती हैं। इसी प्रकार दीपककी ज्योतिसे भी आकाशमें स्पन्दकी लहरें उस दीपकके चारों ओर फैलेंगी इसी रीतिसे भला या बुरा कोई एक विचार एक मनुष्यके मनमें उठता है तो यह मानसिक वातावरणमें स्पन्दन (कम्पन) उत्पन्न कर देता है जो चारों ओर दूर दूरतक जाते हैं।

अच्छा विचार तीन प्रकारसे सफल होता है। जिस मनुष्यके मनमें उठता है उसके मनोमय कोषमें सुधार करके उसे पवित्र करता है। जिस व्यक्तिके सम्बन्धमें वह विचार होता है उसे लाभदायक होता है। और अन्तमें समस्त मानसिक वातावरणको सुधार कर सारी मानव जातिको लाभ पहुचाता है।

इसके विपरीत खोटा विचार तीन प्रकारसे अभिशाप लाता है। पहले वह विचार करने वाले मनुष्यके मनोमय कोषको क्षत करके उस मनुष्यको हानिकारक होता है। दूसरे जिस मनुष्यके बारेमें वह विचार किया जाता है उसे दुखदायी होता है और तीसरे समस्त मानसिक वातावरणको दूषित करके सारी मानव जातिको हानि पहुचाता है।

यही बात पर्याप्त नहीं है कि आपके विचार खोटे नही हैं। आपके खोटे विचारोंको अच्छे विचारोंमें बदलना आवश्यक है। आपकी साधनाका यह प्रथम अङ्ग है। आपको उन्हें सहायक विचार बनाना चाहिये। जब उन्हें बाहर भेजा जावे तो वे इस योग्य होवें कि आपके पड़ोसियों और खिन्न मानव समाजको अधिकसे अधिक भलाई कर सकें।

विचार साफ-साफ करो। बार-बार अपने विचारोंको शुद्ध करो। एकान्तमें निरीक्षण करो। अधिक अंशों तक अपने विचार पवित्र बना लो। विचारोंको शान्त कर लो। मनको उबलने मत दो। एक विचारकी लहर उठने दो और उसे शान्त हो जाने दो। तब दूसरे विचारको प्रवेश करने दो। जिस विषय पर आप एक समयमें विचार कर रहे उससे असम्बद्ध सारे बाह्य विचारोंको दूर भगा दो।

बेतार यन्त्रके द्वारा बोलनेमें गायक कलकत्तेमें सुन्दर गाने गाता है। देहलीमें अपने मकानमें रेडियो द्वारा आप उन्हें अच्छी प्रकार सुन सकते हो। बेतार यन्त्रके द्वारा सारे सन्देश प्राप्त किये जाते हैं। इसी प्रकार आपका मन बेतार यन्त्रके समान है। शान्ति, समत्व, एक रसता और आध्यात्मिक स्पन्दोंसे सम्पन्न एक सन्त जगतमें शान्ति और एकताके भाव प्रेषित करता है। वे चारों ओर बड़ी तीव्र विद्युत गतिसे दौडते हैं और हजारों मनुष्योंके मनमें प्रवेश करते हैं और उनमें भी शान्ति और एकताके वैसे ही विचार उत्पन्न कर देते हैं। परन्तु जिसके मनमें ईर्षा, प्रतिकार और घृणा भरी हुई है ऐसा ससारी मनुष्य भेदपूर्ण विचार ही बाहर भेजता है जो

हजारोंके मनमें प्रवेश करके वैसे ही घृणा और भेदके भाव पैदा कर देते हैं।

कुछ मनुष्योंके मनमें पापपूर्ण विचार बने रहते हैं। उन्हें ज्ञान नहीं होता कि अपने मनको उनसे किस प्रकार हटावें। वे इन विचारोंके शिकार वन जाते हैं। पुण्य और पाप सम्बन्ध सूचक नाम हैं। इनको मन ही बनाता है। भगवन्नामका जप, दान और अनाहार व्रतसे बड़ेसे वड़े पाप भी नष्ट हो जाते हैं। आप डरते क्यों हो? बुरेसे बुरा पापी भी मोक्ष प्राप्त कर सकता है और सबसे पावन बन सकता है। वाल्मीकि, जगाई, मधाई और अजामिलकी प्रारम्भमें क्या दशा थी? क्या वे प्रथम श्रेणीके दुष्ट नहीं थे? प्रणव और रामनामका उच्चारण करो और साहस पूर्वक कहो कि मैं अब पवित्र हूं, मैं अब पावन हूं। निराशाके लिये स्थान कहां हैं? किसीको निराश नहीं होना चाहिये।

यदि आप अपवित्र वस्तुओंको बारबार सोचोगे तो दोहराये जानेसे खोटा विचार शक्ति प्राप्त कर लेगा। उसको गतिका बल मिल जायेगा। ऐसे विचारोंको तुरन्त भगा देना चाहिये। यदि ऐसा करनेमें कठिनाई प्रतीत होवे तो उसके विपरीत अच्छे ऊंचे और ईश्वर

सम्बन्धी विचार धारण करो। तब खोटे विचार स्वयं ही मर जावेंगे। पहले मार्गसे यह अधिक सुगम है।

नित्य हजारों बार परमात्माका नाम जपनेसे सद्विचारोंको बल मिलता है। नित्य हजार बार "अहं ब्रह्मास्मि" कहनेसे यह विचार दृढ़ हो जाता है कि आप आत्मा हो, यह विचार कि आप देह हो निर्बल होता जाता है।

यदि आप किसी मनुष्यके लिये प्रेम और सहायताका भाव भेजते हो तो वह आपके मस्तकसे निकल कर सीधा उस मनुष्यके पास जाता है, उसके मनमें इसी प्रकार का प्रेमभाव उत्पन्न करता है और दुगनी शक्तिके साथ आपके पास वापिस आता है। ऐसे ही यदि आप किसी मनुष्यके प्रति घृणाका भाव भेजो तो वह उस मनुष्यपर आघात करता है और जब दुगनी शक्तिके साथ वापिस आता है तो आपको भी आहत कर देता है। इसलिये विचारोंके नियमको समझ लो, केवल दया, प्रेम कृपाके ही विचार अपने मनमें उत्पन्न करो और सदा सुखी रहो। विचार तुम्हारे अपने ही सच्चे बच्चे हैं। विचारोंकी संततिके लिये सचेत रहो। सुपुत्र अपने पिताको सुख, नाम और यश देता है कुपुत्र बदनामी और

अपयश देता है। इसी प्रकार सद्विचार आपको सुख प्रसन्नता देता है और कुविचार दुख और कष्ट पहुंचाता हैं। जैसे आप अपने बच्चोंकी पालना बड़ी होशियारीसे करते हो इसी प्रकार आपको सावधानीसे अच्छे और उच्च विचारोंकी पालना करनी होगी।

आपको दूसरे मनुष्यों और सारे जगतको प्रेमपूर्ण और सहायक विचार भेजनेकी रीति सीखनी चाहिये। आपको जानना चाहिये कि बाधाओंको हटाकर सारे सद्विचारोंको दुखी मानव् समाजकी भलाईके लिये इकट्ठा करके सहायक सेनाके रूपमें किस प्रकार भेजा जाता हैं। विचार प्रेषण बड़ा सुन्दर विज्ञान है। यह बहुत ठीक विज्ञान है।

जैसे गङ्गाजीका प्रवाह उसके तटपर रहने वालोंको शीतलता और प्रसन्नता देता है इसी प्रकार आपके प्रेम और सहायताके दृढ़ विचारोंका प्रवाह भी चिन्ता, शोक और दुःखसे संतप्त मनुष्योंको धैर्य, शान्ति और सुख देनेवाला होना चाहिये।

विचार एक महान् शक्ति है। विचार गति शील है। विचार रचनात्मक है। विचारकी शक्ति द्वारा आप आश्चर्यपूर्ण कार्य कर सकते हो।

अत्यन्त शक्तिशाली विचारों वाला योगी यदि एक शब्द भी कहेगा तो उसका प्रभाव दूसरे मनुष्यों पर बहुत भारी पड़ेगा। जो मनुष्य सत्य बोलता है और जिसमें नैतिक पवित्रता है उसके विचार सर्वदा शक्तिपूर्ण होते हैं। जिसने दीर्घ अभ्यास द्वारा क्रोधका निग्रह कर लिया है उसमें बड़ी भारी विचार शक्ति होती हैं।

जैसे व्यर्थ बातचीत करनेमें और गपशपमें शक्ति क्षीण होती हैं उसी प्रकार निरर्थक विचार रखनेमें भी शक्ति क्षीण होती हैं। इसलिये आपको एक भी विचार व्यर्थ नहीं खोना चाहिये। आपको सारी विचार-शक्ति बचा लेनी चाहिये और उसे ध्यानके अभ्यास और सहायकारी लोक सेवामें लगाना चाहिये।

विचार अतीव संक्रामक होता है। एक भले और ईमानदार मनुष्यको किसी चोरके साथ रखो, वह चोरी करने लगेगा। नशा न करनेवाले मनुष्यको शराबीके साथ रखो वह मदिरा पीने लगेगा।

विचार सूक्ष्म पदार्थ है। हर एक विचारमें बोझ, आकार, रूप और रंग होता हैं। आध्यात्मिक विचारका पीतवर्ण होता है। क्रोध और घृणायुक्त विचारका श्यामल रक्त वर्ण होता हैं। स्वार्थपूर्ण विचारका भूरा

रंग होता है इत्यादि। योगी अपनी आन्तरिक योग चक्षुसे यह सब विचार देख सकता है।

अच्छे सद्गृहस्थोंके भी कभी कभी सद्विचार बनते हैं और वे जगतमें सहायक विचार भेजते हैं। सत्यके मार्गमें साधकके लिये यह पर्याप्त नहीं है। उसके मनसे निरन्तर सहायक विचारोंका प्रवाह वेगसे चलता रहना चाहिये। यह प्रेम और सहायतापूर्ण विचारोंका अनन्त और आरोग्यकारी प्रवाह होना चाहिये। उसमें शक्ति होनी चाहिये कि २० बीस मनुष्योंकी टोली सैंकड़ों और हजारों मनुष्योंके समूहमें प्रेम, सुख और प्रसन्नता भर सके। उसमें दृष्टिमात्रसे और थोड़ेसे मधुर शक्तिशाली शब्दोंसे उनमें उत्साह, उच्च भावना और हर्षसे चलायमान करनेकी सामर्थ्य होनी चाहिये। यह आध्यात्मिक शक्ति और इच्छा शक्ति हैं।

आपके अधिकतर विचार दृढ़तासे जमे हुए नहीं होते। वे आते है और भाग जाते हैं। वे इसलिये अनिश्चित होते हैं। उनके अङ्ग साफ़ दृढ़ और पूर्णतया रेखान्वित नहीं होते। साफ, निरन्तर और गम्भीर विचार क्रिया द्वारा आपको उनमें बल पहुचाना होगा।

अन्तःनिरीक्षण और ध्यानके द्वारा आपको अपने विचारोंको स्फुट करना होगा तब गड़बड़ी मिट जावेगी। विचार स्थिर और दृढ़ हो जावेंगे।

हर एक वस्तु अपने ही समान वस्तुको आकृष्ट करती है। यह प्रकृतिका नियम है। विचारोंकी दुनियामें भी यह नियम काम करता है। समान विचार वाले मनुष्य एक दूसरेकी ओर आकृष्ट होते हैं। इसी कारण यह लोकोक्तियां प्रसिद्ध हैं कि "एक जातिके पक्षी इकट्ठे हुआ करते हैं", जैसी संगति मनुष्य रखता है उसीसे उसका चरित्र जाना जाता है। चिकित्सक दूसरे चिकित्सककी ओर आकृष्ट होता है। कवि दूसरे कविकी ओर आकृष्ट होता है। गायक दूसरे गायककी ओर आकृष्ट होता है। एक दार्शनिकका झुकाव दूसरे दार्शनिककी ओर हुआ करता है। एक आवारा दूसरे आवारासे प्रेम करता है।

जब दूसरोंकी सहायताके लिये आप कोई उपयोगी सहायक विचार भेजो तो उसका कोई निश्चित आशय और तत्व होना चाहिये। तभी वह विचार कुछ निश्चित कार्य करेगा।

विचार भी वस्तुओंके समान हुआ करते हैं। जैसे आप-अपने किसी मित्रको नारंगी दे देते हो और फिर

उसे वापिस ले लेते हो इसी प्रकार आप अपने मित्रको एक उपयोगी और बलशाली विचार दे सकते हो और उसे वापिस ले सकते हो। विचारका उपयोग करनेकी कला आपको जरूर जान लेनी चाहिये। यह विज्ञान बड़ा रोचक और सूक्ष्म है। इस भौतिक संसारकी तुलनामें विचारोंका जगत अधिक वास्तविक (सत्य) है।

इस संसारमें विचारशील मनुष्य बहुत कम हैं। हम में से बहुतसे लोग नहीं जानते कि ठीक ठीक विचार किसे कहते हैं। अधिक संख्यामें लोगोंके विचार छिछले होते हैं। गम्भीर विचारके लिये तीव्र साधन (अभ्यास) की आवश्यकता है। मनके यथोचित समृद्ध होनेके लिये अनेको जन्म चाहियें। तब ही यह गम्भीर और ठीक-ठीक विचार कर सकेगा। वेदान्तके साधनके लिये कुशाग्र बुद्धि चाहिये। ठोस विचार, दृढतासे रहनेवाले विचार, साफ़ विचार, सारी समस्याओंकी जड़ तक पहुंचनेवाले विचार स्थितियोंको मूल तक जाननेवाले विचार और समस्त विचारोंकी पूर्व कल्पनाओं तकको जान लेनेवाले विचार, ही वेदान्तिक साधनके सार हैं। जब आपको किसी पुराने विचारकी जगह कोई नया उन्नत करनेवाला विचार मिल जावे तो आप उस पुराने विचारको त्याग

दो चाहे वह कितना ही दृढ़ और जमा हुआ होवे। यदि आपमें इतना साहस नहीं है कि अपनी विचार क्रियाके परिणामको और विचारके निष्कर्षको ग्रहण कर सको उसका प्रभाव आपके व्यक्तित्वपर कुछ भी क्यों न होवे तो आपको दर्शन शास्त्रमें कष्ट नहीं करना चाहिये। भक्ति मार्ग ग्रहण कर लो। वेदान्ती तो स्वतन्त्र और मौलिक विचार क्रियाका आश्रय लिया करते हैं।

अपने विचारोंका क्रम और उनके द्वारा आकृष्ट प्रभावोंका क्रम निश्चय करना सर्वथा आपके ही हाथमें है और आप परिस्थितियोंके लचकदार खिलौने नहीं हो जब तक आप स्वयं ही ऐसे बनना पसन्द न करो।

समान वस्तुके आकर्षणका बड़ा नियम सर्वदा कार्य करता रहता है। आप जीवनके इस ओरसे निरन्तर अपनी विचार धाराके समरूप प्रभावों और स्थितियोंको आकृष्ट करते रहते हैं।

विचारकी शक्ति अति महान् हैं। हर सम्भव प्रकारसे आपका प्रत्येक विचार आपके लिये यथार्थ मूल्य रखता है। आपकी शारीरिक और मानसिक शुक्ति, जीवनमें सफलता और अपने सङ्गसे जो प्रसन्नता आप दूसरोंको पहुंचाते हैं ये सब आपके विचारोंके स्वभाव लक्षणपर

निर्भर करता है। आपको विचार संस्कृति जाननी चाहिये।

किसी मनुष्यकी ओर भेजा हुआ प्रत्येक कुविचार उसके लिये तलवारके समान होता है।

चाहे जिस प्रकारका विचार अपने साथ लिये रहो और जब तक आप उसे अपने साथ रखो, चाहे जैसे भी आप पृथ्वी या समुद्रपर घूमो, आप वेरोक-टोक (निरन्तर) जानमें या अजानमें केवल वही वस्तु अपनी ओर खींचोगे जो आपके विचारके प्रधान लक्षणसे मिलती-जुलती होगी। विचार आपकी निज सम्पत्ति हैं और उन्हें आप अपने रुचिके अनुसार नियन्त्रण कर सकते हो यदि आप स्थिरतासे अपनी सामर्थ्यको पहिचान लो।

विचारको केन्द्रमें एकत्र किया जाता है और उसकी दिशा निर्देश की जाती है, और जितनी बड़ी राशिमें यह किया जावे उतने ही प्रभावसे वह उस कार्यको सम्पन्न करता है जिसके लिये उसे प्रेषित किया जाता हैं।

"समान वस्तु सजातीय वस्तुको अपनी ओर आकृष्ट करती है।" विचारके संसारमें भी सजातीय विचारके लोग एक दूसरेकी ओर खिचते हैं। यह विश्वव्यापी नियम निरन्तर कार्य करता रहता है चाहे हम इसको

जान सकें या न जान सकें। ऐसा कहना चाहिये कि हम विचारोंके एक विशाल समुद्रमें रहते हैं और हमारे चारों ओरका वातावरण उन विचार शक्तियोंसे भरा हुआ है जो विचार तरङ्गोंके रूपमे निरन्तर भेजी जा रही हैं। या तो जान-बूझकर या अनज्ञानमें न्यूनाधिक मात्रामें हम सबपर इन विचार शक्तियोंका प्रभाव होता है। यह प्रभाव उतनी ही राशिमें होता है जितने न्यूनाधिक परिमाणमें हमारी अनुभव शक्ति बढ़ी होती है या जितने अंशमें हम आध्यात्मिक विषयमें शून्य होते हैं और बाह्य प्रभावोंको जल्दी ग्रहण करते हैं। इन्हीं राशियोंसे यह निश्चय हुआ करता है कि कौन-कौनसे प्रभाव हमारे विचार साम्राज्यमें प्रवेश करेंगे और ऐसे हमारे जीवनपर प्रभाव डालेंगे।

योजक विचार क्रिया मनको विषयपर लगाती है और पोषक विचार क्रिया मनको निरन्तर लगाये रखती है। उस उन्नतिशील मनका आनन्द और विस्तार हर्ष द्वारा होता है जिसकी खिन्नताके विनाशका उपाय इन दोनों विचार क्रियाओं द्वारा पूर्ण हो चुका है। जब योजक और पोषक विचार क्रिया द्वारा हर्ष, आनन्द और चित्तकी एकाग्रता हो जाती है तब ही ध्यानावस्था सम्पन्न हो सकती है।

यह आवश्यक नहीं है कि उपदेश करनेके लिये और जनताके मनको उन्नत करनेके लिये कोई सन्त जनताके सामने मञ्चपर ही प्रकट होवे। कुछ एक सन्त उदाहरण द्वारा उपदेश किया करते है। उनके अपने ही जीवन मूर्तिमान उपदेश हुआ करते हैं। वे दृष्टि निक्षेपसे ही सहस्रों जनोंके मनको उन्नत कर देते हैं। बहुतोंको पुण्यात्मा सन्तोंके दर्शनसे ही प्रेरणा मिला करती हैं। सन्तोंके विचार-स्पन्दको कोई नहीं रोक सकता है। उनके विचार स्पन्दोंकी गति बहुत दूर-दूर हुआ करती है जिससे संसार पावन होता हैं और वे अनेक सहस्रों मनुष्योंके मनमें प्रवेश किया करते हैं। जो संसारमें निष्काम कर्मयोगका अभ्यास करता है वह निःस्वार्थ कर्मों द्वारा अपनेको शुद्ध करता है और जो हिमालयकी गुफामें ध्यानका अभ्यास करता है वह अपने आध्यात्मिक स्पन्दों द्वारा जगतकी सहायता करता है, संसारी मनोवृत्तिवाले सामाजिक कार्यकर्त्ता इस विषयको नहीं समझ सकते।

जो शक्तिशाली विचार आज सायंकालमें मनके ऊपर तैरते हैं, वह प्रातःकाल बिस्तरसे उठते ही आहिस्ता-आहिस्ता प्रकट होते हैं और आकार प्राप्त करते हैं।

जब कोई विचारमें मनमें मंडरावे उसे पूरा कर लो। उसे दीर्घ काल तक लटकने मत दो। यह बार-बार फिर भी आवेगा और आपके लिये दुःखमय साबित होगा। जब कभी किसी मित्रको पत्र भेजनेका विचार मनमें आवे इस कामको उसी समय समाप्त कर लो। इसमें विशेष विलम्ब मत करो।

जैसे ही प्रातःकाल धीरे-धीरे जागते हो प्रथम विचार जो प्रकट होता है वह अपने अस्तित्वका होता है 'कि मैं हूं'। फिर गत सायंकालकी घटनाओंकी स्मृति आती है। फिर वे विचार आते हैं जो दिनभरमें क्रिया रूपमें सम्पन्न होनेवाले हैं। इसको सतर्क होकर देखो।

५—मुख मनका सूचीपत्र है

जो कुछ आपके मनमें होगा वही आपके शरीरमें प्रकट हो जावेगा। मुखसे मनका हाल मालूम होता है। शरीर तो मनके द्वारा बनाया हुआ एक सांचा है। किसी मनुष्यकी ओर कोई भी कुभाव या कटुता होवे तो वह शरीरपर तत्काल अपना प्रभाव डालेगी और देहमें किसी-न-किसी प्रकारका रोग पैदा कर देगी। इसलिये अपनी विचार क्रिया और विचारोंके चुनावमें सावधान रहो। सदा उन्नत; सौम्य; प्रेमपूर्ण और कृपायुक्त विचार

बनाये रहो। आपको एकरसता, स्वास्थ्य और सौन्दर्य मिलेगा।

यदि आप किसी मनुष्यकी मुखमुद्रा, वाणी और आचरणको सतर्क होकर देखो तो आप उसके मनके प्रमुख विचारको जान सकते हो। इसके लिये थोड़ा-सा साहस, चातुर्य, अनुभव और बुद्धि संस्कारकी आवश्यकता है।

आप अपने विचारोंको मुखसे कठिनतासे छिपा सकते हो। आप मूर्खतावश भले ही सोचते रहो कि अपने विचारोंको गुप्त रखा हुआ है।

कामुकताके विचार, लोभ, ईर्ष्या, क्रोध, प्रतिकार, घृणा आदिके विचार तत्काल ही अपनी गहरी छाप आपके मुखपर प्रकट करते हैं। मुख बहुत विश्वासपात्र लेखपत्र रक्षक और बहुत नाज़ुक लेखन यन्त्र है जो आपके मनमें भागते हुए विचारोंका लेखा रखता है। किसी समयमें मनकी प्रकृति और उसकी सामग्रीको प्रकट करनेके लिये मुख एक कलईदार आइना है।

आत्माकी खिड़कियाँ (नेत्र) मनकी दशा बताती हैं। आँखोंमें तार सन्देशका यन्त्र हैं, जो विश्वासघात, चालाकी, धोखा, शुद्ध प्रेम, दया, भक्ति, उदासी, शोक,

घृणा, प्रसाद, शान्ति, एकरस, स्वास्थ्य, शक्ति, बल और सौन्दर्यके सन्देश बाहर भेजता है। यदि आपमें अन्य मनुष्योंकी दृष्टि पहिचाननेकी कला है तो आप तुरन्त उनके मनका हाल भी जान सकते हो।

जो यह समझता है कि वह अपने विचारोंको छिपा सकता है वह प्रथम श्रेणीका मूर्ख है। उसकी दशा उस शतुरमुर्ग कैसी है जो शिकारियोंसे पीछा किया जानेपर रेतके नीचे अपना सिर छिपा लेता है और सोचता है कि उसे कोई नहीं देख सकता।

आपका मुख ग्रामोफोनकी चूड़ीके समान है। जो कुछ आप विचार करते हो वह तत्काल आपके मुखपर अङ्कित हो जाता है। प्रत्येक खोटा विचार मनके भाव मुख पर अङ्कित करनेके लिये छेनी या सुईका काम करता है। खोटे विचार जैसे घृणा, क्रोध, काम-वासना, ईर्षा, प्रतीकार आदि द्वारा किये हुए घावों और निशानोंसे आपका मुख भरा हुआ है। आपके मुखपर घावके लक्षणसे मैं तुरन्त आपके मनकी दशा पहचान सकता हूं। मैं आपके मनका रोग तुरन्त निश्चय कर सकता हूं।

आपके विचार और भाव मुखपर अपना गहरा प्रभाव उत्पन्न करते हैं। मनके अन्दर क्या हो रहा है

उसको बतानेके लिये मुख आपके लिये इश्तेहारका बोर्ड है।

६—महत् तत्व

अव्याकृत अव्यक्तसे सबसे प्रथम महत् तत्व प्रकट होता है। यह पूर्व प्रकट होने वाला सर्व प्रथम तत्व है। परन्तु ज्ञान प्राप्तिमें सहायक होनेमें यह सबसे अन्तिम तत्व है। बुद्धि सबसे आखिरमें काम करती है और निश्चय करती है कि यह घर है, यह पेन्सिल है इत्यादि।

जैसे हवामें दीपक हिलता है तो आप पदार्थोंको साफ़ साफ नही देख पाते। इसी प्रकार जब क्रोध द्वारा बुद्धि उद्विग्न होती है तो बुद्धिमें असंयम हो जाता है और आप विषयोंको भली प्रकार देख और समझ नहीं सकते। बुद्धि सम्पूर्ण प्रकाश रूप है।

गूढ़ विचार, तर्क, क्रमशः ध्यान क्रिया, ब्रह्म-चिन्तन, उपनिषदोंके स्वाध्याय, तथा योगवासिष्ठ और ब्रह्मसूत्रोंके मनन द्वारा विज्ञानमय कोषकी वृद्धि और पुष्टि होती है।

७—मन तीन वर्गों के अन्दर क्रिया करता है

मन सर्वदा देश, काल और कारण इन्हीं तीनो वर्गोंके अन्दर काम करता है। यह तीनों वर्ग मनके बनाये हुए पदार्थ हैं। वस्तुतः नारियलका पेड़ बीस फुट ऊंचा

नहीं है। ऊंचाई तो मनकी बनाई हुई व्याख्या है। बाहर तो केवल स्पन्द मात्र हैं। यह मन ही लम्बाई, चौड़ाई, मोटाई, दिशायें, चतुर्भुज, शून्य आदि बनाता रहता है। दो मीलकी दूरी आभास मात्र ही है। जब आप मनसे ऊपर पहुंच जाते हैं तो यह वर्ग बिल्कुल गायब हो जाते हैं। इसलिये ब्रह्म विचारके द्वारा मनको कुचल दो। तब आप शान्ति, आनन्द और परम कारण रूप प्रदेशमें पहुच जाओगे।

८—संकल्प

जो कुछ संकल्प और वासनायें आप बनाते हैं वे सब आपको ही मानो जालमें लपेटते जाते हैं। जैसे रेशमका कीड़ा अपनी बनाई कुकड़ीमे फंसता जाता है वैसे ही आप अपने ही बनाये हुये संकल्पों और वासनाओंके द्वारा बन्धन-ग्रस्त होते जाते हो। अपने सात्विक उच्च मनस् और विवेककी सहायतासे इस पशु बुद्ध्यात्मक मनको नष्ट कर दो।

विचार अनेक होते हैं और बदलतें रहते हैं। अभी अच्छे विचार प्रकट होते है, पांच मिनट पीछे खोटे विचार आ जाते हैं। मन बड़ा चञ्चल है और बदलता रहता है। इसलिये यह निर्विकारी आत्मा या कूटस्थ निर्विकल्प ब्रह्म नहीं हो सकता।

संकल्पोंके त्यागनेमे कंजूसी मत करो। तो फिर मौन होकर गुप्त रूपसे अपने हृदयमें संकल्पोंके नाशका विचार क्यों नहीं बनाते ? संकल्प ही संसार है और इसका विनाश मोक्ष है। जिन्होंने संकल्पोंका विनाश कर दिया है उन्हें बड़े सम्राट्का राज सिंहासन भी तुच्छ निर्मूल्य पदार्थ प्रतीत होगा।

यदि दुःखदायी सकल्पोंके विनाशके साथ-साथ मनका भी नाश कर दिया जावे तो मोह रूपी धुन्ध जो आप पर अतीत कालसे छाया हुआ है स्वयं ही मिट जावेगा। फिर शरत्कालके निर्मल आकाशके समान ज्योति - स्वरूप, आनन्दमय, अविनाशी, अद्वितीय, निराकार, अजन्मा अविनाशी ब्रह्म स्वयं प्रकाश करने लगेगा।

नीच संकल्पोंके मिट जानेके साथ साथ अविद्या और उसका कार्य (मन) भी मिट जाते हैं। संकल्प दुःखमय है। निःसंकल्प पूर्ण आनन्द है। अकेले कमरेमें बैठ जाओ। नेत्र बन्द कर लो। मनको देखो और दृढ़ प्रयत्न द्वारा एक एक करके वृत्तियोंका नाश कर दो। असम्प्रज्ञात समाधि हो जावेगी।

यह मन जो संकल्पों द्वारा उत्पन्न होता है इन्हीं

संकल्पों द्वारा नष्ट हो जाता है जैसे हवा अग्निको उद्दीप्त करती है और हवा ही बुझा भी देती है।

संकल्प बन्धन है। निःसंकल्प मोक्ष है। जब मन पदार्थों का चिन्तन करता है तो वह स्वयं पदार्थ रूप होजाता है। इसे विषयाकार वृत्ति कहते हैं। जब यह ब्रह्म-चिंतन करता है तो ब्रह्माकार वृत्ति बन जाती है। मन और उसकी क्रियाओंको देखनेमे साधकको बड़ा सचेत रहना चाहिये। विषयाकार वृत्तिको ब्रह्माकार वृत्तिमें बदलना आवश्यक है। ज्योंही मन ब्रह्माकार वृत्तिसे विषयाकार वृत्तिमें गिरे उसे फिर ब्रह्माकार वृत्तिमें लगा देना चाहिये। यह संग्राम निस्सन्देह बड़ा कठिन है।

९—वासना

प्रारम्भमें अपनी शास्त्र वासनाको बढ़ाओ। अपने मनको मौलिक दार्शनिक ग्रन्थोंके अध्ययनमें लगाओ। इस प्रकार आप देह वासना और लोक वासनाको घटा सकते हो। पीछे आपको शास्त्र वासना भी त्याग देनी होगी। आपको अपनी सारी शक्ति केवल ध्यानके अभ्यासमें ही लगानी चाहिये।

जैसे मन्त्री राजाकी आज्ञा मानते हैं वैसे ही मनकी आज्ञाको पांचों इन्द्रियां मानती हैं। इसलिये अपने ही

शुद्ध मनस और उचित प्रयत्नों द्वारा आपको पदार्थोंकी वासनाको त्याग देना चाहिये।

चपलता मृदु प्रकारकी वासना है। यह थोड़े समय तक ही रहती है। दो प्रकारकी मुख्य चपलता होती हैं। जिह्वा चपलता—जिसमें बार-बार अनेक पदार्थ खानेकी इच्छा होती है। यह अस्वस्थ क्षुधाका रूप है। धनी मनुष्य जो विलासपूर्ण जीवन बिताते हैं उनको जिह्वा चपलता हुआ करती है। दूसरी उपस्थ चपलता होती है जिसमें शिश्नेन्द्रिय रति सम्भोगका सुख बार बार चाहती है।

संसार सागरमें भ्रमती हुई मनुष्य रूपी नौकाको वासनाओंकी रस्सीने बांध रखा है, आपको उचित है कि दृढ़ प्रयत्न द्वारा इस लम्बी रस्सीको तोड़ कर फेंक दो।

१०—मन और शरीर

अत्यन्त तीव्र भाव, घृणा, दीर्घकालीन तीव्र ईर्षा, कुरेदनेवाली चिन्ता, और क्रोधके आवेशसे शरीरके मर्म नष्ट होते हैं और हृदय, जिगर, गुर्दे, तिल्ली और पेटके रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

यह ध्यान देने योग्य बात है कि जैसा विचार मनमें प्रवेश करता है उसीके अनुसार शरीरका प्रत्येक मर्म वृद्धि

या ह्रासको प्राप्त हुआ करता हैं उसको जीवन या मृत्यु का सन्देश मिला करता है, क्योंकि जिस विषयका आप अधिक चिन्तन किया करते हो उसकी रूप रेखा के अनुसार आप बनते जाते हो।

ऐसा लगता है कि मनने अपने भोगके लिये, अपनी शक्तिको प्रकट करनेके लिये और इसके द्वारा पांचों ज्ञानेन्द्रियोंके मार्गसे संसारके नाना प्रकारके अनुभव प्राप्त करनेके लिये यह भौतिक शरीरका एक सांचा-सा बनाया हुआ है। हमारे अपने ही विचार, मुद्रायें, विश्वास और भावनायें पदार्थ भूत होकर हमारी देह बनती हैं और नेत्रोंको दिखाई देते हैं।

विचारके प्रत्येक परिवर्तनसे आपके मानसिक शरीरमें स्पन्द होता है और जब यह स्पन्द स्थूल शरीरमे पहुंचता है तो मस्तिष्ककी नाड़ियोंमें क्रिया संचालन करता है। इस क्रियासे नाड़ियोंके मर्मों में अनेक वैद्युत और रासायनिक परिवर्तन होते हैं। विचार क्रियासे ही ये सब परिवर्तन हुआ करते हैं।

इन्द्रियों सहित शरीर मनके सिवाय और कुछ नहीं है। देहका ध्यान करते करते मन स्वयं देह बन जाता है और इसमें फंसकर दुःख भोगता है। समस्त देहोंका

स्थान मनमें ही होता है। क्या बिना पानीके उद्यान रह सकता है। मन ही सारे कार्य करता है और देहोंमें सबसे ऊंचा है। स्थूल शरीरके नाश हो जानेपर भी अपनी रुचिके अनुसार शीघ्र ही मन नया शरीर धारण कर लेगा। यदि मन शक्तिहीन हो जायगा तो शरीर भी बुद्धिके कार्य प्रकट नहीं करेगा।

जब मन किसी विचार विशेषकी ओर मुड़ता है और उसपर लग जाता है तो पदार्थका एक स्पन्द विशेष चलता है और जितने बार यह स्पन्द होता रहता है उतना ही अधिक यह अभ्यासके रूपमें बदलता है और स्वयं गतिशील हो जाता है। शरीर मनका अनुगामी होता है और इसके परिवर्तनोंकी नकल करता है। यदि आप विचार पर एकाग्रता धारण करो तो नेत्र निश्चल हो जाते हैं।

शरीर मनके पीछे-पीछे चलता है। यदि मनमें विचार होता है कि ऊंचाई परसे गिर रहा है तो शरीर तुरन्त ही इसके लिये तैयार हो जाता है और बाहरी चिन्ह प्रकट करता है। भय, चिन्ता, शोक, प्रसन्नता हर्ष, क्रोध, ये सब ही मुखपर अपने-अपने विविध प्रभाव अङ्कित कर देते हैं।

क्रोधके तीव्र आवेश मस्तिष्कके मर्मोंको विशेष हानिकर होते हैं, रक्तमें विषैले रासायनिक पदार्थ पैदा कर देते हैं, शरीरमें एक व्यापी धक्का पहुंचाते हैं और उदासी पैदा करते है, आमाशयमें उदर-सम्बन्धी रस, पित्त और अन्य पाचक रसोंकी बनावटको दवा देते हैं आपकी शक्ति और जीवनको खींचकर शीघ्र ही वृद्धा-वस्थाके चिन्ह प्रकट करते और आयु क्षीण कर देते हैं।

कल्पना करो कि सारा संसार आपके गर्भमें है और यह सब आपके चिन्मय शरीर (ज्ञान-विग्रह) में स्थिर है। तब बाहरीपन और जुदाईके भाव दूर हो जावेंगे। आपसे बाहर कोई वस्तु नहीं है। ब्रह्मसे बाहर कुछ नहीं है।

अत्यन्त हर्षकी घड़ियोंमें तीव्र वेदना भी बिलकुल बन्द हो जाती है क्योंकि मन दुःखके स्थान (शरीर) से हट कर दूर चला जाता है।

यह बड़े खेदका विषय हैं कि संसारमें अधिक संख्यामें चिकित्सक अपने रोगियोंको लाभ पहुंचानेकी जगह हानि अधिक करते हैं। वे रोगोंके स्वरूपको अतिशय बढ़ाकर बताते हैं। वे उनके मनमें सब प्रकारके काल्पनिक भय भर देते हैं।

वे संकेतोंकी शक्ति और रोगियोंके मन पर उनके प्रभावको नहीं जानते। क्योंकि उनके मनमें लोभ भरा हुआ होता है, धनवान बन जानेकी वासना जमी हुई होती है, वे पूरा प्रयत्न करते हैं कि रोगियोंसे जितना भी धन प्राप्त किया जा सके कर लें। यदि वे रोगीको कहें कि यह रोग तो कुछ भी नहीं है, मैं आपको थोड़ेसे घन्टोंमें ही स्वस्थ कर दूंगा तो उनको ज्यादा पैसा कौन देगा? वे रोगियोंको झूठे संकेत देते हैं कि यह बड़ा भयानक रोग है, यह असाध्य रोग है। तुम्हारे फेफड़ोमें विष या कीटाणु छिपा हुआ हैं। इस काल्पनिकभयके कारण रोगी निद्रा रहित रात्रियाँ बिताता हैं। हर घड़ी वह सोचता है मैं किसी क्षण भी मर जाऊंगा। डाक्टरने कहा है कि मेरा रोग भयानक और असाध्य हैं। वह दुःखमय जीवन घसीटता है। चिन्ता और भय नित्य ही रक्तमें लाल कीटाणु लाखोंकी संख्यामें नष्ट कर देते हैं। डाक्टर ऐसे झूठे संकेत अपनी व्यवहार कुशलता दिखानेके लिये दिया करता है।

११—मन और इन्द्रिया

चक्षु इन्द्रिय रसनेन्द्रियका प्रिय सहकारी है। आमकी पीली पीलो शकल देखते ही मनमें उत्कण्ठा होती है। आंख सुन्दर आमको देखती है और अनेक प्रकारके भोज-

नको भी जो सामने रखा जाता है, देखती है। एक दम कण्ठकी नाड़ियोंमें गुदगुदी सी होने लगती है। आपको भोजनकी अच्छी रुचि होती है। भोजन अधिक स्वादु और ग्राह्य हो जाता है। अन्धे मनुष्यको भोजनमें इतनी अच्छी रुचि नहीं होगी जितनी कि तीव्र दृष्टि वाले मनुष्यको होती है।

एक सिद्धान्त मनके लचीले होनेका है। इसके पंडित कहते हैं कि जब विविध इन्द्रियोंका स्पर्श विषयोंसे होता है तो मन लचीला हो जाता है और इस प्रकार एक साथ ही सारी ज्ञानेन्द्रियोंसे संसर्गमें आ जाता है। जब मनका स्पर्श एक विषय और एक इन्द्रियसे होता है तो मन सिमट जाता है। वेदान्तियोंने इस सिद्धान्तको थोथा बताकर इसका निराकरण किया है।

एक सिद्धान्त और भी है जो कहता है कि मनके भिन्न २ विभाग होते हैं। मनका एक भाग एक ज्ञानेन्द्रियसे स्पर्श करता है दूसरा भाग दूसरी इन्द्रियसे इत्यादि। वेदान्ती इस सिद्धान्तको भी निर्मूल और थोथा बता कर निराधार कर देते हैं।

इन्द्रियार्थ सन्निकर्ष अर्थात् इन्द्रियों और विषयोंके संस्पर्श द्वारा भौतिक ज्ञान प्राप्त होता है। पदार्थ इन्द्रियों

के संसर्गमें आता है। इन्द्रियोंका सम्बन्ध मनसे है। मनका सम्बन्ध आत्मासे होता है। आत्मा प्रकाश देता है। यह भौतिक जगतके सम्बन्धमें है। ब्रह्मज्ञान भावना और ध्यानके द्वारा होता है जिसमें द्रष्टा, दृश्य और दृष्टि एक ही सत्तामें लीन हो जाते हैं जैसे समुद्रमें बुलबुले।

वाणी भी पुरुषकी दृष्टि ही है। यहां वाणीसे आशय श्रोत्रिन्द्रियके विषय शब्दका है। जब यह इन्द्रिय जाग्रत होती है तो मन पर इसका प्रतिबिम्ब पड़ता है। मनके ही द्वारा बाह्य विषयोंको ग्रहण करनेका प्रयत्न होता है क्योंकि मनुष्य मनके द्वारा ही देखता है और सुनता है। जब रात्रिमें किसी समय मनुष्य निश्चय नहीं कर सकता कि शब्द कहां होता है (चाहे वह शब्द घोड़ेकी हिनहिनाहट, गदहेका रेंकना या कुत्तेका भौंकना हो) वह उस ओरको जाता है शब्द जिधरसे आता हो। इन्द्रियोंको वशमें करनेके छः उपाय हैं (१) विचार द्वारा (२) इच्छाशक्ति द्वारा (३) कुम्भक द्वारा (४) दम द्वारा (५) प्रत्याहार द्वारा और वैराग्य तथा त्याग द्वारा। पूर्ण संयम केवल विचार द्वारा ही हो सकता है।

चक्षु मनके सम्मुख कुछेक रूप या आकार उपस्थित करती है। मन उनको अच्छा या बुरा निश्चय करता है।

यह कहता है "यह आकार सुन्दर है, यह भद्दा है, यह अच्छा है।" यहां ही बन्धन और दुःख आता है। अच्छा बुरा, सुरूप और कुरूप यह सब मनकी कल्पना मात्र है। यदि मन बना सकता है तो मन विनाश भी कर सकता है। इसी प्रकार कान कुछेक शब्दोंके स्पन्द मनके सम्मुख उपस्थित करते हैं। मन कहता है "यह प्रशंसा है यह आक्षेप है।" आंख और कानका किञ्चित भी दोष नहीं है। वे निर्दोष हैं। मन ही शैतानी करता है।

मांसल चक्षु केवल दर्शनके लिये बाह्य कारण हैं। यह दृष्टिकी इन्द्रिय नहीं हैं। इन्द्रिय दृष्टि तो मस्तिष्कमें स्थिर एक केन्द्र है। यही बात सारी इन्द्रियोंकी है। मन इन्द्रियोंसे सम्बद्ध है, इन्द्रियां तत्तत्सम्बन्धी मस्तिष्क केन्द्रोंसे, मस्तिष्क केन्द्र स्थूल इन्द्रियों (करणों) से, और स्थूल करण बाह्य विषयोंसे सम्बद्ध हैं। इन्द्रिय ज्ञानको मन बुद्धिके सम्मुख रखता है और बुद्धि पुरुष (अर्थात् अभौतिक शुद्ध आत्मा) के सम्मुख रखती है। वास्तविक दर्शन तभी होता है। पुरुष कर्मेन्द्रियोंको आदेश देता है कि ये बुद्धि और मनके द्वारा क्रिया सम्पन्न करें। सांख्य मतके अनुसार यह दर्शनका सिद्धान्त है।

कुछ मनुष्योंमें चक्षुकी अपेक्षा श्रोत्रेन्द्रिय विशेष पुष्ट (कुशल) होती है। न्यायाधीशों की श्रोत्रेन्द्रिय तीव्र होती है। सेनापतियोंकी दृष्टि तीव्र होती है। अपने अपने कार्यके अनुसार मनुष्य अमुक २ इन्द्रियको पुष्ट कर लेते हैं। अन्धोंकी श्रवण शक्ति तीव्र होती है। यदि एक इन्द्रिय शक्ति ही न होवे तो प्रकृति उसका बदला किसी अन्य इन्द्रियको अधिक पुष्ट करके चुका देती है। मेरा एक मित्र एक ऐसे अन्धे मनुष्यको जानता है जो स्पर्श मात्रसे रंग बता दे सकता है।

१२—मन और अविद्या

मनके बाहर अविद्या कुछ नहीं है। मन ही स्वयं अविद्या है। कल्पनायें और संकल्प अविद्याके कार्य हैं। मनका नाश होते ही और सब वस्तुयें नष्ट हो जाती हैं। यदि मन रहता है तो प्रत्येक वस्तु प्रकट हो जाती है। अविद्या मनमें स्थित है। जैसे मोर्चा लगी हुई तांबेकी थालीको मिट्टी, राख, खटाई, चूर्ण आदिसे चमकाया जाता है वैसे ही मनको भी जप, प्राणायाम, सत्सङ्ग, विचार और निदिध्यासन द्वारा मार्जन करनेकी आवश्यकता है।

जब तक मन बना रहता है तभी तक बड़े छोटे, ऊंचे नीचे, उत्तम और निकृष्ट भले और बुरेका भेद रहता है।

परन्तु मन भी तो अविद्याका कार्य है। सर्वोत्तम सत्य वही है जिसमें कुछ भी भेद कल्पना नहीं है। यदि निरन्तर और गम्भीर ध्यान (आत्म विज्ञान) के द्वारा आप मनको अतिक्रम कर सको तो आप निर्द्वन्द्व दशाको प्राप्त कर लोगे वहां परम शान्ति और सर्वोत्तम ज्ञान है।

मनमें अविद्या या भ्रान्ति होनेके कारण आप वृक्षादि पदार्थोंको बाहर देखते हैं और अनुमान करते हो कि वे आपसे पृथक् हैं और सत्य पदार्थ हैं।

मन अविद्याका फल है और यह भ्रमसे पूर्ण है। इसीलिये यह आपको लुभाता है और धोखा देता है। यह आपको पथभ्रष्ट कर देता है। यदि आप आत्मज्ञानके द्वारा मनके कारण रूप अज्ञानको नष्ट कर सको तो मनका अस्तित्व कहीं नही रहता। यह शून्यमें लीन हो जाता है। जब ज्ञानका उदय होता है तो मनोनाश हो जाता है।

अविद्याका स्थान मनुष्यके मनमे होता है। अनुभव जनित आकारकी व्याख्या हमारी स्पर्श ज्ञानकी शक्तिमें ढूंढनी चाहिये। श्री शङ्कराचार्य अविद्याकी व्याख्या इस प्रकार करते हैं। यह नैसर्गिक (स्वाभाविक) है। यह

हमारी मानसिक शक्तिमें निहित है। यह मिथ्याज्ञान निमित्त है अर्थात् इसका कारण भ्रमात्मक ज्ञान है, और ज्ञान मनकी एक क्रिया है। यह नित्य प्रत्यय रूप है। समस्त जीव—जिनका अस्तित्व वास्तवमें है ही नहीं—अपने जन्म मरण रूप सहकारो आभासोंके सहित मनकी पदार्थ रचनात्मक शक्तिके परिणाम हैं और कुछ नहीं है। द्वैतका सारा अनुभव जो द्रष्टा और दृश्यका बना है यह शुद्ध कल्पना मात्र है। मनसे भिन्न अविद्या है ही नहीं। मनके नाश होनेपर सब कुछ नाश हो जाता है। मनकी क्रिया सारे आभासका कारण है।

अविद्याका कार्य उपाधियों द्वारा होता है। सारी विशेष सामग्रियां जिनको अविद्याकी अपेक्षा होती है वह सब आत्माकी उपाधियोंसे बनी होती है। मन, बुद्धि और अहङ्कार भी उपाधियां हैं।

१३—मन और प्राण

एकाग्रता और निरोध मनकी दो अवस्थायें हैं। स्पन्द और निरोध प्राणकी दो अवस्थायें हैं। जब मन एकाग्र हो जाता है तो प्राणकी स्पन्दावस्था स्वयं ही हो जाती है। प्राण मनका ओवरकोट (लबादा) है। मन प्राणसे भी अधिक सूक्ष्म है। पांचों तन्मात्राओंके सात्विक

सारके समूहसे मन बना है। प्राण इनके राजसिकसारके समूहसे बना है। यही कारण है कि मन प्राणसे भी अधिक सूक्ष्म है।

स्थूल शरीरसे अधिक सूक्ष्म प्राणमय कोष है। यह अन्नमय कोषके ऊपर छाया हुआ है और अधिक विस्तृत है। मनोमय कोष इससे भी सूक्ष्म है और अधिक विस्तृत है, किसी मनुष्य पर भौतिक प्रभाव डालनेके लिये आपको उसका शरीर छूना पड़ता है। परन्तु दूरपर खड़े हुए ही केवल पासोंके द्वारा ही आप उसे अपना प्राण दे सकते हैं क्योंकि स्थूल शरीरसे प्राण अधिक सूक्ष्म है। आप विचार शक्ति द्वारा किसी मनुष्य पर मानसिक प्रभाव डाल सकते हो चाहे वह आपसे हजारों मील दूर रहता हो। क्योंकि मानसिक शक्ति प्राणसे भी अधिक सूक्ष्म है।

१४—मन और कुण्डलिनी

जब कुण्डलिनी जाग्रत हो जाती है तो सुषुम्ना नाड़ीके द्वारा मन प्राण और अग्निके सहित ऊपरको जाने लगता है। योगी स्थूल (भौतिक) चेतनासे मुक्त हो जाता है। कुण्डलिनीको जाग्रत करके आपको इसे कपालमें सहस्रार चक्रमें ले जाना होगा। शक्ति चालन

या अश्विनी मुद्रा, ताड़न, प्रचारण ये सब कुण्डलिनीको जाग्रत करनेमें सहायक होते हैं। महाभेद कुण्डलिनीको और ऊपर लेजानेमें सहायता देता है।

. पृष्ठ वशके अन्तमें मूलाधार चक्रके अन्दर नीचेको मुख रखकर ३॥ वल दिये सर्पिणीके रूपमें कुण्डलिनी शक्ति रहती है। केवल इसी शक्तिको जाग्रत करके वेदान्ती भी ज्ञाननिष्ठा प्राप्त कर सकता है। इस शक्तिको जाग्रत किये विना अतिचेतनावस्था (समाधि) सम्भव नहीं है चाहे राजयोग मार्ग हो या भक्तियोग अथवा ज्ञानयोग। यह कुण्डलिनी प्राणसे सम्बद्ध है और प्राण-का मनसे सम्बन्ध है।

कुण्डलिनी तव ही जाग्रत हो सकती हैं जव मन शुद्ध हो जाता है जव मन कामनाओं और वासनाओंसे मुक्त हो जाता है। जव कुण्डलिनी जाग्रत हो जाती हैं तो मन प्राण और जीव सुषुम्नामें प्रवेश कर जाते है और सारा प्रत्यक्ष दर्शन चित्ताकाशमें ही होता है। जव कुण्डलिनी सहस्रार चक्रमें प्रवेश करती है तो आपके वाह्य स्थूल अनुभव वन्द हो जाते हैं और आप चिदाकाशमें ही रहते हो। जव यह कुण्डलिनी एक चक्रसे दूसरे चक्रमें जाती हैं तो, मनके परदे एकके वाद एक खुलते जाते हैं। प्रत्येक

नये चक्रपर योगी भिन्न भिन्न प्रकारका आनन्द अनुभव करता हैं। उसे भांति भांतिके अनुभव और शक्तियां प्राप्त होते हैं। उसे पांचो तत्वोंपर वश्यता प्राप्त होती है। वह संसारको सूक्ष्म रूपमें देखता है। वह सूक्ष्म जगत्‌के अनेकों प्रकारके ज्ञान प्राप्त करता है। ज्योंही प्रथमवार कुन्डलिनी जाग्रत होनी हैं थोड़े कालके लिये योगीको ये छः प्रकारके अनुभव होते है। अर्थात् आनन्द, कम्पन, उद्‌भव (अर्थात् शरीरका पृथ्वीसे ऊपर उठ जाना) घूर्णि (अर्थात् दैवी मदमें शरीरका झूमना), निद्रा और मूर्छा।

१५—मानसिक आकार

जब आप आमके वृक्षको देखते हो तो यह आपसे वाहरका पदार्थ है। इसमें वाह्यता है। आमका वृक्ष मानसिक पदार्थ है। इसकी एक मानसिक स्मृतिजन्य आकृति भी है। मनसे भिन्न (पृथक्) आमका वृक्ष है ही नहीं। मनके अन्दर एक आकृति होती है। वह मानसिक आकृति और वाह्य पदार्थ मिलकर आमका वृक्ष वनता है। यदि आप आंखें वन्द भी कर लो तो स्मृतिके द्वारा ही आप मानसिक आकृति देख सकते हो। पत्तियोंका हरा रंग प्रकाश स्पन्दोंके एक निश्चित प्रमाणके कारण वनता है।

ये प्रकाश स्पन्द आंखकी पुतलीसे टकराते हैं और मस्तिष्कके पिछले भागमें दृष्टिके केन्द्र तक पहुंचाये जाते हैं। विज्ञान कहता है कि आमकी पत्तियोंमें सूर्यकी किरणोंको भेद कर केवल हरा रंग ग्रहण करनेकी शक्ति रहती है। आपका शरीर भी आपके लिये उसी प्रकार वाह्य पदार्थ है जैसे कि वह आमका वृक्ष। यह भी एक मानसिक पदार्थ और मानसिक आकार है। आमका वृक्ष आपके शरीर सम्बन्धसे आपसे वाह्य है। आमका वृक्ष भी उस नित्य सत्तामें तैरता हुआ एक आभास मात्र है। क्योंकि आमका वृक्ष [illegible] शरीरके सम्बन्धसे आपसे वाह्य है। और आपका शरीर भी वाह्य पदार्थ हैं इसलिये आमके वृक्षकी वाह्यता या इस सँसारकी वाह्यताका भाव अब निर्मूल हो जाता है। इसी प्रकार आन्तरिकताकी सत्ता भी निर्मूल है। वाह्यताके सम्बन्धसे ही आन्तरिकताका भेद है। यदि वाह्यता जाती रहे तो आन्तरिकता कहां रहेगी। वाह्यता और आन्तरिकता ये दोनों शब्द भ्रममात्र हैं और मनकी कल्पनायें हैं। इन कहलानेवाली वाह्यता और आन्तरिकताके पीछे एक ही नित्य सत्ता है। वह नित्य अनन्त 'मैं' है। यह तुम्हारी अपनी आत्मा है।

१६—मनको तैयार करो

साधक आत्म साक्षात्कारके बहुत उत्सुक होते हैं। परन्तु जब साक्षात्कार होता है तो वे कांपने लगते हैं। वे ईश्वरके प्रकाशयुत तेजको सह नहीं सकते। वे इतने तुच्छ, मलिन और दुर्बल होते हैं कि वे दिव्य तेजके सामने नहीं रह सकते। इस दिव्य प्रकाशको धारण करने के वास्ते उन्होंने पात्रको तैयार नहीं किया है। देखिये विराटके विश्वरूपको देखकर अर्जुन कैसे भयसे कांप गया था और भगवान श्रीकृष्णसे विनय करने लगा था कि वही साधारण चतुर्भुज रूप फिर दिखावें। इन चतुर्भुजसे एकरसता, पूर्णता, शक्ति और ज्ञान इङ्गित होते हैं।

मनके शुद्ध करने ही से ब्रह्म ज्ञान नही मिलेगा। शुद्ध मन दिव्य ज्योति और आनन्दको प्राप्त करने योग्य हो जाता है। मनको शुद्ध करनेके उपरान्त आपको श्रवण, मनन और निदिध्यासनका आश्रय लेना होगा।

१७—मन अपना प्रकाश आत्मासे प्राप्त करता है

पाश्चात्य मनोवैज्ञानिक ऐसा कहनेमें बड़ी भारी भूल करते हैं कि चेतना मनको एक क्रिया और उपाधि है। चित् या आत्मा ही स्वयं शुद्ध चेतना है। मन आत्मा ही से समय-समयपर प्रकाश प्राप्त करता है और थोड़े काल

तक चेतनाकी भाँति चमकता है जैसे पीतलपर सोनेका मुलम्मा चमकता है। आत्मा ही ज्योतियोंकी ज्योति, सूर्यों का भी सूर्य है।

१८—मोह

मायाका एक दृढ़ शस्त्र मोह है। यह तीन काम करता हैं। मेरेपन (ममत्व) का भाव पैदा करता है यथा मेरी स्त्री, मेरा पुत्र, मेरा घर इत्यादि। स्त्री पुत्रादिके लिये मोह युक्त प्रेम होता है। यह संसारके नश्वर पदार्थोंमें नित्य बुद्धि उत्पन्न करता है कि ये सदा ही स्थिर रहेंगे। और देहात्मबुद्धि बनाता है कि शरीर ही आत्मा है। यह मिथ्या पदार्थको सत्य-सा भासता हुआ दिखाता है। मोहके कारण ही संसार सत्य प्रतीत होता है। मोहके ही कारण देहको भूलसे आत्मा मान लिया जाता है।

मेरे मित्र! ऐसा मत कहो कि कामना मोहसे अधिक बलवती है। मोह भी उतना ही बली और भयानक है जितनी कि कामना। मोह शरीर, स्त्री, पुत्र और सम्पत्तिमें प्रेम और आसक्ति पैदा करता है ममत्वका भाव बनाता है और शरीरको आत्मा माननेके भ्रममें डालता है।

जब किसीका यश और बल (प्रभाव) फैलता है तो शत्रु भी आप ही आप बन जाते हैं। श्री शङ्कराचार्यके भी

अनेक शत्रु थे। जंगलोंमें बसनेवाले सन्यासियोंके भी शत्रु हो जाया करते हैं। समृद्धिशाली और सम्भावित जनोंके विरुद्ध ईर्ष्यालु और क्षुद्र मनके मनुष्य अनेकों प्रकारके उत्पात खड़े कर देते हैं। साक्षी भाव बनाओ और शत्रु तथा मित्रके भावसे ऊपर उठो, उदासीन बन जाओ। सहन शक्तिको बढ़ाओ। अपमान और आघातको शान्त चित्तसे सहन करो। तभी आप इस संसारमें सुखी हो सकते हो।

यद्यपि आप खूब जानते हो कि स्त्रीका शरीर मांस, हड्डी, त्वचा, बाल, रक्त, मूत्र और मलका बना हुआ है फिर भी आप कामान्ध होकर रूपको पकड़ते हैं—क्यों? राग, मोह, संस्कार, वासना और कल्पनाके बलसे। जब विचार और विवेक द्वारा वासना क्षय हो जाता है तो आपको स्त्रोकी ओर आसक्ति नही रहेगी।

बाह्य त्याग (सन्यास) के द्वारा स्त्री, धन और सन्तानके अधिक मोहसे छुटकारा पा लो। यदि बाहर परिवर्तन होगा तो भीतर भी अवश्य बदलेगा। बाहरी त्याग अत्यन्त आवश्यक है

१९—तीन गुण

सत्वगुण पवित्रता है प्रकाश है। सत्वगुणका फल

ब्रह्म विचार होता है अर्थात् सत्यकी खोज, सत् और असत्का विवेक।

साधारण संसारी मनवाला मनुष्य आत्माकी आन्तरिक पुकारको शायद ही सुन सके। उसको आत्म विचार सम्बन्धी शुद्ध विचार भी प्राप्त नहीं हो सकते। प्रत्येक सात्विक विचार सात्विक बुद्धिसे उपजता है। संसारी जनोंके सारे विचार मनसे उपजते हैं। जो निष्काम कर्मयोगका अभ्यास करता है और जिसका मन शुद्ध होता है उसे ही ईश्वरके विचार और ध्यान प्राप्त होने लगते हैं। साधारणतः मन अनेक प्रकारके विचित्र विचार पैदा कर देता है यह सबको भ्रममें डाल देता है। यह विचार करनेका बहाना भी करता है। परन्तु जब क्रियात्मक अभ्यासकी बात आती है तो यह कुछ नहीं करेगा। यदि आपमें धारणा और ध्यानके अभ्यासका दृढ़ निश्चय हो गया और इसको आपने स्थिरतासे कई महीने तक क्रियात्मक अभ्यासमें डाल दिया और यदि ईश्वर दर्शनकी इच्छा तीव्र हो गयी तभी आप समझिये कि ये सब प्रकारके विचार आपकी सात्विक बुद्धिसे प्रकट हुए हैं।

सात्विक क्षणोंमें जब-मनमें शुद्ध सात्विकताकी अधिकता होती है तो मन मुकुरके निर्मल होनेके कारण आप

दिव्यात्मासे सम्पर्कमें होते हो। आपको प्रेरणा मिलेगी। आप सुन्दर कवितायें भी करोगे। उन रचनाओंको संभाल रखो। अपनी नोट बुकमें लिख लो।

मनमें स्वभाव और इच्छा, साधकोंकी पुरानी संसारी आदतें और नयी आध्यात्मिक आदतें, पुराने विषय संस्कार और नये आध्यात्मिक संस्कार, शुभ वासना और अशुभ वासना, विवेक और पशुबुद्धियुत मन तथा इन्द्रियोंका आन्तरिक युद्ध नित्य ही चलता रहता है। यदि आप काम क्रोधादिको भगानेकी कोशिश करते हो तो वे कहते हैं, "हे जीव! तुमने हमें अस्थि मांसके इस मकानमें दीर्घकाल तक रहनेकी आज्ञा दी है अब तुम हमें क्यों निकालना चाहते हो। तुम्हारे उत्तेजना और वासनाके समयोंमें हमने तुम्हारी बड़ी सहायता की है। हमें यहां रहनेका प्रत्येक अधिकार है। हम पीछे पड़ेंगे, तुम्हारे हमें भगा देनेके सारे प्रयत्नोंका सामना करेंगे, हम तुम्हारे ध्यानमें भङ्ग करेंगे और बारम्बार प्रकट होंगे।" परन्तु इसमें कुछ सन्देह नहीं है कि अन्तमें शुद्ध और दृढ़ इच्छा शक्ति ही सफल होगी।

राजसी मन सदा नये भोग और भिन्नता चाहता है। अभी यह किन्हीं मनुष्यों, पदार्थों और स्थानोंको पसन्द

करता है और थोड़े काल पीछे वह उनसे ऊब जाता है और नये २ पुरुषोंका सङ्ग, खानेको नये २ शाक पढ़नेको नई २ पुस्तकें और देखनेको नये २ स्थान चाहता है। परन्तु सात्विक मन सदा स्थिर रहता है। उसको अन्द-रसे ही आनन्द मिलता है। वह सदा एक ही स्थानपर रह सकता है। पुरुषोंसे दीर्घकाल तक मित्रता रख सकता है। अनेकों दिनों तक गीता और योग वासिष्ठ पढ़ सकता है; विना शिकायतके वरसों तक दाल रोटी खाकर रह सकता है। इसलिये जप, विचार, सत्सङ्ग, ध्यान, लघु सात्विक आहार, तप और स्वाध्यायके द्वारा सत्व गुणकी वृद्धि करो।

संसारमें भी कुछ थोड़ेसे सात्विक गुणों वाले पुरुष होते हैं जिनमें सन्तोष, उदारता, क्षमा आदि सद्गुण होते हैं। परन्तु आध्यात्मिक साधक तो मनको समग्र रूपसे उन्नत करनेका प्रयत्न करता है और सारे सात्विक सद्-गुणोंका सञ्चय करना चाहता है।

सारी साधनाओंका ध्येय सत्व गुणकी वृद्धि और शुद्ध अबाध इच्छा शक्ति प्राप्त करना होता है। इसी इच्छा शक्तिसे अविद्या निवृत्ति और परमानन्द प्राप्ति होती है। ईश्वर प्राप्तिका मार्ग सत्वगुणकी वृद्धि और

दृढ़ तथा शुद्ध इच्छा शक्तिके द्वारा बहुत सुगम हो जाता है।

२०—कर्म

आपके पिछले कर्मोंके अनुसार आपके शरीर और मनका झुकाव एक निश्चित विधिसे कर्म करनेकी ओर होता है और आप मशीनके समान ठीक उसी झुकावके अनुसार कार्य करते हो। आप भूलसे इन कर्मोंका कर्तापन अपने ऊपर थोप लेते हो और इस प्रकार मामला और भी बिगाड़ लेते हो। आपके बहुतसे काम न्यूनाधिक स्वभावतः ही होते रहते हैं।

यदि आप निष्काम भावसे कर्म करनेमें कठिनाई देखो तो सारे कार्य करते हुए केवल मोक्षकी इच्छा रखो।

२१—ईश्वर और माया

सारे संस्कार मायामें तैरते हैं। मान लो एक बहुत बड़ा आइना है, आप उसमें बाजारमें जानेवाले सारे मनुष्यों, छकड़ों, गाड़ियों, मोटरोंके प्रतिविम्ब देख सकते हो। बिना किञ्चित् भी प्रभावित हुए आप दूरसे आइनेमें इन गतियोंको देखते रह सकते हो। ऐसे ही संसारकी सारी गतियां माया नामक बड़े आइनेमें होती हैं। संसारका स्वामी ईश्वर केवल प्रत्येक वस्तुको देखता रहता

है। वह मूक साक्षी हैं। जब जीवोंका अदृष्ट (कर्म भोगका प्रारब्ध) पकता है तो ईश्वर केवल इच्छा करता है और संसारका प्रादुर्भाव हो जाता है।

तृतीय परिच्छेद

१—त्याग

संसारी पदार्थोंसे अग्नि, विष, या टट्टीके समान बचो। सारी वासनाओं और इच्छाओंको त्याग दो। यही मोक्ष है। कामनाओंके त्यागसे मनका नाश हो जाता है। इससे मायाको नाश होता है क्योंकि मन ही माया है। मनकी कल्पनामें मायाका सिंहासन है। यह कितनी चालाक है। विवेकी इसकी चालोंको खूब जानता है। त्यागी और आत्म-विचार-युक्त मनुष्यसे वह बहुत डरती है। वह उसको दोनों 'हाथ जोड़कर प्रणाम करती है।

अहंकारको त्यागना ही सच्चा त्याग है। यदि आप अहंकारको त्याग दो तो आपने संसारकी अन्य सारी वस्तुओंको त्याग दिया। भौतिक पदार्थों का त्याग सच्चा त्याग नहीं है। यदि सूक्ष्म अहंकारको त्याग दिया जावे तो देहाध्यास स्वतः ही चला जावेगा।

आपको त्यागका अभिमान भी छोड़ देना चाहिये। त्यागका अभिमान बड़ी दृढ़तासे जमा हुआ होता है। आपको यह भाव निकाल देना चाहिये कि मैंने प्रत्येक वस्तुका त्याग कर दिया है। मैं बड़ा त्यागी हूं। साधुओंका यह अभिमान गृहस्थियोंके इस अभिमानसे भी बुरा है कि मैं पृथ्वीपति हूं मैं ब्राह्मण हूं इत्यादि।

२—ब्रह्मचर्य

यदि आप पूर्ण ब्रह्मचर्यकी वृद्धि कर लो तो विचार शक्ति और धारणा शक्ति भी संवर्धित हो जाती हैं। जो सावधानीसे वीर्य रक्षा करते हैं वृद्धावस्थामें भी उनकी स्मरण शक्ति अच्छी रहती है। यदि मनुष्य बार बार पाशविक वृत्तियोंके अधीन होनेसे इनकार कर दे और पूर्ण ब्रह्मचारी रहे तो वीर्य शक्तिकी गति मस्तिष्ककी ओर ऊपरको होने लगती है और ओजस् शक्ति बनकर इकट्ठी होती है। इससे बुद्धिकी शक्ति अत्यन्त तीव्र हो

जाती है। जिस ब्रह्मचारीकी वीर्य शक्ति ओसस् शक्तिमें बदल गई है उसे कामवासना फिर नहीं सतावेगी। ऐसा ब्रह्मचारी ऊर्ध्व रेता कहा जाता है। हनुमान, भीष्म, लक्ष्मण, स्वामी दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द ऊर्ध्व रेता योगी थे।

एक समय श्री वेदव्यास अपने शिष्योंको वेदान्त पढ़ा रहे थे। उन्होंने बताया कि युवा ब्रह्मचारियोंको बहुत सावधान रहना चाहिये और युवतियोंसे नहीं मिलना चाहिये। क्योंकि अपनी सतर्कता रखते हुये भी वे कामके शिकार बन सकते हैं, कामदेव बड़ा बली है। पूर्व मीमांसाका रचयिता जैमिनि उनका शिष्य बड़ा उद्दण्ड था। उसने कहा गुरूजी महाराज आपकी बात गलत हैं। मुझे कोई स्त्री आकृष्ट नहीं कर सकती। मैं ब्रह्मचर्यमें पूर्णतः स्थित हूं। व्यासने कहा ' जैमिनी तुम्हे शीघ्र ही मालूम हो जावेगा। मैं बनारस जा रहा हूं। तीन मासके भीतर लौट कर आऊंगा। तुम सचेत रहना। अहंकारसे फूल मत जाना।' अपनी योग शक्तिके द्वारा श्री व्यासने एक सुन्दरी युवतीका रूप बना लिया, बड़ी तीखी आंखें, सुन्दर मुख और रेशमी वस्त्रोंसे सुसज्जित। सूर्यास्तके समय वह युवती एक वृक्षके नीचे खड़ी थी।

बादल घिर आये, वर्षा होने लगी। संयोगवश जैमिनी उसी वृक्षके पाससे होकर जा रहा था। उसने उस कन्याको देखा और दया करके उससे कहने लगा 'हे सुन्दरी! तुम मेरे आश्रममें आकर रह सकती हो। मैं तुम्हें शरण दूंगा।' युवतीने पूछा "क्या आप अकेले रह रहे हो? क्या कोई स्त्री वहां रहती है।" जैमिनीने उत्तर दिया 'मैं अकेला हूं। परन्तु मैं पूर्ण ब्रह्मचारी हू। मुझे कामवासनाका प्रभाव नहीं हो सकता। मैं हर प्रकारके विकारसे मुक्त हू। तुम वहा रह सकती हो। युवतीने आपत्ति की 'कुमारी युवतीके लिये ब्रह्मचारीके साथ रात्रिमें अकेले रहना उचित नहीं है।" जैमिनीने कहा 'सुन्दरी, भय मत करो। मैं तुम्हें अपने पूर्ण ब्रह्मचर्यका वचन देता हूं।" तब युवती मान गई और रात्रिको उसके आश्रममें ठहर गई। जैमिनी बाहर सोया और वह युवती कमरेके अन्दर सो रही थी। रात्रिके पिछले प्रहरमें जैमिनीके मनमें कामदेवका सञ्चार होने लगा। प्रारम्भमें वह बिलकुल पवित्र था। उसने दरवाज़ा खटखटाया और कहा "हे सुन्दरी, बाहर हवा चल रही है। मैं ठंडी वायु नहीं सह सकता। मैं अन्दर सोना चाहता हूं।" युवतीने द्वार खोल दिया। जैमिनी अन्दर सो गया। क्योंकि वह

एक स्त्रीके अति निकट था और उसकी चूड़ियोंका शब्द सुन रहा था इसलिए कामवासना कुछ अधिक तीव्र हो गई। तब वह उठा और युवतीका आलिङ्गन करने लगा। तुरन्त श्री व्यासजीने अपना असली रूप प्रकट किया और कहा हे प्रिय जैमिनी! कहो अब तुम्हारा ब्रह्मचर्यका बल कहां है। क्या अब तुम पूर्ण ब्रह्मचर्यमें स्थित हो? जब इस विषय पर मैं व्याख्यान दे रहा था तो तुमने क्या कहा था।' जैमिनीने लज्जासे सिर झुका लिया 'और कहा 'गुरुजी मेरी भूल हुई। कृपया मुझे क्षमा कर दीजिये।'

इसलिये प्रिय साधकों! आपको अत्यन्त सतर्क रहना होगा। आप कितने भी दृढ़ क्यों न हों, आपको युवतियोंका सङ्ग कभी नहीं करना चाहिये। माया ऐसे चुपके चुपके सूक्ष्म संचारोंके द्वारा काम करती है कि आपको अपने वास्तविक पतनका पता भी नही लगेगा। आपको न केवल कामवासनाओंको दूर करना चाहिये अपितु स्त्री-पुरुष सम्बन्धी आकर्षणको भी त्यागना चाहिये। विवाहित जीवन और उसके भांति-भांतिके बंधनोंसे आपको कितने-कितने क्लेश मिलते हैं तनिक इसपर तो विचार करो। शनैः शनैः यह आकर्षण भी

शान्त हो जावेगा। तब ही उन्नति होगी और आप ऊर्ध्वरेता बन जाओगे।

संस्कारों और वासनाओंकी क्यारीसे स्मृतिके द्वारा कल्पना प्रकट होती है। फिर आसक्ति होती है। कल्पनाके साथ-साथ भावुकता और पशु बुद्धि आती है। यह दोनों साथ-साथ रहते हैं। फिर काम सम्बन्धी उत्तेजना, काम पिपासा, मनमें उद्वेग और शरीरमें तपन होती है। मनका उद्वेग और ताप सारे शरीरमें फैलता है जैसे घड़ेके अन्दरका पानी घड़ेके बाहर रिस आता है। यदि आप बहुत चौकन्ने रहो तो प्रारम्भमें ही कल्पनाको भगा दे सकते हैं और इस प्रकार इस भयको दूर कर सकते हैं। यदि कल्पनारूपी चोर प्रथम द्वारमें प्रवेश कर भी जावे तो जब उद्वेग पैदा हो तो दूसरे द्वारपर सावधान रहो। अब आप तपनको रोक सकते हो। आप तीव्र कामवासनाको भी इन्द्रिय तक जानेसे सुगमता पूर्वक रोक सकते हो। उड्डियान और कुम्भक द्वारा कामशक्तिको ऊपरको खींच लो। बल सहित प्रणवका मानसिक जाप करो। मनको दूसरी ओर लगाओ। प्रार्थना करो। ध्यान करो। मन, कर्म और वचनमें सच्चा ब्रह्मचारी अद्भुत विचार शक्ति रखता है। वह संसारको हिला सकता है।

प्राणायाम द्वारा मन स्थूल पदार्थों से सूक्ष्मकी ओर जाता है। इसलिये प्राणायाम कामके उद्वेगको भली प्रकार रोकता है। जब कभी कोई दुर्विचार तुम्हारे मनको बेचैन करे तुरन्त पद्मासन या सिद्धासनसे बैठ जाओ और प्राणायामका अभ्यास करो। दुर्विचार आपको तुरन्त ही छोड़ देगा।

२—गुरुकी आवश्यकता

साधकोंके लिये गुरु आवश्यक हैं। कोई-कोई कुछ वर्षों तक स्वाधीन रूपसे अभ्यास करते हैं; और फिर गुरुकी अत्यन्त आवश्यकता अनुभव करते हैं। उनको रास्तेमें कुछ रुकावटें आती हैं। वे इन रुकावटोंको दूर करना और आगे बढ़ना नहीं जानते। तब वे गुरुको खोजने लगते हैं। योगके अभ्यासमें ऐसा विशेषकर होता है।

ईश्वर गुरुओंका गुरु है। वह जीवोंपर अनुग्रह करता है और अविद्याका आवरण हटाता है। साधकको उचित है कि वह अपने शरीरधारी गुरुको उसी ईश्वरका अवतार समझे और उसकी भक्ति भी ईश्वरके बराबर ही रक्खे। स्थूल देहधारी गुरु अपने शिष्यका मुख्य आश्रय है और उसको आनन्दकारी और कल्याण-दायक होता है।

शिष्यको गुरुकी आज्ञापालन की परम आवश्यकता समझनी चाहिये और उसमें अपना दृढ़ विश्वास रखना चाहिये।

गुरुकी कृपासे ही भक्तको अष्टांग योगकी प्राप्ति होती है। भगवान शङ्करकी कृपासे वह योगमें नित्य सिद्धि अर्थात् पूर्णता प्राप्त करता है।

गुरुका धर्म है कि वह प्रत्येक शिष्यको आध्यात्मिक साधनाके उसी मार्गपर लगावे जिसके लिये वह उपयुक्त पात्र हो। शिष्यकी रुचिके अनुसार एकको एक मार्गपर और दूसरेको दूसरे मार्गपर अपनी बुद्धिके अनुसार चलावे।

४—मायाका वृक्ष

माया एक बड़ा विषैला वृक्ष है। संकल्प इसके बीज हैं। अनेक विषय भोग अच्छी भूमि का काम देते हैं। माया भ्रमके इस वृक्षको तृष्णायें और वासनायें सींचती है। काम इसके फल हैं। कामवासना, क्रोध, लोभादिक इसकी कोंपले हैं। सत्व, रज और तम कलियां हैं। इन्द्रियां टहनियां हैं। अहंकार इसका तना है। राग और द्वेष इसकी दो बड़ी-बड़ी शाखायें हैं। अनेक विषय पदार्थ इसकी पत्तियां हैं।

मायाका यह विषैला वृक्ष मनके विकारोंके बीजसे फूलता है। संसारके भिन्न-भिन्न विषय भोगोंकी भूमिमें संकल्पोंसे पूर्ण होता है।

५—श्रद्धा

चाहे कोई विषय तर्क और प्रमाणों द्वारा सिद्ध हो जावे फिर भी मनुष्योंके मन स्थूल बाह्य पदार्थोंसे भरे रहते हैं इसलिये बिना पूर्ण श्रद्धाके सूक्ष्म सत्य सिद्धान्तोंको ठीक-ठीक समझ लेना सम्भव नहीं। जब श्रद्धा होती है तो मनको उस विषयके समझनेमें आसानीसे लगाया जा सकता है। तब जल्दी ही समझमें आ जाता है।

६—वैराग्य

राजा जनक और प्रह्लाद को तीव्र वैराग्य था। शीघ्र साक्षात्कार प्राप्त करनेके लिये इसी प्रकारके वैराग्यकी आवश्यकता होती है। निर्विकल्प समाधिमें प्रवेश करनेका एक यही उपाय है।

वैराग्यमें ब्रह्मचर्य अन्तर्गत है। मन, वचन और कर्मसे ब्रह्मचर्य होना वैराग्यमें शामिल है।

जब मक्खी देखती है कि इसके पांव शहदमें चिपक गये हैं तो यह धीरे-धीरे कई बार अपने पांवको चाट

लेती हैं और फिर आनन्दसे उड़ जाती है। इसी प्रकार राग और मोह द्वारा जनित देहाध्यास और सन्तानकी आसक्ति रूप शहदमें मनकी चिपकनसे वैराग्य और ध्यानके द्वारा अपनेको बाहर निकाल लो और हाड़-मांसके इस पिंजरेसे ब्रह्मकी ओर उड़ जाओ।

यदि मन बराबर चायका चिन्तन करे और चाय न मिलने पर इसको कष्ट हो तो कहते हैं कि आपको चायके लिये आसक्ति है। यही आसक्ति बंधनमें ले जाती है। वैराग्यका अभ्यास चाहता है कि आप इस चायकी आसक्तिको त्याग दो। केवल चाय पीना छोड़ देना वैराग्यका सार नहीं है।

कुछ बच्चोंका दूध छुड़वाना बड़ा कठिन होता है। वे तीन चार सालके हो जानेपर भी माताका स्तन पीते रहते हैं। माता अपने स्तनोंमें नीम पीसकर लगा लेती हैं। तब बच्चा जल्दी स्तन पीना छोड़ देता है। इसी प्रकार मनको विषयोंसे छुड़वानेके लिये भी आपको नीमके पीसेके समान औषधि प्राप्त करनी होगी। एकान्त कमरेमें बैठ जाओ। संसारी जीवनके क्लेश, चिन्ता, भूख, प्यास, पाप, प्रलोभन, काम, कलह, भय, दर्प, रोग, मृत्यु, वृद्धावस्था, शोक, हानि, असफलता,

निराशा, वैर, बिच्छूके डंक, मच्छरोंके काटने आदि पर विचार करो। यह प्रभाव-युक्त नीमके पीसेका काम करेगा और संसारसे मनको छुड़ानेमें सहायक होगा। इस प्रकार आपको प्रति दिन विचार करना चाहिये।

जैसे पथरीली और क्षार युक्त भूमिमें खेती बिल्कुल निष्फल होती है इसी प्रकार बिना वैराग्यके योगाभ्यास और आत्म-विचार निष्फल हो जाते हैं। जैसे खेतीमें दिया हुआ पानी यदि चूहोंके बिलोंमें चला जावे और खेतमें नहीं फैले तो व्यर्थ होता है और शस्योंकी वृद्धि नहीं करता इसीलिये बिना वैराग्यके साधकके प्रयत्न निष्फल हो जाते हैं। उसे उन्नति प्राप्त नहीं होती।

संसारी विषयों और भोगोंसे विरक्ति होनेसे शुभेच्छा होने लगती है। इससे अन्यमनस्कता होने लगती है और फिर धारणा आती है। धारणासे ध्यान होता है। ध्यानसे समाधि होने लगती है। बिना विरक्ति या वैराग्यके कुछ भी सम्भव नहीं है।

साधकोंके मनमें तीव्र वैराग्य होना आवश्यक है जितने समय तक वे साधनामें लगे रहें। तभी उनको निर्विकल्प समाधि और मोक्ष प्राप्त होगा। मन्द वैराग्यसे संसार सागरको पार करना बहुत कठिन है। विषयों और

भोगोंका तृष्णा रूपी मगर साधकोंको गर्दनसे पकड़ कर, जोरसे खींच लेगा और आधे मार्गमें ही डुबा देगा।

योगमें सफलता प्राप्त करनेके लिये केवल मानसिक अनुमति ही पर्याप्त नहीं है। मोक्षकी उत्कट इच्छा, ऊंचे दर्जेका वैराग्य और साधनके लिये सामर्थ्यका होना परमावश्यक है।

योगवसिष्ठमें वैराग्य प्रकरण पढ़ो। आपको वैराग्यके असली स्वरूपका भली प्रकार ज्ञान हो जावेगा। उसमें श्रीरामकी विरक्त मनोदशाका विशद वर्णन दिया हुआ है। स्वादु भोजन, उत्साहवर्धक पानीय पदार्थ, प्रेमी माता पिता, भ्राता, प्रिय मित्र, हीरे मोती, फूल चन्दन, आभूषण, कोमल शैया, बगीचे आदि उनको आकृष्ट नहीं कर सके। अपितु उनके दर्शन मात्रसे ही उन्हें अतीव कष्ट होता था।

वैराग्य दो प्रकारका होता है (१) कारण वैराग्य, जो कुछ आपत्तियोंके कारण हो जाता हैं और (२) विवेक पूर्वक वैराग्य—जो सत् और असत् वस्तुके विवेकसे उत्पन्न होता है। जिस मनुष्यको प्रथम प्रकारका वैराग्य होता है वह केवल अवसरकी प्रतीक्षा करता रहता और मौका मिलते ही पूर्वमें त्यागे हुए पदार्थोंको फिर भोगने

लगता है। उसका पतन हो जाता है और वह पूर्वावस्थामें चला जाता है। विषय अनर्थ कर डालता है और प्रतिक्रियाके कारण दुगने बलसे बदला लेनेके लिये उस पर आक्रमण करता है। परन्तु दूसरा पुरुष जिसने विवेकके कारण पदार्थोंके भोगको त्याग दिया है वह आध्यात्मिक मार्गमें उन्नति प्राप्त करेगा। उसका पतन नहीं होगा।

७—कामनायें

कामनायें असंख्य और अजेय हैं, इनकी तृप्ति नहीं हो सकती। भोगसे तृप्ति प्राप्त नहीं हो सकती। भोगसे तृप्तिकी आशा करना अग्निमें घी डालनेके समान है। भोगसे कामना बलवती, पुष्ट और तीव्र हो जाती है। पूर्व कालके राजा ययातिका हाल देखो। उसने सहस्रों वर्षतक काम वासनाकी तृप्तिके लिये अपने पुत्रसे उसकी युवावस्था मांग ली थी।

अन्तमें अपनी वृद्धावस्थामें उसने बड़ी कटुतासे कहा था "शोक है, मैं कैसा मूर्ख हूं। अब भी मेरी काम वासना बढ़ती जा रही है। कामनाओंका अन्त नहीं है। हे परमात्मा! मैंने अपना जीवन ही व्यर्थ गंवा दिया। मुझपर कृपा करो। मुझे इस संसार पंकसे उबार लो।" यह

महाभारतमें मिलता है। गीताके तृतीय अध्याय श्लोक ३६ में लिखा है।

कामरूपेण कौन्तेय दुष्पूरेणानलेन च। अर्थात् कामना अग्नि ज्वालाके समान दुष्पूर है—तृप्त नहीं हो सकती।

ज्ञानी जन, कामनाकी छोटीसी चिंगारीको भी बहुत बड़ी बुराई समझते हैं। इसलिये वे कोई भी कामना नहीं रखते। वे आत्मामें ही प्रसन्न रहते हैं।

बृहदारण्यक उपनिषत्में लिखा है :—

जबालाके पुत्र सत्यकामने मुझे सिखाया है कि मन ही ब्रह्म है क्योंकि जिसमें मन नहीं है वह किस कामका है।"

"निःसन्देह उसने तुझको ब्रह्मका स्थान बताया है। हे राजाधिराज! उसने तुझे यह नहीं बताया कि ब्रह्मका एक ही चरण है"—फिर याज्ञवल्क्य इसकी व्याख्या करते हैं:—

"मन स्थान है, आकाश देश है आनन्दका। इसीसे मनुष्यको उसका ध्यान करना चाहिये।" राजाने पूछा 'हे याज्ञवल्क्य, कौनसा आनन्द।" उसने कहा "हे राजन्। निश्चय ही मन। हे महाराज! मनसे ही मनुष्य स्त्रीकी इच्छा करता है उसके द्वारा अपने ही समान पुत्र

उत्पन्न होता है और वह पुत्र आनन्द है। हे राजाधि-राज! मन परम ब्रह्म है। जो इस ज्ञानके सहित ब्रह्मका ध्यान करता है मन उसको नहीं छोड़ता। समस्त प्राणी उसके पास पहुंचे हैं। निश्चय ही देव बनकर वह देवोंके निकट जाता है।"

जब तुम सारी कामनाओंका त्याग भी कर चुके हो फिर भी मनमें कोई सूक्ष्म अज्ञात कामना छिपी रहती है जो पहचानी नहीं जा सकती। वह बड़ी भयानक होती है। इसलिये आपको अत्यन्त सचेत रहना होगा। काम-नाओंके ये छिपे हुए बहाव आपको किसी क्षण भी पटक देंगे यदि आप सतर्क नहीं रहोगे। ये आपका वैराग्य नष्ट कर देंगे और अन्तमें आपका पतन कर देंगे। मैंने ऐसे बहुतसे योग भ्रष्टोंको देखा है जिनका इन सूक्ष्म निहित वासनाओंके प्रबल प्रभावके कारण योगसे पतन हो गया है।

जब तक आपमें यह सूक्ष्म निहित अनिर्वुद्ध वासनायें हैं आप कभी स्वप्नमें भी निर्विकल्प समाधि प्राप्त करनेकी आशा नहीं कर सकते। आपमें वास्तविक परवैराग्य भी समृद्ध नहीं हो सकता।

मनमें एक कामना उठती है। अब यह एक वृत्ति है।

यह वृत्ति आपके मनमें उद्वेग पैदा करती है जब तक आप इष्ट पदार्थको भोग कर तृप्ति प्राप्त न कर लो। भोगके उपरान्त शान्ति या आनन्द होता है। मनमें एक और कामना उठती है। पहली कामनाके तृप्त होने और दूसरी कामनाके उठनेके बीचके समयमें शुद्ध आनन्द रहता है क्योंकि इस समय मन होता ही नहीं। मन विश्राममें होता है। आप ब्रह्मके निकट होते हो। दोनों कामनाओंके बीचमें शुद्ध आनन्दकी अवस्था ब्रह्म है। यदि आप साधना द्वारा ब्रह्म-चिन्तन जारी रख कर और दूसरी कामनाको न उठने देकर इस आनन्दके कालको बढ़ा सकोगे तो आप समाधिमें रहोगे। दोनों वृत्तियोंके बीचका समय असली सन्धि है।

जैसे ताप अग्निसे अभिन्न है वैसे ही विक्षेप मनसे अभिन्न है। यह साधकोंको बहुत दुःख देता है। यह दृढ़ इच्छायुक्त पुरुषोंके निश्चयको भी अचानक ही नष्ट कर डालता है। यदि विक्षेप न रहे तो मनका अस्तित्व नहीं रहता। यह विक्षेपयुक्त मन संसारकी रचना करता है। मल भी सुगमतासे दूर किया जा सकता है। परन्तु विक्षेपको दूर करनेके लिये साधकको दीर्घ काल तक बड़ा सुदृढ़ प्रयत्न करनेकी आवश्यकता है। जब निर्भय उद्दा-

लक निर्विकल्प दशामें प्रवेश करनेका प्रयत्न कर रहा था तो उसे इस विक्षेपके कारण बहुत कष्ट सहना पड़ा था। राजा भर्तृहरिको भी ऐसी ही कठिनाईका सामना करना पड़ा था, जब वह विक्षेप शक्तिपर प्रभुत्व पानेका प्रयत्न कर रहा था। विक्षेप माया है। विक्षेप अशुद्ध वासना है। निरन्तर उपासना योगाभ्यास या आत्म विचार द्वारा आपको विक्षेप शक्तिका नाश करना होगा। तब शान्ति स्वयं ही आजावेगी।

यदि दृष्य पदार्थोंके लिये सारी वासनायें छूट जावें तो मनका ऐसा निराकरण ही स्वयं अज्ञानका नाशक होता है। शुद्ध मनकी सहायतासे अशुद्ध मनका नाश कर दो। कामना रूपी ग्राहोंके दृढ़ पाशसे अपनेको मुक्त करो। परीक्षाओंमें साहस मत खोवो। हिम्मत रखो। सिंहकी भांति उठ खड़े हो। सात्विक मनसे मित्रता करो और शान्ति पूर्वक आत्मामें स्थित रहो। इच्छायें ही स्वयं दुःख है। अनिच्छायें स्वयं शुद्ध आत्मानन्द हैं। मायाका नाश मोक्ष है। कुत्सित संकल्पोंके नाश कर देनेसे अविद्याका नाश हो जाता है।

जब तक आप किसी वस्तुका स्वरूप नहीं जान लेते तब तक उसके लिये आपको इच्छा उत्पन्न नहीं होती।

जब आप उसे देख लेते, स्पर्श कर लेते या सुन लेते हो तब उसके लिये कामना उपजती है। इसलिये मनुष्यके लिये सबसे उत्तम यही सिद्धान्त है कि जो वस्तु उसकी कल्पनाको कलुषित करने वाली हो उसको ग्रहण न करे, न स्पर्श ही करे और न उसको देखे।

मनके अन्दर कामनाका होना ही सच्ची मलिनता है। इसीसे बन्धन होता है। ब्रह्म-चिन्तन सारी कामनाओंको नष्ट कर देगा। ब्रह्ममें कामनायें नहीं होती। ब्रह्म निर्मलता है। प्रणवका जाप करो और कहो "मैं सर्व पवित्रता हूं।" सारी कामनायें निकल जावेंगी।

सुखका कारण कामना है। जब कामना नहीं होगी तो सुख नहीं हो सकता। बाहरी पदार्थोंका अस्तित्व कामनाका कारण है।

अपने मनके क्षेत्रको मार्जन करो। इस संसारके सारे विचारोंको बाहर निकाल कर अपने प्रेमपात्र प्रभुके बिठानेके लिये मनमें स्थान बना लो कि उसका सिंहासन उसके अनुरूप होवे। लाखों क़ामनाओं और आकांक्षाओं-ने आपको घेरा हुआ हैं। आप प्रभुके लिये स्थान कैसे बना सकते हो जब तक कि ये कामनायें हृदय प्रदेश (प्रभुके स्थान) को खाली नही कर दें।

आप स्त्री, सन्तान धनका परित्याग कर सकते हो परन्तु नाम और यशकी चाहनाको त्यागना बहुत कठिन है। भोगके मार्गमें यह चाहना बड़ी रुकावट होती है। मायाका यह बड़ा प्रबल शस्त्र है जिससे वह संसारी मनुष्योंका वध करती है।

जैसे पानीसे नहीं सींचनेपर पौधा सूख जाता है इसी प्रकार यदि मन बार-बार चिन्तन न करे तो दुर्वासनायें भी मुरझा जाती हैं। आपको निश्चयपूर्वक अवधान और कल्पनाको विषयसे दूर हटाना होगा। समय पाकर सारी अवाञ्छनीय कामनायें मर जावेंगी।

यदि दृश्य पदार्थोंके लिये सारी कामनायें बन्द हो जावें तो मनका इस प्रकारका त्याग ही अज्ञानका नाश है। ऐसा आनन्द मनुष्यके अपने ही प्रयत्नसे उत्पन्न होता है। पुरुषार्थके समान कोई वस्तु नहीं है। पुरुषार्थसे ही मार्कण्डेयका भाग्य बदल गया था। वह चिरञ्जीवी बन गया था।

८—स्मरण

जब आप किसी बातको याद करना चाहो तो आपको मानसिक प्रयत्न करना पड़ेगा। आपको अन्तः-करणके विभिन्न स्तरोंकी गहराईमें नीचे ऊपर जाना

पड़ेगा और विभिन्न प्रकारके असंगत वस्तुओंके विचित्र वस्तुओंमें ठीक इच्छित वस्तुको निकालना होगा। जैसे रेलगाड़ीकी डाक छांटनेवाला बाबू चिट्ठियोंके खानोंमें नीचे ऊपर हाथ हिलाकर ठीक इच्छित चिट्ठीको निकाल लेता है इसी प्रकार यह अन्त करण भी अपने भिन्न-भिन्न कोष्ठकोंमेंसे चेतनाके स्तरपर इच्छित वस्तुको निकाल कर ले आता है। भिन्न-भिन्न पदार्थों के ढेरमेंसे अन्तःकरण ठीक इच्छित वस्तुको निकाल सकता है।

स्मृतिका प्रयोग दो अर्थों में हुआ करता है। जब हम कहते हैं कि महाशय जाँनकी स्मरण शक्ति अच्छी हैं तो हमारा मतलब यह होता है कि महाशय जाँनके मनमें अतीत अनुभवोंके जमा रखनेकी अच्छी क्षमता है। कभी-कभी हम कहते हैं "मुझे उस घटनाका कुछ स्मरण नहीं है" इसमें कुछ वर्ष बीते जो घटना हो चुकी है उसको अपने वास्तविक स्वरूपमें चेतनाके स्तरके ऊपर आप नहीं ला सकते। यह एक स्मृतिकी क्रिया है।

यदि नया अनुभव हो तो स्मृतिके द्वारा आप उसे पूर्ण रूपसे दोबारा याद कर सकते हो। स्मृतिसे आपको

नया ज्ञान नहीं प्राप्त होता। यह तो पुराने ज्ञानका ही पुनर्भव होता है।

साधारण स्मरण कार्यमें एक सामयिक प्रतिनिधि (सहकारी) हुआ करता हैं। वैयक्तिक स्मृतिमें एक निर्दिष्ट प्रतिनिधि (सहकारी) होता है। जो किसी दूसरेके साथ कार्य करता है वह सहकारी प्रतिनिधि कहलाता हैं गणित विद्यामें एक अज्ञात संख्याके पूर्व जो संख्या या अपूर्ण अंश अलजेवरामें लगाया जाता है वह भी co-efficient सहकारी कहलाता है।

जब मनको किसी वस्तुका अनुभव होता है तो उसी समय चित्तमें उसका एक संस्कार पड़ जाता है। इस अनुभव और संस्कारके बीचमें कुछ सामयिक अन्तर नहीं पड़ता।

स्मृति चित्तका कार्य है। वेदान्तमें यह एक भिन्न प्रक्रिया हैं। कभी यह मनके ही अन्तर्गत होता है। सांख्य दर्शनमें यह बुद्धि या महत् तत्वके ही अन्तर्गत होता है। पतञ्जलि ऋषिके राजयोगका 'चित्त' वेदान्तके 'अन्तःकरण' के बराबर है।

मान लो अपने किसी मित्रसे आपको एक सुन्दर पंखी मिली है। जब आप पंखीको काममें लाते हो तो

यह कभी-कभी आपको उस मित्रकी याद दिला देती है। थोड़े समय तक आप उसका चिन्तन करते हो। यह पंखी उद्बोधक या स्मृति हेतुका काम करती है।

अच्छी स्मृतिके ये चार लक्षण हैं। यदि आप एक बार कोई अंश किसी पुस्तकका पढ़ो और उसको भली प्रकार सुना सको यह इस बातकी सूचक है कि आपकी स्मृति अच्छी है। यह सुगमता कहलाती है। यदि आप किसी वस्तुको बिना घटाये बढ़ाये सुना दो तो यह अवैकल्प कहलाता है। यदि आप किसी बातको या किसी अंशको दीर्घकाल तक स्मरण रख सको तो यह धारण कहलाता है। यदि आप आवश्यकता पड़ने पर एकदम किसी अंशको बिना किसी कठिनाईके बता सको तो यह उपाहरण कहलाता है।

यदि आपका भाई लम्बा है तो दूसरे स्थान पर इसी प्रकारके दूसरे लम्बे मनुष्यको देखकर आपको अपने भाईका स्मरण हो जाता है। इस स्मृतिका कारण पदार्थोंका सादृश्य है।

मान लीजिये आपने मद्रासमें एक वामनको देखा है। जब आप किसी बहुत लम्बे मनुष्यको देखते हो तो आपको उसी वामनकी याद आती है जिसे आपने

मद्रासमें देखा था। किसी बड़े महलको देखकर किसानकी झोंपड़ी या गङ्गा किनारे किसी संन्यासीकी फूंसकी कुटिया याद आती है। यह स्मृति पदार्थोंकी विपरीततके कारण होती है।

जब किसी दिन आंधी चली हो और आप सड़कपर जाते हुए किसी उखड़े हुए वृक्षको देखते हैं तो आप समझ लेते हो कि वृक्ष आंधीके कारण गिरा हैं। यह स्मृति कार्य-कारण-सम्बन्ध द्वारा हुई है।

९—मनके दो प्रवाह

राग और द्वेष मनमे दो प्रवाह होते हैं जो मनुष्यको जन्म मरणरूपी संसारचक्रसे बांधे रखते हैं। सारी भावनायें राग-द्वेषकी जातिके ही अन्तर्गत होती हैं। यह दोनों प्रवाह मनके धर्म हैं, आत्माके नही। जीवन्मुक्तका मुख्य लक्षण राग और द्वेषसे रहित होना है। सुख दुःख, हर्ष और शोक रागद्वेषके कारण हुआ करते हैं। यदि मनमें से राग और द्वेष निकल जावें तो हर्ष शोक भी जाते रहेंगे। जैसे अग्निमेंसे उष्णता मन्त्र और औषधके द्वारा दूर की जा सकती हैं इसी प्रकार मनके ये दोनों धर्म (राग और द्वेष) भी योग क्रियाके द्वारा दूर किये जा सकते हैं। निर्विकल्प समाधिके द्वारा राग-

द्वेषको समूल भस्म किया जा सकता है। सुषुप्तिमें ये दोनों भावनाएँ मनुष्यमें बीजावस्थामें रहती हैं। उनका नाश नहीं होता। ज्योंही मनुष्य निद्रासे जागता है वे फिर क्रियाशील हो जाती हैं। जिस योगी या ज्ञानीने इन दोनों वृत्तियोंका नाश कर दिया है वह तीनों लोकोंमें सर्वोत्तम मनुष्य है। वह राजाओंका राजा है और महा-राजाओंका महाराज है। यदि ज्ञानी या योगीमें कभी-कभी क्रोधकी झलक प्रकट होती भी है तो यह आभास मात्र होता है। जैसे जलमें लकड़ीसे बनाई हुई रेखा तुरन्त ही मिट जाती है इसी प्रकार यद्यपि ज्ञानीमें क्रोध प्रकट होता हैं तो वह पल मात्रमें ही दूर हो जाता है। संसारी मनुष्य इस बातको नहीं समझ पाते। बालकोंमें ये दोनों प्रवाह थोड़े ही कालके लिये प्रकट होते हैं और फिर लोप हो जाते हैं। वे एक क्षणमें लड़ते हैं और दूसरे क्षण प्रसन्नतासे आपसमें मिल जाते हैं। वे अपने मनमें दुर्भावनायें नहीं रख छोड़ते, और वे दूसरोंकी की हुई बुरा-इयोंका ज्यादा चिन्तन नहीं करते। वे कुछ मनका मैल (द्वेष) भी नहीं दिखाते। लहर आती हैं और गुजर जाती है। ज्यों-ज्यों बालक बड़ा होता जाता हैं, ये दोनों प्रवाह गम्भीर रूप धारण कर लेते हैं और दृढ़ हो जाते हैं।

वास्तविक कर्म मनके संकल्पसे उपजता है। जब राग द्वेषके प्रवाहों द्वारा मन गतिशील होता है तो कर्म प्रारम्भ होता है। बाह्य क्रियाएँ तो पीछे प्रकट होती हैं। इच्छासे मन गतिशील होता है। इच्छा प्रेरक शक्ति होती है। मनकी क्रियाएँ ही सच्चे कर्म कहलाती हैं।

राग द्वेष मनके दो प्रवाह होते है। न केवल द्वेष वृत्ति ही अपितु राग वृत्ति भी मनुष्यको दुःख पहुंचाती हैं। यदि किसी पदार्थसे सुख मिलता है तो आपको उसके लिये राग उत्पन्न होता है। परन्तु जब उसी पदार्थसे वियोग होता है जैसा कि प्रिय पत्नी या पुत्रकी मृत्युसे, आपको अत्यन्त कष्ट होता है जिसका वर्णन नहीं हो सकता। मान लो कि आपको भोजनके बाद फल खानेकी आदत है। फलोंसे आपको सुख मिलता है आपको फलोंसे राग हो गया है। परन्तु यदि किसी स्थान पर आपको फल नहीं मिल सकते तो आपको दुःख होता है। विचार और ब्रह्म चिन्तनके द्वारा राग और द्वेषके दोनों प्रवाहोंको नाश कर दो। द्वन्द्वोंसे अतीत हो जाओ। आपको नित्य, अनन्त आनन्द और शान्ति मिलेगी।

मनके अन्दर राग भी उतना ही भयावह है जितना द्वेष। जहाँ भी राग होता है वहां द्वेष भी होता है।

कोई मन रागके द्वारा आपका चिन्तन करते हैं तो कोई मन द्वेषके कारण चिन्तन करते है। रावणका मन द्वेष और भयके कारण श्री रामका चिन्तन किया करता था। निरन्तर तीव्र चिन्तनके द्वारा वह श्री रामको सब कहीं प्रत्येक पदार्थमें देखता था। इसी प्रकार कंसका मन भी श्री कृष्णका चिन्तन किया करता था। यह भी एक प्रकारकी भक्ति (वैर भक्ति) होती है। किसी न किसी प्रकार उनके मन परमात्माका चिन्तन करते रहते थे।

राग-द्वेष, पुण्य-पाप, और सुख दुःखरूपी छः अरों-वाले चक्रसे यह संसार चलता है। कर्मका फल शरीर है। कर्म राग-द्वेषके कारण बनता है। यदि आपको शरीर नहीं चाहिये तो आप कर्म मत करो। यदि आप कर्म करना नहीं चाहते तो मनसे राग और द्वेषको निकाल दो।

अनुकूल-प्रतिकूल ज्ञानके कारण राग और द्वेष उप-जते हैं। अनुकूल वस्तुओंके लिये राग होता हैं और प्रति-कूल वस्तुओंके लिये द्वेष। जब यह अनुकूल-प्रतिकूल ज्ञान

जो भेद-ज्ञानके आधार पर है, लोप हो जाता है तो राग द्वेष भी नष्ट हो जाते हैं।

राग-द्वेष अभिमानके कारणभी उत्पन्न होते हैं। यदि अविद्याका फल-रूप अभिमान दूर हो जावे तो राग-द्वेष भी नष्ट हो जावे। यदि मूल कारण अविद्याको ज्ञान प्राप्तिके द्वारा नष्ट कर दिया जावे तो अभिमान, राग, द्वेष, कर्म, शरीर, पुण्य-पाप, सुख दुखकी सारी शृंखला अदृश्य हो जावेगी। इसकी एक कड़ी दूसरीके आश्रित रहती है। ज्ञान प्राप्त हो जाने पर सारी कड़ियां पूर्णतया टूट जावेगी।

अपने मानसिक जीवनमें या तो आप पतवारको पकड़े रह कर अपनी नौकाकी दिशा, संसर्गमें आने वाले स्थान आदिका निश्चय कर सकते हो या इसमें असफल होकर इधर उधर हवाके झोंकोसे फेंके हुए, हरएक भावना, तुच्छ राग द्वेष आदिके प्रवाहसे वहाये जाते रहोगे।

रागमें भय छिपा हुआ है। जब आपको शरीरके लिये राग होता हैं तो मृत्युका भय आ जाता हैं। जब धनके लिये राग होता है तो धनके नाशका भय आ जाता है क्योंकि पदार्थोंकी प्राप्तिमें धन ही कारण (निमित्त)

होता हैं। जब स्त्रीके लिये राग होता हैं तो आप उसकी रक्षा करनेमें सर्वदा सतर्क रहते हो।

मनकी विविध वृत्तियोंमें से राग, द्वेष और मोह बहुत ही दृढ़तासे जमे हुए होते हैं। उनको उखाड़ फेंकने के लिये बड़े प्रबल और अनवरत प्रयत्नकी दरकार होती है।

१०—भाव

भाव एक मानसिक अवस्था है। Mood का सच्चा अर्थ 'भाव' से भी पूरी तरह प्रकट नही होता। वृत्तिका अर्थ विचार है। Whim को संस्कृतमे तरङ्ग कहते हैं। सनक बढ़ी हुई तरङ्गको कहते हैं। यह शब्द हमेशा Fancy के साथ प्रयोग होता है। हम कहा करते हैं "Whims and Fancies" कल्पनासे हल्की या कम प्रभाव वाली बौद्धिक प्रक्रियाका एक रूप Fancy हैं। इस प्रक्रियाके कारण एक नवीन तथा आनन्दप्रद विचार Fancy कहलाता है। हम कहा करते हैं "मि० नायडू या मि० एटकिन्सन भावयुत सज्जन है।" इसका अर्थ है कि वह शीघ्र ही भावका दास बन जाता है। हम यह भी कहा करते हैं "कि अमुक सज्जन अच्छे या प्रसन्न भावमें है। अब मैं थोड़ीसी बात चीत करनेके लिये उसके निकट

जा सकता हूं। वह बड़ी क्रुद्ध दशामें है इस समय मुझे उससे नहीं मिलना चाहिये।

वेदान्तमें केवल दो ही प्रकारके भाव हुआ करते हैं हर्ष या शोक—परन्तु अंग्रेज़ अपने वार्तालापमें Mood शब्द को विस्तृत अर्थोंमें भी प्रयोग करते हैं। वे कहते हैं कि वह बातचीत करनेके भावमें हैं। 'वह मौन भावमें हैं।' वह घृणाके भावमें है। वह प्रेमके भावमे है। वह स्वार्थके भावमें है। वह ईर्ष्याके भावमें है। वह पार्थक्यके भावमें है। वह एकत्वके भावमें है।" वेदान्तकी परिभाषामें ये सब वृत्तिया ही है। 'भावनाओंके विज्ञान' (Science of Emotions) के प्रसिद्ध लेखक डाक्टर भगवान दास इनको भावनाओंमें ही मानते हैं।

जैसे कोई सुन्दरी युवती जिसके गाल पर या नाक पर पका हुआ गन्दा फोड़ा होवे तो वह अपना मुख ढक लेती है और समाजमें दूसरोंसे मिलनेके लिये बाहर निकलना पसन्द नहीं करती इसीलिये जब आपके मनमें उदासी, घृणा, या ईर्ष्याके भाव हों तो आपको बाहर निकलना, अपने मित्रों तथा अन्य लोगोंसे मिलना नहीं चाहिये। क्योंकि आप दूसरोंमें भी यही भाव भर दोगे। आप समाजके लिये भयकी वस्तु हो।

जब आपको बोलनेकी इच्छा हो एकदम मौनका अभ्यास करो। यह बोलनेके इच्छाकी प्रतिरोधक औषधि है। जब आपके मनमें घृणाका भाव होवे तो इसके विरोधी प्रेमके सद्गुणकी वृद्धि करो। घृणाका भाव जल्दी दूर हो जावेगा। जब आपके मनमें स्वार्थपूर्ण भाव होवे तो एकदम निस्वार्थ सेवा प्रारम्भ कर दो। जब आपके मनमे पार्थक्यका भाव आवे तो सेवा, प्रेम, कृपा और क्षमाके द्वारा दूसरोंके साथ मिलनेकी चेष्टा करो। जब आप आलस्यके भावमें होवें तो तुरन्त ही कोई न कोई फुरतीला काम यथा बगीचा लगाना, पानी खींचना दौड़ना, तेज़ चलना, या साइकिल चलाना आदि करने लगो।

उदासी, क्रोध, घृणा आदि भावों वाले मनुष्य दूसरोंको निश्चित हानि पहुंचाते हैं। वे दूसरों पर प्रभाव डालते हैं और उनमें भी ये वृत्तियां जगा देते हैं। वे अपराधी हैं। विचार जगतकी वे बहुत हानि करते हैं। प्रसन्नचित्त मनुष्य समाजके लिये प्रसाद रूप हैं। वे दूसरोंको भी प्रसन्नता लाते हैं। जीवन्मुक्त पुरुष सारे भावोंसे रहित होता है। उसने समस्त भावोंका पूर्ण संयम कर लिया होता है। वह इन सबका स्वामी बन

गया होता है। उसकी चेतना निर्मल होती है। आत्मामें कोई भी भाव नहीं हुआ करता। आत्मासे सारूप्य प्राप्त करो। आप सारे भावोंको सुगमतासे नाश कर सकते हैं।

उदास (निरानन्द) भाव युक्त पुरुष दूसरे मनुष्योंसे तथा स्थूल जगतके आकाश भंडारसे अपनी ओर उदास पदार्थ और निरानन्द विचार आकृष्ट किया करते हैं। आशा, विश्वास और प्रसन्नवृत्तियुत पुरुष दूसरोंसे भी इसी प्रकारके विचार अपनी ओर खींचते हैं। वे सदा अपने प्रयत्नमें सफल हुआ करते हैं।

परन्तु जो ध्यानका अभ्यास करते हैं उनमें एक अच्छा भाव हुआ करता है जिसे 'ध्यान-भाव' कहते हैं। जो धारणा और ध्यानका अभ्यास करते हैं उनको इस प्रकारके भावका अनुभव होता है। जब यह भाव प्रकट हो आपको अवश्यमेव तुरन्त ही पढ़ना, लिखना, बात-चीत करना सब कुछ छोड़ कर अपने नित्यके आसनसे बैठकर ध्यान करना प्रारम्भ कर देना चाहिये। यह भाव ध्यानके अभ्यास (निदिध्यासन) के लिये अनुकूल होता है। यदि प्रकाशसे बाधा होती हो तो खिड़कियां बन्द कर दो या उसमें परदा लगा दो। ध्यानके नवीन अभ्यासियोंके लिये अन्धेरा कमरा अनुकूल होता है।

मनमें हर्ष और शोक ये दो प्रकारके भाव उठा करते हैं। अभी हर्ष हैं। पांच मिनट पीछे उदासी होती है। ये प्रवाह एकके बाद दूसरा आते रहते हैं। ये षडूर्मियों-मेंसे हैं। ये दो लहरें हैं जो मन रूपी सागरको क्षुब्ध करती हैं। साधकोंको चाहिये कि उदासीको प्रार्थना, ध्यान, आनन्दके विचार, प्रणवोच्चार, सद्विचार और दिव्य भजनोंके गायन द्वारा दूर करें। इस भावको कभी स्थान नहीं देना चाहिये। भाव सहित ॐ का उच्चारण करो, और कहो कि "मैं आनन्दमय हूं। मेरा स्वरूप आनन्द है।" उदासी दूर हो जावेगी, इस उदासीके अनेक कारण होते हैं। बादलका दिन, दुर्जनोंकी संगति, अपच, सूत्रात्माओंका प्रभाव उदासीके पुराने संस्कारोंका पुनरुद्भव—ये सब उदासी लाते हैं।

११—भावनायें

प्रत्येक विचारमें भावना भरी होती है। (विचार और इच्छाके मिश्रणसे भावना बनती है। भावनायें वे इच्छायें होती हैं जिनमें विचारका अंश घुस जाता है।) दूसरे शब्दोंमें विचार और इच्छा मिलकर भावना कहाती है। भावनाओंके स्पन्दसे शुद्ध मानसिक पदार्थमें उद्वेग होता है और मनुष्यके विचारोंमें बाधा पड़ जाती है।

एक भावना-इच्छा होती हैं और एक भावना-अनुभव होता है। यदि इच्छाका भाग अधिक होवे तो भावना-इच्छा कहाती है और यदि आनन्दका भाग अधिक होवे तो भावना-अनुभव कहाता है।

मनुष्यमें बहुतसी भौतिक इच्छायें और भावनायें पशु जगत्की इच्छाओंके सदृश होती हैं। क्रोध और मैथुनकी प्रवृत्ति पाशविक वृत्तियां हैं। असंस्कृत मनुष्योंमें ये इच्छायें और भावनायें जो अपरा प्रकृतिमे निहित होती है वे परा प्रकृतिको दबाकर प्रबल हो जाती हैं।

आनन्द मनमें एक प्रकारकी भावना हैं। आनन्दमे मन फैलता है। मनमे शीतलता रहती है। आनन्दके समय मनमें क्या होता है इसे पाश्चात्य मनोविज्ञानवेत्ता ठीक २ नहीं समझ पाये हैं। साधारण मनुष्य भी इसको नहीं समझ सकते। इस अनुभवको योगी या ज्ञानी ही जानता है। दुःखमे मन सिकुड़ जाता है, और अत्यन्त उष्णता पैदा हो जाती है।

१२—*निर्बुद्धि चेष्टायें* (Instincts)

मनुष्योंमें और पशुओंमे भी दो प्रबल चेष्टायें हुआ करती हैं। एक आत्म-संरक्षण और दूसरी सन्तान उत्पादन। यह इच्छा रहित प्रेरणा कर्मकी ओर होती है।

क्षुधा आत्म-संरक्षणकी चेष्टाका एक चिन्ह है। काम-वासना (मैथुन) दूसरी चेष्टाका चिन्ह है। जीव अहं-कार युक्त होनेसे बल, नाम और यश चाहता है। यह अपनेको बढानेके लिये होता है। दूसरोंसे लेना लोभ है। यह स्वार्थके लिये दूसरेकी वस्तुको काममें लेना होता है। अहंकारसे आज्ञा देना शासन कहाता है। जीव दूसरों पर शक्ति प्रयोग करना चाहता है। यह जीव भावना कहलाती है। शिल्प कला, व्यापार आदिका मूल कारण लोभ और आत्म-संरक्षण होता है। यदि आप निरन्तर ब्रह्म-भावना रखना चाहते हो तो आपको शासन और लूटना छोड़ देना चाहिये।

एक और चेष्टा होनी है—इकट्ठे रहनेकी या संग करनेकी। स्त्रियां पुरुषोंके संग रहकर प्रसन्न रहती हैं। पुरुष स्त्रियोंके संग रहकर खुश होते हैं। इसका मूल कारण सन्तान उत्पादनकी चेष्टा है। एक और भी कारण है—बलवान पुरुषके संग रहकर दुर्बल मनुष्य भी बल प्राप्त कर लेता है। किन्तु जो मनुष्य ईश्वरको प्राप्त करना चाहता है उसे संगतिसे बचना चाहिए विशेषकर स्त्रियों और संसारी मनुष्योंके संगसे। उसे अकेला रहना चाहिये, तो वह बहुत बलवान और दृढ़ हो

जावेगा। उसका व्यक्तित्व बहुत शक्तिशाली हो जावेगा। प्रारम्भमें तो अकेले रहनेमें कठिनाई प्रतीत होगी। भय मालूम होगा। यदि अमृतत्व प्राप्त करना चाहते हो तो आपको एक-एक करके सारी कठिनाइयों पर काबू पाना होगा। बहुत बड़ा इनाम मिलेगा। ब्रह्मवित् परमाप्नोति—अर्थात् ब्रह्मका जाननेवाला परमपद प्राप्त करता हैं। अमृतमश्नुते—वह अमृतत्व—अमरतारूपी अमृत पीता है।

१३—पशु बुद्धिकी क्रियायें (Impulses)

ये क्रियायें तीन प्रकारकी होती हैं अर्थात् विचारकी वाणीकी और कर्मकी। मौनसे वाणीकी क्रिया रुकती हैं और ध्यानसे मिथ्या विचार और असत्कर्मकी क्रिया रुकती है।

यह क्रिया आकस्मिक प्रेरक शक्ति होती है। दो क्रियाये मुख्य होती हैं एक मैथुनकी और दूसरी वाणीकी। इस क्रिया और कल्पनामें गाढ़ा सम्बन्ध है। कल्पनासे ये क्रियायें बनती हैं। इनको युक्तियों और इच्छाशक्ति तथा परमात्माके ध्यान द्वारा रोकना चाहिए।

१४—योगियोंके तीन भेद

योगके साधक तीन प्रकारके होते हैं। (१) आरुरुक्षु-जो योगकी सीढ़ियों पर चढ़नेका प्रयत्न कर रहा हैं।

(२) युञ्जान—जो योगकी क्रियाओंमें एकचित्त होकर लगा हुआ है और (३) योगारूढ़—जो योगके उन्नत शिखरपर पहुच चुका है।

१५—मनकी शक्तियां

यदि आप मनकी मनके ऊपर, पदार्थके ऊपर, मानव शरीरके ऊपर क्रियाओंको ध्यान-पूर्वक देखो तो आपको ज्ञात होगा कि प्रत्येक मनुष्य स्वयं एक शक्ति है। अपनी वासनाओं पर प्रभुत्व और आत्म-निरोधके द्वारा आपको शक्तिका सञ्चय करना होगा। जब मन इतना शक्तिशाली हैं तो उस आत्माका क्या कहना है जो सब वस्तुओंका भंडार है और जिससे यह तुच्छ मन अपना प्रकाश और बल प्राप्त करता है।

जब कभी कोई अग्निकाण्ड अथवा अन्य घटना हो जाती हैं आप कितने सचेत और फुर्तीले हो जाते हैं। क्या आप अद्भुत् शक्तियोंका प्रदर्शन नहीं करते। आप ऊंची दीवारको छलांग जाते हो, बहुतसे बच्चोंको बचा लेते हो, अग्निमें से भागकर बहुतसी वस्तुयें ले जाते हो। सारी मानसिक शक्तियां अर्थात् स्मृति, कल्पना, इच्छा इत्यादि अपना कार्य करती हैं। वीरता, निर्भयत्व, दया तथा अनेक अन्य सद्गुण आप प्रदर्शन करते हो। आपने

ये सब क्रियायें तथा शक्तियां कहांसे प्राप्त कीं। इससे आप निश्चय कर सकते हो कि वास्तवमें आप सर्वशक्ति सम्पन्न हो। आपके अन्दर एक महान् विशाल शक्ति भण्डार है। ध्यान अभ्यास द्वारा इसी स्रोत तक पहुच जाओ और शक्ति प्राप्त करो। आपको प्रत्येक वस्तु मिलेगी। अन्तरात्मा पर विश्वास करो।

यदि गरमीके दिनोंमें दोपहरको बारह बजे आपको एक तार मिले कि बीस मील दूर आपके गांवमें आपका पिता अत्यन्त असाध्य रोगसे ग्रसित बीमार पड़ा है तो आप तुरन्त अपना भोजन भी छोड़ कर दौड़ते हुए जाने लगते हो। यद्यपि आपका अपना स्वास्थ्य भी उस समय अच्छा नहीं होता तो भी केवल अपने प्रेमी पिताको देख-नेकी इच्छा-मात्र से आप किसी बातकी चिन्ता नही करते। आप सारे रास्ते दौड़ते चले जाते हो और कुछ ही घन्टोंमें उस स्थान पर पहुच जाते हो। तब आप आश्चर्य करते हैं। यह क्या ? मैं तो स्वयं भी अच्छा नहीं था। मैं बीस मील दो घन्टेमें चला आया यह कैसा अचम्भा हैं।" इससे प्रकट होता है कि वास्तवमें आप शक्ति-सम्पन्न हो। मनमें अनेक प्रकारकी शक्तियां हैं। वे अक्रिय रहती हैं। आपको उन्हें जागृत करना होगा।

वेदना शक्ति, इन्द्रिय-ज्ञान, स्मरण-शक्ति, भावनाशक्ति मनीषा शक्ति, इच्छा या संकल्प शक्ति और धारणा शक्ति ये छः मनकी मुख्य शक्तियां हैं। वास्तवमें धारणा शक्ति स्मृति शक्तिका ही अंग है। मनीषा शक्तिके दो उपांग और हैं निर्णय (निश्चय करना) और तर्क। तर्क के भी दो अङ्ग और हैं—अनुमान और परामर्श।

तुलना और विरोध देखनेकी शक्ति, अनुमान, परामश आदि—ये सब मनकी मनीषा शक्तिके अन्तर्गत हैं।

जब प्रातःकाल आप नदीमें चढ़ाव देखते हो तो आप अनुमान करते हो कि गत रात्रिमें वर्षा हुई होगी। जब आप पहाड़ियों पर धुआं देखते हो तो अनुमान करते हो वहां अग्नि होनी चाहिये। यह अनुमान शक्तिके कारण है। (१) राम मरणशील है, श्याम मरणशील है मुरारी मरणशील है इसलिये सारे मनुष्य मरणशील हैं। (२) सारे मनुष्य नाशवान हैं, महाशय चौधरी मनुष्य है इस लिये महाशय चौधरी नाशवान् है। तर्क द्वारा इस प्रकारके निर्णय करना या गौतम ऋषिके न्याय शास्त्रकी पांच प्रकारकी युक्तियों द्वारा निश्चय करना यह निर्णय और तर्ककी सहायतासे मनीषा शक्तिका काम है।

स्मृति शक्ति तीन काम करती है। मानो आप मन्दिरमें घन्टेका शब्द सुनते हो। स्मृति शक्ति इसे ग्रहण कर लेती है। फिर धारणा द्वारा वह इसे धारण करती है। फिर जब कभी आप मन्दिरके घन्टेका शब्द सुनते हो तो आपको याद आता है "यह मन्दिरके घन्टेका शब्द है। यह छात्रावासका घन्टा नहीं हैं।" स्मृतिके तीन काम हैं यह ग्रहण करती है, धारण करती है और आवश्यकता पड़ने पर याद दिलाती है। यद्यपि ग्रहण करनेका काम वेदनाशक्ति द्वारा होता है तो भी स्मृति शक्ति इसमें भाग लेती है।

आपने कभी हाथीको बाइसिकल चलाते नहीं देखा है। जिस मनुष्यने देखा है जब वह आपको इसका वर्णन सुनाता हैं तो आपका मन इसका मानसिक चित्र बना लेता है। यह भावना शक्ति द्वारा होता है।

पाश्चात्य दार्शनिकोंने कल्पनाकी शक्तिके लिये बहुत कुछ कहा है कि मनुष्यके मनमें यह सबसे उग्र शक्ति है और जब कल्पना और इच्छा शक्तियोंमें टक्कर होती है तो निर्विकल्प रूपसे कल्पना शक्तिका ही बोलबाला होता है। इच्छा आत्मशक्ति है। यह ब्रह्मका प्रगतिशील रूप है।

कुछ लोग कहते हैं कि कल्पनासे अधिक बलवती इच्छा शक्ति होती है। यह सत्य-सत्य नहीं कहा जा सकता कि इनमें कौन बड़ी है क्योंकि इनकी स्वतन्त्रता तथा शक्ति एक दूसरेसे प्राप्त की जाती है।

मनके भिन्न-भिन्न तत्वोंमें तदात्म सम्बन्ध तथा सहयोग पाया जाता है इसलिये जब प्रत्येक दूसरे पर अपनी शक्तिके लिये निर्भर करता है तो कौन कह सकता है कि अमुक बड़ा है तथा अमुक छोटा, अमुक प्रधान हैं तथा अमुक गौण। इच्छा शक्तिका गतिबल कामनाओं, लक्ष्य और वासनाओं द्वारा प्राप्त किये बिना अकेली कल्पना क्या करेगी?

पूर्वमें वेदान्तियोंने इच्छा शक्तिको कल्पनासे बड़ी शक्ति माना है। जब मन चेतन कर्ताके रूपमें स्वयं अपनेको ही देखता है तो उसे Apperception आत्मानुभूति कहते हैं। यह तत्व डाकके बाबूकी तरह सन्देश प्राप्त करता है, छांटता है, एक दूसरेसे मिलाता हैं, यथा-स्थान रखता है, संसर्ग करता हैं और बाहर भेजता है।

मनुष्यके अन्दर बहुत-सी उच्च तथा गुप्त मानसिक शक्तियां हैं। मन शक्तियोंका भण्डार है। परन्तु शक्ति ज्ञान तथा आनन्दका केन्द्रीभूत, असीम, तथा कभी न

चुकने वाला भंडार आत्मा है। उपयुक्त साधनाके द्वारा इन गुप्त शक्तियोंका प्रकट करना सम्भव है। साधकको अपनी परिपक्वताकी योग्य अवस्था तक भी पहुंच जाना आवश्यक हैं। साधना क्रमबद्ध, निरन्तर और तीव्र होनी चाहिये। सच्ची श्रद्धा भी होनी चाहिये। तभी आशामय सफलताकी सम्भावना होती है।

१६—योगीकी शक्तियां

निर्विकल्प अथवा निर्बीज समाधिके द्वारा राजयोगीको मनोजय प्राप्त होती है और मनोजयके द्वारा भूतजय प्राप्त होती है। उसको अग्नि जलावेगी नहीं। पानी डुबायेगा नहीं। बनारसके स्वर्गीय तैलङ्ग स्वामी जो ८० वर्ष हुए जीवित थे और आलन्दीके श्री ज्ञानदेवको सिद्धियां प्राप्त थीं। ज्ञानदेवसे मिलनेके लिये चांगदेव सिंह पीठपर चढ़कर आया था तो ज्ञानदेवने उसकी अगवानीके लिये अपने घरको चला दिया। मस्जिद भी चलने लगी थी। तैलंग स्वामी छः मास तक गङ्गाजीके नीचे रहा करते थे।

योगीको शक्ति प्राप्त होती है कि वह अपने अन्तःकरणके अन्दर गहराईमें उतर कर अनेकों पूर्व जन्मोंके संस्कारोंको देख तथा समझ लेता है। इससे वह अपने

अतीत जीवनका ज्ञान प्राप्त कर लेता है। वह इन गुप्त संस्कारोंपर यौगिक संयम (धारणा, ध्यान और समाधिका अभ्यास करता है।

१७—आत्म-निरीक्षण

आत्म-निरीक्षण; आत्मावलम्बन, आत्म-निश्चय इस त्रिपुटीको याद रखो। आपके आध्यात्मिक साधनमें यह आपको अतीव लाभकारी होगी। अन्तर्निरीक्षणके द्वारा आत्म-विश्लेषण करो। अपनी वृत्तियोंके लक्षण खोज लो। मालूम करो कि किसी समयमें कौनसा गुण—सत्व, रजस् या तमस्—प्रधान हैं। आपका मन लक्ष्य पर (ईश्वर, ब्रह्म, कोई विचार, पदार्थ बाह्य या अभ्यन्तर) निरन्तर स्थिर रह सकता है? सारे पदार्थोंको छोड़कर केवल गुलाब पर ही आपका मन कितने काल तक स्थिर रह सकता है। दो सेकण्ड, दो मिनट, पाच मिनट या आधा घण्टा। यह आत्म-निरीक्षण कहलाता है। अपने ऊपर निर्भर रहो। आप अपने ही तारक या उद्धार करने वाले हो। कोई आपको मोक्ष नहीं दे सकता। एक-एक पग करके आध्यात्मिक पथपर आपको स्वयं ही चलना होगा। पुस्तकें और गुरु तो आपको मार्ग बता कर ही चला सकते हैं। यह आत्मावलम्बन है। दृढ़

निश्चय करो कि मैं ईश्वरको प्राप्त करूंगा। मैं अनिश्चित भविष्यमें नहीं बल्कि इसी क्षण आत्म-साक्षात्कार या ब्रह्मानुभव प्राप्त कर लूंगा। यह आत्म-निश्चय कहलाता है।

१८—मनकी किरणोंको समेट लो

जिस प्रकार आपका कपड़ा किसी कांटेदार झाडीपर गिर जावे तो आप धीरे-धीरे एक-एक कांटा निकाल कर कपड़ेको उठाते हो इसी प्रकार सतर्कता और अध्यवसायसे अनेकों वर्षों से विषयों पर गिरी हुई मनकी किरणोंको भी समेटना होगा।

यदि आपकी पीठपर तीव्र पीड़ा युक्त सूजन होवे तो रात्रिको सो जानेके बाद आपको दुःखका अनुभव नहीं होता। केवल उसी समय जब कि मन नाड़ियों और चिन्तन द्वारा पीड़ित अङ्गके साथ सम्बद्ध होता है तब आपको दुःखका अनुभव प्रारम्भ होता है। यदि आप सचेत होकर इच्छापूर्वक मनको ईश्वर या किसी अन्य आकर्षक पदार्थ पर लगा कर पीड़ित अङ्गसे हटा सको तो जाग्रत अवस्थामें भी आपको दुःखका अनुभव नहीं होगा। यदि आपकी दृढ़ इच्छा-शक्ति या बलवती तितिक्षा होगी तो भी आपको दुःखका अनुभव नहीं

होगा। किसी दुःख या रोगका निरन्तर चिन्तन करते रहनेसे आप केवल अपने ही दुःखको बढ़ाते हो।

१९—अन्तर्मुख वृत्ति

जब बहिर्मुख करनेवाली मनकी सारी शक्तियोंको नष्ट कर चुके होंगे तभी आपको अन्तर्मुख वृत्ति प्राप्त होगी। सत्वगुणमें वृद्धि होनेसे मनमें जो अन्दरकी ओर खींचनेकी शक्ति होती है उसे अन्तर्मुख वृत्ति कहते हैं।

यौगिक क्रिया प्रत्याहारके द्वारा मनको अन्तर्मुख करनेकी कला आपको अवश्य सीखनी चाहिये। जिन्हें इस अभ्यासका ज्ञान हैं वह वास्तवमें शान्त हो सकते हैं। वे ही सुखी रह सकते हैं। अब मन कुछ भी हानि नहीं कर सकता। वह बाहर नही जा सकता। उसे हृदय गुहाके अन्दर ही रखा जा सकता है। आपको चाहिये कि वैराग्य और त्यागके द्वारा मनको भूखा मार दें।

जब मनकी बहिर्गामिनी वृत्तियोंका निरोध हो जाता है और मनको हृदय गुहामें ही रोक लिया जाता हैं, जब इसका अवधान इसीपर लगा दिया जाता है वह दशा अन्तर्मुख वृत्ति कहलाती है। जब साधकको यह अन्तर्मुख वृत्ति प्राप्त हो जावे तो साधक बहुत कुछ साधन कर

सकता है। इस मानसिक अवस्थाको प्राप्त करनेमें वैराग्य और अन्तर्निरीक्षण बड़ी सहायता करते हैं।

२०—बहिर्मुख वृत्ति

रजोगुणके कारण मनकी बाहर जानेवाली क्रियाको बहिर्मुख वृत्ति कहते हैं और अभ्यास (स्वभाव) के जोर-से शब्दकी ओर कान और आंख दोनों दौडते हैं। पदार्थ (विषय) और इच्छायें मनको बहिर्मुख करते हैं। वासनाओंसे भरा हुआ रजोगुणी मनुष्य अन्तर्मुख वृत्ति सहित आन्तरिक आध्यात्मिक जीवनकी स्वप्नमें भी आशा नहीं कर सकता। वह अन्तर्निरीक्षणके सर्वथा अयोग्य है।

जब दृष्टि बाहरकी ओर डाली जावे तो मन भागती हुई घटनाओंके वेगमें संलग्न हो जाता है। तब मनकी बहिर्गामिनी शक्तियां अपना कार्य करने लगती हैं। जब संसारकी असारताका विचार आपके अन्दर दृढ़तासे जम जावेगा तो नाम और रूप द्वारा जनित विक्षेप और संकल्पकी स्फुरणा भी धीरे-धीरे लुप्त-प्राय हो जावेगी। निरन्तर कहते रहो "ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः" अर्थात् केवल ब्रह्म ही सत्य है। संसार असत्य है और जीव ब्रह्मसे अभिन्न है।" इसके कहते रहनेसे आपको अद्भुत शक्ति और मनकी शान्ति मिलेगी।

२१—धारणा

एक वैज्ञानिक मनोनिवेशके कारण बहुत-सी वस्तुओंको पैदा कर लेता है। धारणाके द्वारा वह स्थूल मनके परत खोलकर इसके उन्नत प्रदेशोंमें प्रवेश कर जाता है और गम्भीरतर ज्ञान प्राप्त करता है। वह मनकी सारी शक्तियोंको एक ही केन्द्रमें एकत्रित करता है और जिन पदार्थोंपर रासायनिक क्रिया कर रहा है उसी पर लगा देता है और इस प्रकार उनके रहस्यको जान लेता है।

जिसने मनको अपनी इच्छानुसार चलाना सीख लिया है वह सारी प्रकृतिको अपने वशमें रख सकता है।

जब छः वर्ष पीछे आप अपने प्रिय मित्रसे मिलते हो तो जो आनन्द आपको प्राप्त होता है वह व्यक्ति विशेषसे नही आता अपितु आपके ही अन्दरसे आता है। कुछ समयके लिये मन एकाग्र हो जाता है और अपने ही अन्दरसे आपको आनन्द मिलता है।

जब मनकी रश्मियां विभिन्न पदार्थोंपर बिखरी रहती हैं तो आपको दुःख होता हैं जब अभ्यास द्वारा यह इकट्ठी रहती हैं तो मन एकाग्र हो जाता है और आपको अन्दर से सुख मिलता है।

जैसे-जैसे मनकी उन्नति होती जाती है, आप मानसिक प्रवाहों, निकट तथा दूरके जीवित अथवा मृतक अन्य पुरुषोंके मनसे आपका सचेत सम्पर्क होता है। जब श्रद्धा होती है तो समझने योग्य विषयपर मन सुगमतासे एकाग्र किया जा सकता है और फिर जल्दी समझ भी आ जाती है।

यदि आपको हृदय, त्रिकूट या मूर्धामें धारणा करनेमें कठिनाई प्रतीत हो तो आप किसी बाह्य वस्तुपर मनको लगा सकते हो। आप नीलाकाश, सूर्यकी ज्योति, वायु, आकाश, सूर्य. चन्द्रमा, तारागणोंपर धारण कर सकते हो। यदि सिरमें दर्द मालूम होवे तो शरीरसे बाहर धारणाका लक्ष्य बदल दो। यदि त्रिकुटीपर धारणा करनेसे दृष्टि जमानेसे दर्द होने लगे तो इसे तुरन्त छोड़कर हृदयमें धारणा करने लगो।

मन शब्दों और उनके अर्थोंका चिन्तन करता है। कभी-कभी वह पदार्थोंका भी चिन्तन करता है। जब आप धारणाका अभ्यास करो तो मनको इस प्रकारके चिन्तनसे रोको।

एक राजयोगी त्रिकुटीपर धारणा करता है क्योंकि यह जाग्रत अवस्थामें मनका स्थान है। इस स्थानपर

धारणा करनेसे आप सुगमतासे मनको एकाग्र कर सकते हो। कुछ लोग त्रिकुटीपर धारणा करके एक ही दिनके अभ्याससे ज्योति देखने लगते हैं। जो विराटका ध्यान करना चाहता है और संसारकी सहायता करना चाहता है उसे त्रिकुटीपर धारणा करनी चाहिये। भक्तको हृदय पर धारणा करनी चाहिये क्योंकि वह भावका स्थान है। हृदयपर धारणा करनेसे बडा आनन्द मिलता है। जिसे आनन्द प्राप्तिकी इच्छा होवे उसे हृदयपर धारणा करनी चाहिये।

किसी बाह्य पदार्थ, आन्तरिक चक्र या किसी विचार विशेषपर मनको एकाग्र करनेको धारणा कहते हैं।

सत्वगुणको ढकनेवाले रजस् और तमस्के आवरणको प्राणायाम दूर करता है, नाड़ियोंको शुद्ध करता है मनको दृढ़ और स्थिर करके धारणाके योग्य बना देता है। जैसे सुवर्णकी मैल उसे पिघलानेसे निकल जाती है इसी प्रकार प्राणायाम द्वारा मनकी मैल दूर हो जाता है।

चेतनाको केन्द्रित करना अवधान कहलाता है। धारणामें अवधान बडा काम करती है। यह सुसंस्कृत इच्छा शक्तिका एक चिन्ह है। यह दृढ मनके मनुष्योंमें पाई जाती है और बडी अमूल्य शक्ति है। ब्रह्मचर्य इस

शक्तिको अद्भुत रूपसे बढ़ाता है। जिस योगीमें यह शक्ति होती है वह अप्रिय पदार्थपर भी दीर्घकाल तक धारणा कर सकता है। जिस पदार्थको मन चाहता है उसपर धारणा करना तो सुगम है। निरन्तर अभ्यास द्वारा अवधानकी वृद्धि की जा सकती है। संसारके सारे बड़े मनुष्य जिन्होंने महत्व प्राप्त किया है वह इसी शक्तिके कारण उन्नत बन सके हैं।

किसी क्षणमें आप जो कुछ भी काम कर रहे हो उसीमें अपना सारा अवधान लगा दो। अप्रिय होनेके कारण जिन कार्यों से आप पहलेसे बचते रहे हो उनपर अवधानका अभ्यास करो। अरुचिकर पदार्थों और विचारोंमें रुचि पैदा करो। उनको मनके सम्मुख रखो। धीरे-धीरे रुचि पैदा होगी। अनेक मानसिक दुर्बलतायें दूर हो जावेंगी। मन और भी बलवान हो जावेगा।

जितने जोरसे कोई वस्तु मनसे टकराती है वह उस पदार्थपर दिये हुए अवधानके अनुकूल ही होता है। स्मृतिकी कला भी अवधानमे सन्निहित है और अनवधानी मनुष्योंकी स्मरण-शक्ति क्षीण होती है।

मनुष्यका मन एक समयमें एक ही पदार्थको ग्रहण कर सकता है यद्यपि यह एक पदार्थसे दूसरे पदार्थपर

इतने अद्भुत वेगसे जा सकता है कि कुछ वैज्ञानिकोंने निश्चय किया है कि यह एक समयमें अनेक वस्तुओंको ग्रहण कर सकता है परन्तु पूर्वीय तथा पाश्चात्य सर्वोत्तम वैज्ञानिकोंका मत यही है कि एक समयमें एक ही पदार्थ ग्रहण करता है और यह मनुष्यके नित्यके अनुभवके अनुकूल भी है।

कुछ डाक्टरीके विद्यार्थी चिकित्सा कालेजमें दाखिल होनेके तुरन्त ही पीछे उसे छोड देते हैं, क्योंकि उन्हें फोडोंमे से पीव धोना और मृतक शरीरोंको चीरना घृणित प्रतीत होता है। यह उनकी भारी भूल है। प्रारम्भमें घृणा होती है। परन्तु रोग निदान, चिकित्सा, चीरा-फाड़ी, बीमार-शरीर-विज्ञान, कीटाणु विज्ञानका अध्ययन करनेके उपरान्त अन्तिम वर्षमें पाठ्य विषय बडा रुचिकर हो जाता है। बहुतसे आध्यात्मिक साधक धारणाका अभ्यास छोड देते हैं क्योंकि उनको कठिन जान पडता है। चिकित्सा शास्त्रके विद्यार्थियोंके समान ये भी भारी भूल करते हैं। अभ्यासके प्रारम्भमें जब आप देहाध्याससे ऊपर जानेकी चेष्टा करते हो तब यह अभ्यास अरुचिकर और क्लेशदायक जान पड़ता है। यह शारीरिक कुश्तीके समान होता है। भावनायें और

संकल्प बहुत होते हैं। अभ्यासके तीसरे वर्षमें मन शान्त हो जावेगा और शुद्ध तथा दृढ़ होगा। आपको अतीव आनन्द मिलेगा। ध्यानके अभ्यास द्वारा प्राप्त हुए आनन्दके सामने सारे संसारके आनन्दका समूह भी तुच्छ है। किसी अवस्थामें भी अभ्यास मत छोड़ो। प्रयत्न करते रहो और धैर्य रखो, उत्साह और साहससे काम लो। अन्तमें आप सफल-प्रयत्न हो जाओगे। कभी निराश मत होओ; गम्भीर अन्तर्निरीक्षण द्वारा उन बाधाओंको खोज निकालो जिनसे धारणामें विघ्न होता है और धैर्य सहित प्रयत्न करके उनको एक-एक करके दूर कर दो। नये संकल्पों और वासनाओंको मत उठने दो। विवेक, विचार और ध्यानके द्वारा उनको उठते ही कुचल डालो।

छान्दोग्य उपनिषत्के भाष्यमें श्री शङ्करने लिखा है कि मनुष्यका धर्म यही है कि वह इन्द्रियोंका निग्रह करके मनको एकाग्र करे।

एक कारीगर तीर बनाया करता था। एक समय वह अपने काममें बड़ा लीन था। उसकी दुकानके सामनेसे राजाकी सवारी बड़ी भीड़-भाड़के साथ निकल गई परन्तु वह काममें इतना व्यस्त था कि उसने देखा

तक नहीं। जब आप अपना मन परमात्मामें लगाओ तो आपकी धारणा भी इसी प्रकारकी होनी चाहिये। आपको केवल ईश्वरका ही एक विचार होना चाहिये। एकाग्र मनसे धारणा प्राप्त करनेके लिये आपको बड़ा भारी प्रयत्न करना पड़ेगा। दत्तात्रेयने उस तीर बनाने वालेको अपना एक गुरु माना था।

यदि ध्यानके अभ्यास कालमें मन बाहरकी ओर भागे तो चिन्ता मत करो। इसे भागने दो। धीरे-धीरे इसे अपने लक्ष्यपर ले आनेकी चेष्टा करो। बार-बारके अभ्याससे मन हृदयकी ओर एकाग्र हो जावेगा और आत्मामें लीन हो जावेगा। प्रारम्भमें मन ८० बार बाहरको भाग सकता है, छः महीनेमें ७० बार, एक वर्षमें ५० बार, दो वर्षमें ३० बार, परन्तु ५ वर्षमें वह बिल्कुल दृढ़तासे परमात्मामें लग जावेगा। फिर आपके चेष्टा करने पर भी यह बाहर नहीं भागेगा जिस तरहसे इधर - उधर फिरता हुआ सांड जो पहले आस-पासके जमींदारोंके बग़ीचोंमें घास खानेके लिये भागा-भागा फिरता था और वही अब अपने स्थान पर ही ताजे चने और बिनौले आरामसे खाता है।

२२—ध्यान

लोहेकी एक छड़ जलती हुई भट्टीमें रखो। यह आगके समान लाल हो जावेगी। हटा लोगे तो इसका लाल रंग जाता रहेगा। यदि आप इसे सदा लाल रखना चाहते हो तो इसे हमेशा अग्निमें रखे रहो। इसी प्रकार यदि आप मनको ब्रह्मज्ञानसे परिपूर्ण रखना चाहते हो तो निरन्तर और तीव्र ध्यानके द्वारा इसे ब्रह्मज्ञानकी अग्निमें रखना होगा। ब्रह्म चेतनाका अविरल प्रवाह सदा बहता रहने दो। तब आपको सहजावस्था प्राप्त होवेगी।

ध्यान एक बलकारक औषधि है। यह मानसिक और स्नायविक औषधि भी हैं। इसके पवित्र स्पन्द सारे शरीरमें व्याप्त होकर शरीरके रोगोंको दूर करते हैं। जो ध्यानका अभ्यास करते हैं वे डाक्टरका व्यय बचाते हैं। जो शक्तिशाली शान्तिदायक तरंगें ध्यान कालमें उठती हैं वे मन, नाड़ियों ,इन्द्रियों और शरीर पर लाभ-कारी फल डालती हैं। दिव्य शक्ति भगवानके चरणोंसे मुक्त स्रोत होकर साधकोंके शरीरमे तैलधारवत् बहती है। यदि आप आधे घन्टे तक ध्यान कर सको तो इसके बलसे एक सप्ताह तक शान्ति और आत्म-बल से आप

जीवन संग्राममें लग सकोगे। ध्यानका ऐसा लाभकारी फल है। क्योंकि अपने नित्यके जीवनमें आपको विभिन्न स्वभावके मनोंसे काम पड़ता है इसलिये ध्यानके अभ्याससे बल और शान्ति प्राप्त करो फिर आपको कोई चिन्ता और दुःख नहीं होगा

गीतामें आपको "अनन्यचेताः, मच्चित्ताः, नित्ययुक्तः, मन्मनाः, एकाग्रमनः सर्वभावः" इन शब्दोंका प्रयोग बारम्बार मिलता है। इनका अर्थ यह है कि आपको अपना पूर्ण शत प्रतिशत भगवानको देना होगा तभी आत्म-दर्शन प्राप्त होगा। यदि एक भी किरण बाहरको भागेगी तो दिव्य चेतना (ईश्वरीय ज्ञान) प्राप्त करना सम्भव नहीं है।

मौन हो जाओ। अपने आपको जान लो। उसको जान लो। मनको उसीमें घुला दो। सत्य बहुत पवित्र और सीधा है।

आसन शरीरको स्थिर करता है। बन्ध और मुद्राये देहको दृढ़ करते हैं। प्राणायाम शरीरको हल्का करता है। नाड़ी शुद्धिसे मनकी साम्यावस्था होती है। इन गुणोंको प्राप्त करके आपको मन ब्रह्ममें लगाना होगा। तभी ध्यान स्थिरता तथा आनन्दसे हो सकेगा।

गङ्गाजी या नर्मदाका तट, हिमालयका दृश्य, सुन्दर पुष्प वाटिका, पवित्र देवस्थान—ये स्थल धारणा और ध्यानमें मनको उन्नत करते हैं। इन स्थानोंमें जाओ।

एकान्त स्थान, आध्यात्मिक स्पन्दोंके स्थल जैसे उत्तर काशी, ऋषिकेश, वदरीनारायण, शीतल जगह और मध्यम जल वायु—ये अवस्थायें मनकी एकाग्रताके लिये अनिवार्य रूपसे आवश्यक हैं।

जैसे नमक पानीमें घुल जाता है वैसे ही सात्विक मन अपने अधिष्ठान रूप ब्रह्ममें ध्यान कालमें घुल जाता है।

जब आप ध्यानका अभ्यास नया-नया प्रारम्भ करो तो आसन पर बैठते ही कुछ उन्नत बनाने वाले श्लोक या स्तोत्र दस मिनट तक पढ़ो। इससे मन उन्नत हो जावेगा। मनको संसारी पदार्थोंसे सुगमतासे हटाया जा सकता है। फिर इस प्रकारका विचार भी बन्द कर दो, फिर बारम्बार दृढ़ प्रयत्न द्वारा मनको एक ही विचार पर लगा दो। तब निष्ठा बन जावेगी।

ध्यान प्रारम्भ करनेके पूर्व ईश्वर या ब्रह्मका मानसिक रूप (साकार या निराकार) अवश्य बना लो।

जब आप आँख खोलकर भगवान् कृष्णकी मूर्ति देखते हो और ध्यान करते हो तो यह साकार ध्यान

कहलाता है। जब आंख मीचकर भगवान कृष्णकी मूर्तिका ध्यान करते हो तो भी यह साकार ध्यान ही है परन्तु पहलेसे अधिक निर्गुण है। जब आप अनन्त प्रकाशका ध्यान करते हो तो यह और भी निर्गुण ध्यान है। पहले दो प्रकारके ध्यान सगुण ध्यान कहलाते हैं और पिछले प्रकारका निर्गुण ध्यान है। निर्गुण ध्यानमें भी आरम्भमें मनको स्थिर करनेके लिये एक रूप अवश्य होता है। कुछ समय पीछे यह आकार हट जाता है और ध्याता तथा ध्येय एक हो जाते हैं। ध्यान मनसे चलता रहता है।

अपने स्वभावका निरीक्षण करो। इसमें कोई त्रुटि पकड़ लो और इसका विरोधी गुण मालूम करो। मान लो कि आपके स्वभावमें चिड़चिड़ापन है। इसका विरोधी गुण धृति है। धृतिपर ध्यान करके इस गुणको वृद्धि करनेकी चेष्टा करो। प्रतिदिन प्रातःकाल ठीक ४ बजे किसी एकान्त कमरेमें सिद्धासन या पद्मासनसे आधे घन्टे बैठ जाओ और धैर्यपर विचार करने लगो। इसका मूल्य, उद्वेग होनेपर इसका अभ्यास आदि एक-एक बात प्रतिदिन लेकर दृढ़तासे विचार करो और जब मन इधर-उधर भटकने लगे तभी इसे वापिस लौटा लो।

अपनेको अत्यन्त पूर्ण धैर्यवान् समझो, धृतिका आदर्श मानो और प्रतिज्ञा करो कि आजसे मैं इसी धैर्यका अनुभव करूंगा और यही धैर्य प्रकट करूंगा। यह धैर्य मेरा सच्चा स्वरूप है।

शायद कुछ दिनों तक कुछ भी अन्तर नहीं प्रतीत होगा। फिर भी आप चिड़चिड़ापन अनुभव करोगे और प्रकट करोगे। नित्य प्रातःकाल दृढ़तासे अभ्यास करते चले जाओ। ज्योंही आप कोई चिड़ावनी बात कहोगे आपके मनमें एकदम विचार आवेगा "मुझे धैर्य रखना चाहिये था।" फिर भी अभ्यास करते चले जाओ। शीघ्र ही चिड़चिड़ेपनकी वृत्तिके साथ २ धैर्य भी प्रकट होगा और चिड़चिड़ेपनका वाहरी प्राकट्य रुक जावेगा। अभ्यासमें लगे रहो, चिड़चिड़ापन दुर्बल होता चला जावेगा और एक दिन आप देखोगे कि चिड़चिड़ापन बिल्कुल जाता रहेगा और धैर्य आपका साधारण स्वभाव बन जावेगा। इसी प्रकार सहानुभूति, आत्म-संयम, पवित्रता, नम्रता, दया, सौजन्य और उदारता आदि अनेक गुणोंको बढ़ा सकते हो।

मनकी क्रियायें ही वास्तविक कर्म हैं। मनको बन्धन मुक्त कर देनेसे ही सच्ची मुक्ति मिलती है। जिन्होंने अप-

नेको मनके विक्षेपसे मुक्त कर लिया है, वे परम निष्ठा प्राप्त कर लेते हैं। यदि मनके सारे मल दूर हो जावें तो यह शान्त हो जावेगा और संसारका सारा मोह (जन्म मरण सहित) शीघ्र ही नाश हो जावेगा।

मनकी पवित्रताके उपरान्त ईश्वर पर एकाग्र कर देनेसे आपको सच्चा आनन्द और ज्ञान मिलेगा। आपका जन्म हो इसलिये हुआ है। राग और मोहके द्वारा आप बाहरी पदार्थोंपर पहुच जाते हो।

यदि आप किसी कुत्तेके सामने एक बड़ा आईना और एक रोटी रख दो तो कुत्ता आईनेमें अपना ही प्रतिबिम्ब देखकर भौंकता है। मूर्खतावश यह समझता है कि दूसरा कुत्ता भौंकता है। इसी प्रकार मनुष्य अपने ही मन मुकुरमें सारे मनुष्योंमें अपना ही प्रतिबिम्ब देखता है परन्तु कुत्तेके समान मूर्खतासे समझता है कि वे सब उससे जुदा हैं और घृणा तथा द्वेषसे उनसे झगड़ा करता है।

जब आप आग जलाते हो तो पहले घास फूस, कागज, लकड़ीके पतले टुकड़ोंका ढेर करते हो। आग जल्दी बुझ जाती है। फिर आप इसको बार-बार मुखसे या फुंकनीसे फूंक मार कर सुलगाते हो। थोड़े समयमें यह छोटीसी अग्नि जल जाती है।। अब आप इसे प्रयत्न

करके भी कठिनाईसे बुझा सकते हो। इसी प्रकार प्रारम्भमें नवीन साधक ध्यानसे अपने पुराने ही रास्तोंमें गिर जाते हैं। उनको अपना मन बार बार उन्नत करके लक्ष्य पर लगाना होगा। जब ध्यान गम्भीर और स्थिर हो जाता है ये ईश्वरमें स्थिति प्राप्त कर लेते है। तब ध्यान सहज हो जाता है और स्वाभाविक बन जाता है। तीव्र वैराग्यकी फुंकनीसे काम लो और ध्यानकी अग्निको सुलगाओ।

आत्म-साक्षात्कार के लिये एकान्त-वास और तीव्र ध्यान ये दोनों परम आवश्यक हैं।

ध्यान कालमें जब आपका मन सात्विक होता है आपको प्रेरणा मिलती है। मन सुन्दर कवितायें रचेगा और जीवनकी समस्याओंको सुलझाता होगा। इन सात्विक वृत्तियोंको भी निकाल दो। यह सब मानसिक शक्तिको क्षीण करते हैं। इससे ऊंचे ऊंचे आत्माकी ओर जाओ।

नकारात्मक विचारोंको भगा दो। सदा आस्थापूर्ण बने रहो। आस्था सदा अनास्थापर विजय पाती है। जब आप आस्थापूर्ण होते हो तो ध्यान बड़े सुचारु रूपसे चलता है।

यदि मन बराबर विषय भोगोंमें लगा रहता है तो संसारकी सत्यताका भाव निश्चय ही बढ़ता है। यदि मन निरन्तर आत्म-चिन्तन करता है तो संसार स्वप्नवत् प्रतीत होता है।

अपनेको मनके नीच विचारोंसे छुड़ाओ और अनेक निरर्थक संकल्पोंसे मुक्त कर लो। निरन्तर अथक आत्म विचार करो। 'निरन्तर' शब्दको देखो यह आवश्यक है। तभी आत्म ज्ञानका उदय होगा। चिदाकाशमें ज्ञान-सूर्य का प्रकाश होगा।

जैसे आप गदले पानीको पावक पदार्थ डालकर निर्मल कर लेते हो इसी प्रकार वासनाओं और मिथ्या संकल्पोंसे पूर्ण इस गदले मनको भी ब्रह्म-चिन्तन के द्वारा पवित्र करना होगा। तभी सच्चा प्रकाश प्राप्त होगा।

जब आप ध्यानका अभ्यास प्रारम्भ करो तो तुरन्त ही इसके फलकी आशा करनेमें जल्दी मत करो। एक युवतीने सन्तान प्राप्त करनेकी इच्छासे पीपलके वृक्षकी १०८ परिक्रमा की और तुरन्त ही यह देखनेके लिये कि पेटमें बच्चा आया या नहीं वह अपने पेटपर हाथ फेरने लगी। यह निरी मूर्खता है। उसे कई महीने तक ठहरना होगा। इसी प्रकार आपको कुछ समय तक बराबर

ध्यान करना होगा। तभी मन परिपक्व होगा। अन्तमें आत्म-साक्षात्कार प्राप्त होगा। शीघ्रता विनाशका कारण होती

जैसे आप पानीमें नमक या चीनी घोलते हो इसी प्रकार आपके मनमें ईश्वर या ब्रह्मके विचार, दिव्य महिमा दिव्य स्थिति, उन्नत, आत्माको जाग्रत करनेवाले विचारोंको घोलना होगा। तभी आप दिव्य ज्ञानमें स्थित हो जाओगे।

जब आप शान्त ध्यानमें गहरे उतर जाओगे तभी आपको दिव्य महिमाका पूर्ण आनन्द मिलेगा। जब तक आप ईश्वरकी दिव्यताके सीमा क्षेत्र, बाह्य प्रदेश और ड्यौढ़ी तक रहते हो तब तक आपको सर्वाधिक शान्ति और आनन्द नहीं मिलेगा।

मनमें ब्रह्मके विचार घोलनेसे पहले आपको दिव्य विचारोंको अपनाना होगा। पहले उनको अपनाओ फिर उनको मनमें भर लो। तब बिना एक क्षणकी देर किये हुए साक्षात्कार प्राप्त होता है—अपनाना, भरना और साक्षात्कार करना' इस त्रिपुटीको सदा याद रखो।

साधकोंको हमेशा यह शिकायत हुआ करती है 'मैं पिछले १२ वर्षोंसे ध्यानका अभ्यास कर रहा हूं। मैं कुछ उन्नति नहीं कर पाया। मुझे साक्षात्कार नही हुआ।'

ले जाओ। इसी प्रकार १५ मिनट तक मनको घुमाते रहो।

कल्पना करो कि सुन्दर फूलोंका एक अच्छा बगीचा है। एक ओरको चमेलीके फूल लगे हैं। दूसरी ओर सुन्दर बड़े-बडे गुलाब लगे हैं। तीसरे कोनेमें जूहीके पेड लगे हैं। चौथे कोनेमें चम्पक फूल लगे हैं। अब इन चारों प्रकारके फूलोंपर ध्यान करो। पहले चमेली, फिर गुलाब, फिर जूही और फिर चम्पकपर मनको ले जाओ। बार-बार मनको इसी प्रकार घुमाते रहो। १५ मिनट तक ऐसा करो। इस प्रकारका स्थूल ध्यान मनको सूक्ष्म विचारोंपर स्थिरतासे ध्यान करने योग्य बना देगा।

ॐ का चित्र अपने सामने रखो और इसपर मनको एकाग्र करो। नेत्र खोलकर त्राटक भी करो (बिना पलक झपके तब तक देखते रहो जब तक कि आंसू ज़ोरसे न बहने लगे)। यह सगुण और निर्गुण दोनों प्रकारका ध्यान है। अपने ध्यानके कमरेमें ॐ का चित्र रखो। ब्रह्म-के इस प्रतीककी आप पूजा भी कर सकते हो। धूप सुगन्धि जलाओ। फूल चढ़ाओ। आजकलके शिक्षित जनोंको यह पसन्द है।

संसार नहीं है। शरीर और मन भी नहीं है। केवल एक ही चैतन्य है और वह चैतन्य मैं हूं। यह निर्गुण ध्यान कहलाता है।

अत्यन्त सधा हुआ मन जिसने शरीरका पूर्ण निग्रह कर लिया है वही जीवन-पर्यन्त ध्यान और विचार कर सकता है और एक क्षणके लिये भी अपने लक्ष्यको नहीं भुलाता और इसे भौतिक प्रलोभनोंसे प्रच्छन्न नहीं होने देता।

श्वास लेनेमें वायु १६ मात्रा बाहर आती है। जब मन एकाग्र हो जावेगा तो यह १५-१४-१३-१२-१०-८ इसी प्रकार कम होती जावेगी। जब आप गम्भीर शान्त ध्यानमें प्रवेश कर जाओगे तो नाकके नथुनोंमेंसे श्वास नहीं आवेगा। कभी-कभी पेडू और फेफड़ोंकी मन्द गति होगी। किसी साधकके श्वाससे ही आप उसके ध्यानकी गम्भीरताका अनुमान कर सकते हो। श्वासको बड़े ध्यानसे देखो।

ध्यानकी अग्नि पापोंकी सारी गन्दगी नष्ट कर देती है। तब एकदम दिव्य ज्ञान आता है जो सीधा मुक्तिकी ओर ले जाता है।

निदिध्यासनमें आपको स्वजातीय वृत्ति-प्रवाहको बढ़ाना होगा, ब्रह्मके विचारोंको बड़े भारी जल प्रवाहके

समान बहने दो। विजातीय वृत्तियोंका तिरस्कार कर दो। विषय पदार्थोंके विचार छोड़ दो। विवेक और विचारकी चाबुकसे उन्हें भगा दो। प्रारम्भमें तो कठिन परिश्रम होता है। यह बड़ा ही मुश्किल होता है। परन्तु बादमें आप जैसे-जैसे शक्तिवान् और पवित्र होते जाओगे और ब्रह्म चिन्तन में आगे बढ़ते जाओगे साधना सुगम होती जावेगी। एकत्वके जीवनमें आपको आनन्द मिलेगा। आत्मासे आपको बल मिलेगा। जब सारी विषय वृत्तिया दुर्बल कर दी जाती हैं और मन एकाग्र हो जाता है तब आन्तरिक शक्ति बढ़ती है।

देखो कि ध्यानमें कितनी देर तक आप सारे संसारी विचारोंको रोक सकते हो। मनको बड़ी सतर्कतासे देखो। यदि बीस मिनट तक रोक सकते हो तो इस समयको तीस या चालीस मिनट तक बढ़ानेकी चेष्टा करो। बारम्बार मनमें ईश्वरीय विचार भरो।

आपको बड़े गौरसे देखना होगा कि क्या आप कई वर्षों के अभ्यासके बाद भी आध्यात्मिक मार्गमें एक ही जगह स्थिर हो या कि आप उन्नति कर रहे हो। कभी-कभी यदि आप सचेत नही रहते, वैराग्य हलका पड़ जाता है या ध्यानमें कमी हो-जाती है तो आप नीचेको ओर

भी गिरने लगते हों। प्रतिक्रिया आरम्भ हो जाती है। कोई-कोई पन्द्रह वर्ष तक ध्यानका अभ्यास करते हैं और फिर भी उन्नति नहीं कर पाते। क्यों? यह उनके उत्साह, वैराग्य, मुमुक्षत्व और निरन्तर तीव्र साधनकी कमीके कारण है।

जब आप आध्यात्मिक साधनमें आगे बढ़ जाओगे तो आपके लिये ध्यान और दफ्तरका काम एक साथ करना बहुत कठिन हो जावेगा क्योंकि मनपर दुगुना दबाव पड़ेगा। ध्यान कालमें किन्ही और संस्कारोंके साथ यह किसी दूसरे ही मार्गमें काम करता है और फिर भिन्न-भिन्न प्रकारकी प्रतिकूल क्रियाओंके लिये उद्यत होनेमे इसे बड़ी कठिनाई प्रतीत होती है। जैसे ही यह ध्यानसे नीचे उतरता है तो अन्धेरेमे टटोलने लगता है। यह घबरा जाता है। जब सायंकाल आप फिर ध्यानके लिये बैठते हो तो दिनमें इकट्ठे किये हुए संस्कारोंको मिटानेके लिये आपको बड़ा कठिन परिश्रम करना पड़ता है तब कहीं मन शान्त होकर एकाग्र होता है। इस परिश्रमसे कभी-कभी सिरमें दर्द हो जाता है। ध्यान अवस्थामें प्राण अत्यन्त सूक्ष्म होकर अन्दरकी ओर निश्चित मार्गमें चलता है, उसको ही संसारी

क्रियाओंके कालमें स्थूल बनकर अन्य मार्गमें जाना पड़ता है।

इसलिये गृहस्थी योग साधकोंको उचित है कि जब वह ध्यानमें उन्नति प्राप्त कर लें तो और भी आगे बढ़ने के लिये सारे संसारी कार्योंको बन्द कर दें। यदि उनकी सच्ची लगन है तो वे स्वयं ही बन्द करनेके लिये मजबूर हो जावेंगे। उन्नत साधकोंके लिये कार्य ध्यानमें बाधक होता है। इसी कारण भगवान श्री कृष्णने गीतामें बताया है कि योग प्राप्तिकी इच्छावाले मुनिके लिये कर्म उसका साधन होता है और जब वही मुनि योगमें आरूढ़ हो जाता है तो शम या शान्ति उसका साधन बन जाती है। उस अवस्थामें ध्यान और कर्मका मेल नहीं हो सकता जैसे तेजाब और खार अग्नि और जल, प्रकाश और अन्धकार।

जो साधक विधिवत् ध्यानका अभ्यास करते हैं उन्हें निम्न लिखित लाभ प्राप्त होते हैं। शान्ति, सन्तोष, अभय, आध्यात्मिक आनन्द-विशेष, संसारी कठिनाइयोंमें मनको उद्वेग न होना, निश्चिल स्थिति, प्रेरणा, दर्शन, सात्विक गुण, क्रोधका अभाव, अहकार और रागद्वेषका अभाव।

वेदान्त या ज्ञान मार्गमें 'मनन' और निदिध्यासन' शब्दोंका बाहुल्यसे प्रयोग होता है। विजातीय वृत्तिका तिरस्कार करके स्वजातीय वृत्तिका प्रवाह ले आना मनन कहलाता है। तीव्र और गम्भीर ध्यानको निदि-ध्यासन कहते हैं। यह अनात्म वृत्ति विवादन-रहित आत्माकार वृत्ति स्थिति' होती हैं। मन ब्रह्ममें पूर्णतया स्थित हो जाता है। अब कोई भी संसारी विचार नही आवेंगे। ध्यान तैलधारावत् चलता रहेगा।

प्रारम्भमें मनको एकाग्र बनानेके लिये भिन्न-भिन्न उपायोंसे सधाओ। कान बन्द करके हृदयके अनाहत शब्दको सुनकर ध्यान करो। सोऽहंका उच्चारण करके श्वासपर ध्यान करो। किसी स्थूल मूर्तिपर ध्यान करो। नीलाकाशपर ध्यान करो। सर्व व्यापी सूर्यके प्रकाश पर ध्यान करो। शरीरके भिन्न-भिन्न चक्रोंपर ध्यान करो। सत्यं, ज्ञानम्, अनन्तम्, एकम्, नित्यं आदि भावोंपर ध्यान करो। अन्तमें एक ही वस्तुको दृढ़तासे पकड़ लो।

ध्यानके अभ्याससें आंखों और मस्तिष्क पर जोर मत डालो। मनके साथ खैंचातानी मत करो। ढीले छोड़ दो। दिव्य विचारोंको शनैः २ आने दो। स्थिरतासे लक्ष्यका

विचार करो। बीचमें घुसने वाले अन्य विचारोंको जान-बूझ कर जोरके साथ मत भगा दो। उन्नत सात्विक विचार रखो। खोटे विचार स्वयं ही भाग जावेंगे।

यदि ध्यानमें अधिक जोर पड़ता हो तो कुछ दिनोंके लिये घन्टोंकी संख्या कम कर दो। हल्का ध्यान करो। जब आपको साधारण शक्ति मिल जावे तो फिर ध्यान कालको बढ़ा दो। अपने साधन कालमें साधारण बुद्धिसे काम लो। मैं सदा इसी बातको दोहराता हू।

जब ध्यानमें मन स्थिर हो जाता है तो नेत्र भी स्थिर हो जाते हैं। जिस योगीका मन शान्त हो जाता है उसकी दृष्टि भी स्थिर होती है। वह पलक नहीं झप-कता। आखें चमकदार लाल या बिल्कुल सफेद होंगी।

जो लोग लगातार चार पांच घन्टे तक ध्यानका अभ्यास करते हैं उन्हें प्रारम्भमें दो आसन रखने चाहियें या तो पद्म और वज्र, या सिद्ध और वज्रासन। कभी २ टांगके एक भागमें खून इकठा हो जाता है और थोडा दुःख होता है। दो घन्टे बाद पद्मासन या सिद्धासनको वज्रासनसे बदल दो या टांगोंको सीधी फैला लो। दीवार या तकियेके सहारे झुक जाओ। परन्तु मेरुदड सीधा रखो। यह बडा सुखदायक आसन है। दो कुर्सियां मिला

लो। एक कुर्सीपर बैठ जाओ और दूसरी पर टांगे फैला लो। यह भी एक उपाय है।

आपको नित्य अपना वैराग्य, ध्यान और धृति. लगन, दया, प्रेम, क्षमा पवित्रता आदि सद्गुण बढ़ाने चाहियें। वैराग्य और सद्गुणोंसे ध्यानमें सहायता मिलती है। ध्यान सात्विक गुणोंकी वृद्धि करता है।

एक सर्व व्यापी भावना बनाये रखो। अन्तवान शरीरको आभासमात्र समझ कर इसका निराकरण कर दो। सदा भावनाको ही जारी रखो।

जो कोई भी वस्तु आपको उन्नत करे, मनको उन्नत करनेके लिये उसीको ग्रहण करो और फिर ध्यानको दीर्घकाल तक जारी रखो।

ध्यान कालमें आप स्थायी प्रकाशके संसर्गमें रहते हो। आपके सारे मल धुल जाते हैं। यह प्रकाश जिस आत्मासे सम्पर्क करता है उसे शुद्ध कर देता है। अग्निका शीशा सूर्यके प्रकाशमें रखा जाता है और उसके नीचेकी घास जलने लगती है। इसी प्रकार यदि आपने अपना खुला हृदय भक्ति-पूर्वक ईश्वरकी ओर उठा रखा है तो उसकी पवित्र और प्रेम-मय ज्योति इस आत्माको प्रकाशित करके दिव्य प्रेमकी अग्निमें आपके सारे दोषोंको

भस्म कर देगी। यह ज्योति अधिक शक्ति और सुख लाती है।

यह पावन क्रिया सत्यमें अधिक गम्भीर अन्तर्दृष्टि प्रदान करती है। ध्यान करने वाली आत्मा पर यह भगवत्कृपाका कार्य है। इस अन्तर्वाहिनी कृपामें एकदम यह मनकी ज्योति उठती है जिसमें ईश्वर अपनी दिव्य ज्योतिकी एक किरण भेजता है। यह ज्योति परम शक्तिशालिनी होती है।

आप ध्यान कालमें नेत्र क्यों बन्द करते हो? आँखें खोल कर ध्यान करो। शहरके शोरगुलमें भी आपको मनकी साम्यावस्था रखनी चाहिये। तभी आपमें पूर्णता आवेगी। प्रारम्भमें नवीन होनेके कारण दृढ़ता नहीं होती इसलिये मनके विक्षेपको दूर करनेके लिये नेत्र बन्द कर सकते हो। परन्तु थोड़े समय उपरान्त आपको चलते हुए भी नेत्र खोल कर ध्यान करना चाहिये। दृढ़ता पूर्वक विचार करो कि संसार असत्य है, ससार है ही नहीं और केवल आत्मा ही है। यदि आखें खुली रख कर भी आप आत्माका ध्यान कर सकते हो तो आप बलवान् पुरुष हो जाओगे। आपको आसानीसे कोई बाधा नहीं होगी।

सारे दृश्य पदार्थ माया हैं। आत्माके ध्यान या ज्ञानके द्वारा मायाका तिरोधान हो जायेगा। मायासे मुक्त होनेके लिये मनुष्यको परिश्रम करना चाहिये। मनके द्वारा माया बड़ा अनिष्ट करती है। मनका नाश करनेसे माया का नाश होता है, मायाको जीतनेके लिये केवल निदि-ध्यासन ही एक उपाय है। भगवान् बुद्ध, राजा भर्तृहरि, दत्तात्रेय, गुजरातके अरवौ इन सबने गम्भीर ध्यानके द्वारा ही मन और मायाको जीत लिया था शान्तिमें प्रवेश करो। ध्यान करो।

जब मन सारी चिन्ताओंसे दूर होता है तभी आप ध्यान कर सकते हो, जब सुषुम्ना नाड़ी कार्य करती हो अर्थात् श्वास दोनों नथुनोंमें बहता हो तब ध्यान सुगमता और आनन्दसे चलता है। सुषुम्नाके क्रियाशील होनेसे सत्वगुणकी वृद्धि होती है। जिस समय सुषुम्ना चलने लगे तभी ध्यानके लिये बैठ जाओ।

ध्यानके अभ्याससे मन, मस्तिष्क और नाड़ियोंमें अनेक परिवर्तन हो जाते हैं। नये-नये नाड़ी प्रवाह, स्पन्द नये मार्ग बन जाते है। सम्पूर्ण मन और नाड़ी-जाल नयासा बन जाता है। आपका हृदय और मन नयासा हो जावेगा, नये इन्द्रिय ज्ञान, भाव, विचार धारा

और क्रियायें तथा संसारके लिये नया दृष्टिकोण (अर्थात् ईश्वरका स्वरूप) बन जावेंगे।

ध्यानका कमरा परमात्माका मन्दिर मानना चाहिये। उस कमरेमें गन्दी बातें नहीं करनी चाहियें। काम, लोभ आदिके दुष्ट विचार नहीं आने चाहियें। सदा पवित्र और श्रद्धापूर्ण मन सहित उसमें प्रवेश करना चाहिये। क्योंकि जो कुछ हम करते हैं और जो कुछ सोचते हैं वे सब अपना बन्धन उस कमरेके आकाशमें छोड देते हैं और यदि उनसे बचनेके लिये सचेष्ट नहीं रहा जावे तो वे साधकके मनपर अपना प्रभाव डालकर उसको उलट कर चंचल कर देंगे और वह उपासना करनेके अयोग्य हो जावेगा। बोले हुए शब्द, किये हुए कर्म और मनके विचार खो नहीं जाते, जहां वे किये जाते हैं उस कमरेके आकाशकी सूक्ष्म स्तरोंमें उनका प्रतिबिम्ब रहता है और सर्वथा मनपर अपना प्रभाव डालते हैं। जहां तक हो सके उनपर काबू पानेकी चेष्टा करनी चाहिये। कुछ ही महीनों तक ऐसा करना होगा। जब स्वभाव बदल जावेगा तो सब चीज़ ठीक हो जावेगी।

जो ध्यानका अभ्यास करते हैं उन्हें ज्ञान होगा कि

दूसरे जनोंसे वे अधिक चेतन हैं और इसी कारण उनके स्थूल शरीर पर बडा दबाव रहता है।

सारे आन्तरिक या वाह्य कर्म तभी किये जा सकते हैं जब मन इन्द्रियोंके साथ संयुक्त होवे। विचार ही सच्चा कर्म है। यदि अभ्यास द्वारा अपने मनको वशमें कर लिया है, यदि आप अपनी भावनाओं और मुद्राओंको ठीक रख सकते हो तो आप मूर्खता पूर्ण और अलीक कर्म नहीं करोगे। भिन्न-भिन्न भावनाओं और चेष्टाओं-को रोकनेमें ध्यान बहुत सहायता करेगा।

ध्यान कालमें आपको परम आनन्द मिलेगा। यह पांच प्रकारका होता है—हल्का आनन्द, क्षणिक आनन्द, प्रवाही आनन्द, वाही (लेजाने वाला) आनन्द और सर्व व्यापक आनन्द। हल्के आनन्दमें केवल रोमाञ्च होता है। क्षणिक आनन्दमें बिजलीकी चमकके समान पल-पलपर आनन्द आता है। जैसे सागर तटपर लहरें टकराती हैं इसी प्रकार प्रवाही आनन्द शीघ्रतासे शरीर पर आता है और टकराता है। वाही आनन्द शक्तिवान् होता है और शरीरको भी हवामें उठा देता है। जब सर्व व्यापी आनन्द आता है तो सारा शरीर आनन्दसे भर जाता है जैसे फुटबालका हवासे भरा हुआ ब्लैडर।

जैसे सिद्धहस्त तीर चलानेवाला पक्षीको तीर मारनेमें भली प्रकार अपने पद-विन्यास, धनुष, डोरी और तीर पकड़नेके ढंगको भली प्रकार जानता है कि "इस प्रकार खड़े होकर, इस प्रकार धनुष लेकर, इस प्रकार डोरी खींचकर और ऐसे तीर पकड़ कर मैंने पक्षीको मारा है" और इसके उपरान्त फिर भी कभी इन अवस्थाओंको पूरी करनेमें नहीं चूकेगा कि वह भी पक्षीके निशाना लगा सके। इसी प्रकार साधकको भी सारी अवस्थाओंको याद रखना चाहिये कि ऐसा भोजन करके, ऐसे पुरुषका अनुकरण करके, ऐसे मकानमें इस विधिसे, ऐसे समयमें मैंने इस ध्यान और समाधिको प्राप्त किया था।

जैसे चतुर रसोइया अपने मालिकको भोजन खिलानेमें याद रखता है कि उसके स्वामीको किस प्रकारका भोजन पसन्द है और फिर भी वही भोजन परोस कर लाभ उठाता है उसी प्रकार साधक भी उन अवस्थाओंको याद रखता है कि जिनमें उसने ध्यान और समाधि प्राप्त किए थे और भी उन्हे पूरा करके बारम्बार परमानन्द प्राप्त करता है।

जो कमरा छः महीने तक बन्द रहा हो जब आप

उसे बुहारने लगते हो उसके कोने-कोनेसे अनेक प्रकारकी गर्दा उठती है। इसी प्रकार ध्यानमें योगके दबावसे ईश्वरकी कृपासे अनेक प्रकारके मल मनके ऊपर तैरने लगते हैं। उनको साहस करके एक एक करके उपयुक्त उपायोंसे और विरोधी सद्गुणोंसे धैर्य और प्रबल प्रयत्नसे निकाल दो। जब आप पुराने बुरे संस्कारोंको दबाना चाहते हैं तो वे बदला लेते हैं। भय मत करो। कुछ समय पीछे उनका बल जाता रहेगा। जैसे आप जंगली हाथी या शेरको सधाते हो वैसे ही मनको भी सधाना होगा। खोटे विचार मनमें मत रखो। मनको अन्तर्मुख कर लो। अच्छे, सद्गुण मय, उच्च विचार ले आओ। उन्नत करने वाले लक्ष्य और आकांक्षाओंसे मनको तृप्त करो। पुराने दुष्ट संस्कार दुर्बल हो जावेंगे और अन्तमें नष्ट हो जावेंगे।

सदाचारी जीवन बनाना ही ईश्वर प्राप्तिके लिये पर्याप्त नहीं है। मनका एकाग्र करना अत्यन्त आवश्यक है। सदाचारी जीवन तो केवल मनको धारणा और ध्यानके उपयुक्त बनाता है। धारणा और ध्यान अन्तमें आत्म-साक्षात्कार प्राप्त कराते हैं।

ध्यानमें जो दृश्य आप देखते हो वह आपके अपने ही

मूर्तिमान् विचार होते हैं और कुछ एक वास्तविक पदार्थों के दृश्य होते हैं।

जब वासनाये दुर्बल हो जाती हैं और संकल्प क्षीण हो जाते हैं तभी सच्ची शान्ति और आनन्द प्रकट होते हैं। पांच मिनटके लिये भी जब आप मनको श्रीकृष्ण, शिव या आत्मा पर स्थिर करते हो तो मनमें सत्वगुण भर जाता है, वासनायें क्षीण हो जाती हैं और संकल्पोंकी स्फुरणा कम हो जाती है। उस पाच मिनटमें आपको शान्ति और आनन्द प्रतीत होता है। आप ध्यान से प्राप्त इस आनन्दकी तुलना नश्वर विषय भोगोंके आनन्दसे कर सकते हो। आपको प्रतीत होगा कि ध्यान द्वारा प्राप्त यह आनन्द विषय सुखसे लाखों गुणा उत्तम है। ध्यान करो और इस आनन्दका अनुभव करो। तब आपको इसका वास्तविक मूल्य जान पडेगा।

ध्यान और धारणाके अभ्यासमें आपको मनको नाना प्रकारके उपायोंसे साधना होगा। तभी यह स्थूल मन सूक्ष्म बन सकेगा।

२३—*निर्गुण ध्यान*

इन सब नाम और रूपोंके पीछे एक जीवित विश्वव्यापिनी शक्ति हैं। इस निराकार शक्तिका ध्यान करो।

यह आदिम निराकार ध्यान बनायेगी और अन्तमें अनन्त निर्गुण निराकार चेतनाकी प्राप्ति करावेगी।

पद्मासन पर बैठो। आँखें खोलो। निराकार वायुको स्थिरतासे देखो। निर्गुण ध्यानका यह भी एक दूसरा रूप है। वायु पर धारणा करो। यह नाम रूप रहित ब्रह्मकी प्राप्ति करा देगा।

कल्पना करो कि सारे विश्वके पीछे छिपी हुई एक परम अखण्ड, अनन्त ज्योति है जो करोड़ों सूर्यके तेजके समान है। उसका ध्यान करो। निर्गुण ध्यानका यह भी एक रूप है।

विस्तृत आकाश पर ध्यान करो। यह भी निर्गुण निराकार ध्यानका एक रूप है। पूर्वोक्त धारणाके उपा-योंसे मन परिछिन्न रूपोंका चिन्तन छोड़ देगा। यह शनैः शनैः शान्तिके समुद्रमें घुलने लगेगा जैसे २ इसके विषय—अनेक प्रकारके रूप क्षीण होते जावेगे। यह अधि-काधिक सूक्ष्म भी होता जावेगा।

२४—ध्यानमें बाधायें

नवीन साधकोंमें पूर्व सस्कारोंके वश या सूक्ष्म जीवों, दुष्ट आत्माओं, कुसंगति, बादलके दिन, अपच और बद्ध कोष्टताके कारण बहुधा उदासी आ जाती है। इसको

जल्दी आनन्दमय विचारों, द्रुतगामी सैर, गायन, हंसी, प्रार्थना, प्राणायाम आदि उपायों द्वारा हटा देना चाहिये।

कभी कभी ध्यान कालमें सोनेके लिये मन अपने पुराने मार्गोंमें जा पडता है। लोग सोचते हैं कि वे ध्यान कर रहे हैं परन्तु वास्तवमें वे सोते हैं।

कुछ साधकोंको अनेक प्रकारके अद्भुत स्वप्न दुःख देते हैं। कभी २ ध्यान और स्वप्नका मिश्रण हो जाता है। क्योंकि स्वप्नकी क्रिया बड़ी विचित्र होती है और समझाई नहीं जा सकती इसलिये जब तक कारण शरीरके सारे संस्कारोंको निकाल कर विचारोंका निग्रह नहीं कर लेते तब तक स्वप्नोंका संयम करना बड़ा कठिन है। जैसे २ पवित्रता, विवेक और धारणा बढ़ती जावेगी स्वप्न कम होते जावेंगे।

स्वप्नोंकी उपस्थितिसे ज्ञात होता हैं कि अभी तक आप गम्भीर ध्यानमें भली प्रकार स्थित नहीं हुए हो, मनके विक्षेपको दूर नहीं किया है और निरन्तर तीव्र साधना नहीं की है।

तन्द्रा और मनोराज्यके मिश्रणको भूलसे साधक ध्यान और समाधि मान बैठते हैं। प्रतीत होता है कि मन

धारणामें संलग्न है और विक्षेपसे मुक्त है। यह गलती है। मनको अच्छी तरह देखो। इन दोनों बड़ी बाधाओंको विचार, प्राणायाम और लघु सात्विक आहार द्वारा दूर करो। विचार-पूर्ण, सतर्क और सचेत रहो। यदि तन्द्रा लगे तो दस मिनटके लिये खड़े हो जाओ और मुंह सिर पर ठंढे पानीके छींटे दो।

निद्रा आना, कामनायें, मनकी अस्तव्यस्त दशा, मनोराज्य ये बड़ी बाधायें हैं जो मनको ईश्वरमें लगानेमें बाधक होती हैं। लघु सात्विक भोजन और सद्विचार इन बाधाओंको दूर कर देंगे।

जब महावाक्यानुसन्धानकी विधिके अनुसार आप 'अहं ब्रह्मास्मि' या 'तत्वमसि' आदि महावाक्योंके अर्थपर निरन्तर चिन्तन करते हो तो देखना, सुनना, स्पर्श करना स्वाद लेना, सूंघना आदि सारे विषय रुक जावेंगे। परन्तु संस्कारोंके प्रावल्यके कारण मनोराज्य चलता रहेगा। निद्रा भी बीचमें आवेगी। यदि आप सचेत रहो और दीर्घ कालके प्रयत्न तथा अथक जाग्रत स्वरूप चिन्तनके द्वारा इन दोनों बाधाओं पर काबू पा लो तो थोड़े ही समयमें स्थिर ब्रह्माकार वृत्ति या ब्रह्म ज्ञानका उदय होगा अज्ञान दूर हो जावेगा। आप सहज परमानन्द अवस्थामें

स्थित हो जाओगे। ज्ञानकी अग्निमें सारे संचित कर्म भस्म हो जावेंगे।

ध्यानकी पांच वाधायें अर्थात् इन्द्रियोंकी वासना, खोटी इच्छा, आलस्य तन्द्रा, चिन्ता और घवराहट— इनको दूर करना चाहिये। क्योंकि जव तक इनको दूर नहीं किया जावे ध्यान नहीं वनेगा। जो मन इन्द्रियोंको इच्छा द्वारा अनेकों वस्तुओंके लिये चाहता है वह एक पदार्थ पर एकाग्र नहीं होता या इन्द्रियोंकी वासनासे दव-कर यह विषयोंको दूर करनेके लिये ध्यानमें उन्नति नहीं कर सकता है। जो मन किसी विषयके लिये खोटी इच्छासे सताया हुआ है वह तुरन्त ही ध्यानमें नही लग सकता। जो मन आलस्य और तन्द्राके वशमें हैं वह बेकावू हो जाता है। चिन्तासे दुखी मन विश्राम नहीं करता परन्तु भागा २ फिरता है। घवराहटसे सताया हुआ मन ध्यान और समाधिके द्योतक मार्ग पर नही जाता।

२५—समाधि

हठयोगका अभ्यासी सारे शरीरसे प्राणोंको खींच कर सहस्रार चक्रमें शिरके ऊपर ले जाता है। तव वह समाधिमें प्रवेश करता है। इसलिये केवल उसका शरीर

हिलाकर उसे सामान्य चेतनामें लाना बहुत कठिन है। हठयोगी समाधिमें कई वर्षों तक पृथ्वीके नीचे दबे रहते हैं। वे खेचरी मुद्रा द्वारा अपनी लम्बी जिह्वासे तालूके अन्दर नथुनोंको बन्द कर देते हैं। आप राजयोगी, भक्तियोगी, या ज्ञानयोगीको केवल उसका शरीर हिलाकर या शंख बजाकर भी सामान्य चेतनामें ला सकते हो। रानी चूड़ालाने अपने पति राजा शिखिध्वजको उसका शरीर हिलाकर ही समाधिसे सामान्य चेतनामें उतारा था। भगवान हरिने शंख ध्वनिके द्वारा प्रह्लाद भक्तको समाधिसे उतारा था।

भक्तको भगवानके प्रेम द्वारा भाव-समाधि हो जाती हैं। राज योगीको चित्तवृत्ति निरोधके द्वारा निरोध समाधि हो जाती हैं। वेदान्तीको मिथ्यात्व बुद्धि (जगतमें) और अन्वयकी रीतिसे अस्ति, भाति, प्रिय (सच्चिदानन्द) के चिन्तन द्वारा भेद समाधि हो जाती है।

जब योगी ध्यान और समाधिकी अन्तिम पूर्ण अवस्थाको प्राप्त हो जाता है, जिसकी अग्निसे निस्सन्देह उसके बचे हुए कर्म भस्म हो जाते हैं तो उसे इसी जन्ममें मोक्ष (जीवन्मुक्ति) तुरन्त ही मिल जाता है।

सविकल्प समाधिकी तुलना चलती हुई बैलगाड़ीसे

की जा सकती है। जब गाड़ी रुक जावे तो निर्विकल्प समाधि समझनी चाहिये और बैलोंको खोल दिया तो यह सहजावस्था हो गई।

जब आपका ध्यान गम्भीर हो जाता है तो आप कारण शरीरके द्वारा क्रिया करते हो। कारण शरीरकी चेतना आपकी सामन्य चेतना होती है। योगियोंकी सामान्य कारण शरीरकी चेतना होती है। श्री गौराङ्ग, तुकाराम, तुलसीदासके समान भक्तोंने अपनेको कारण शरीरसे मिला दिया था और उनकी सामान्य कारण शरीर चेतना थी। कारण शरीर चेतनाका भक्त इसी जीवनमें ब्रह्मलोकका निवासी हो जाता है। वह हिरण्य-गर्भके साथ मिल जाता है। उसे दिव्य ऐश्वर्य प्राप्त होता है तो भी उसका सूक्ष्म आकाशमय शरीर होता हैं। वह अपना व्यक्तित्व रखता है। जैसे जलके अन्दर आवर्त जलमें मिला हुआ भी होता है और इसकी पृथक् सत्ता भी होती हैं। यही अवस्था उस भक्तको होती है जिसका ईश्वरमें कारण शरीर जीवन होता है।

किसी मकानकी जैसे नीचेकी मंज़िल वह तो विषय रूप संसारमें विषयी जीवन है। पहली मंज़िल सविकल्प समाधि है। दूसरी मंजिल निर्विकल्प समाधि है, और

तीसरी मंज़िल जीवन्मुक्तकी सहजावस्था है। श्रवण, मनन और निदिध्यासन रूपी तीन डंडों वाली सीढ़ी है जिसके द्वारा वेदान्ती ब्रह्म तक चढ़ जाता है।

सविकल्प समाधिमें ध्याता (ध्यान करनेवाला), ध्यान, और ध्येय (जिसका ध्यान किया जावे) यह त्रिपुटी रहती है। निर्विकल्प समाधिमें यह त्रिपुटी नहीं रहती। मन पूर्णतया ब्रह्ममें लीन हो जाता है।

सविकल्प समाधिमें जो आनन्द प्राप्त होता है उसे रसास्वाद कहते हैं। आगेको आध्यात्मिक उन्नतिमे यह भी एक प्रतिबन्ध होता है। यह आपको इसी जगह रोक देता है। यह मोक्ष नहीं दे सकता। आपको और भी आगे बढ़ना चाहिये और सर्वोत्तम निर्विकल्प समाधि प्राप्त करनी चाहिये जिसमें आपकी मुक्ति है। योगकी समाधिमें ध्येय (ध्यानकी वस्तु) रहता है। वेदान्तकी समाधिमें केवल अस्ति रहता है।

रहस्यमय ज्ञानकी एक झलक मात्रसे सारी पदार्थमय सत्ताका अन्त हो जाता है और संसारका विचार या इस संसारमें जीवकी सत्ताका विचार आत्माको बिल्कुल छोड़ देता है।

सामान्यतः जब आपको गहरी नीन्द होती है जिसमें

स्वप्न भी नहीं होते तो दो में से एक बात होती है या तो आप स्वप्नको याद नहीं रख सकते या आप बिल्कुल अचेत निद्रामें पड़ गये जो मृत्युके समान है। परन्तु एक और सुषुप्तिकी भी सम्भावना होती है जिसमें आप पूर्ण शान्ति, अमृतत्वमें प्रवेश कर जाते हैं और आपकी चेतना सच्चिदानन्दमें प्रवेश कर जाती है। आप इसको निद्रा नहीं कह सकते क्योंकि इसमें पूर्ण चेतना रहती है। इस अवस्थामें आप कुछ मिनिट, कुछ घन्टों या कुछ दिनों तक रह सकते हो। परन्तु ये कुछ मिनट ही आपको इतना आराम देते हैं जितना कि घन्टोंकी नींदसे नहीं मिल सकता। यह अवस्था आपको अकस्मात् ही प्राप्त नही हो सकती इसके लिये दीर्घकाल तक शिक्षाकी आवश्यकता है।

सहजज्ञान आध्यात्मिक अनुभव होता है जो समाधिके द्वारा प्राप्त किया जाता है। प्रोफेसर बर्गसनने फ्रांसमें सहज ज्ञानका प्रचार किया कि लोग समझ जावें कि बुद्धिसे पृथक् भी ज्ञानका और उच्च स्रोत है। सहज ज्ञानमें तर्क विधि नहीं होती। यह प्रत्यक्ष होता है। सहज ज्ञान तर्कसे अतीत होता है परन्तु इसका विरोध -नहीं करता। बुद्धि मनुष्यको सहज ज्ञानकी ड्योढ़ी तक

पहुंचा कर लौट आती है। सहज ज्ञान दिव्य दृष्टि या ज्ञानचक्षु है। सहज ज्ञानके द्वारा आध्यात्मिक प्रकाश या सत्यकी झलक आया करती है। प्रेरणा, ज्ञानका प्राकट्य आध्यात्मिक विषयोंमें गति-ये सब सहज ज्ञानके द्वारा प्राप्त होते हैं।

निर्विकल्पका अर्थ है विकार रहित और कल्पना रहित। योगीकी निर्विकल्प अवस्था और वेदान्तीकी निर्विकल्प दशामें अन्तर होता है। योगीकी दशाका सम्बन्ध मनसे होता है और वेदान्तीका आत्मा या ब्रह्मसे।

यदि आप दस सेकेण्ड तक स्थिरतासे मनको किसी वस्तुपर एकाग्र कर सको तो यह धारणा होती है। ऐसी दस धारणाओंको ध्यान कहते हैं और दस ध्यानसे समाधि बनती है।

छातीमें प्राण वायु और गुदामें अपान वायु चलती है जालन्धर बन्ध, मूल बन्ध और उड्डियान बन्धके द्वारा ये दोनों मिल जाते हैं और मेरु दण्डकी सुषुम्ना नाड़ी में प्रवेश करते हैं। प्राण अपने साथ-साथ मनको भी सुषुम्नाके अन्दर खींच लेते हैं, जब मन सुषुम्नाके अन्दर रहता है तो योगीको संसारी विषयका ज्ञान नहीं रहता।

यह संसारके लिये मूल साथ होता है और निराशावादी ही शून्य देखता तथा शमन करता है।

आत्मामें जीवन ही मृत्यु नहीं है। जैसे बहुत लोग कल्पना करते हैं समाधि शिलाके समान निष्क्रिय दशा नहीं है। जब तक जीव संसारी भौतिक बन्धनोंमें घिरा रहता है, ऐसी शक्तियां पूर्ण रूपसे विकसित नहीं होतीं और जब वह इन भौतिक बन्धनोंसे अतीत हो जाता है तो उसका दिव्य जीवन गम्भीर हो जाता है और जीव समृद्ध हो जाता है। आन्तरिक ज्ञानमें वृद्धि होती है। विश्व जीवन और व्यक्तिगतजीवन विशाल हो जाता है।

जब सारी वृत्तियां मर जाती हैं तो संस्कार और मनका ढांचा रह जाता है। संस्कार केवल निर्बीज समाधि द्वारा भस्म किये जा सकते हैं।

२६—ध्यानमें अनुभव

आनन्दयुत अथवा दुःखप्रद अनुभवोंसे मनुष्य सामग्री इकट्ठी करके मानसिक अथवा चारित्र्यकी शक्तियां बनाता है।

जैसे साल भरका खाता बन्द करके नये सालका खाता खोलनेवाला व्यापारी पिछले सालकी सारी रकमें

नये खातेमें नहीं लिखता किन्तु केवल खाते बाकी ही लिखता है इसी प्रकार जीवात्मा मस्तिष्कको अतीत जीवनके अनुभवों पर उसके निश्चय दे देता है। यही वह माल है जो नये जीवनको मिलता है यही मानसिक सामग्री नये मकानको मिलती है यह वास्तविक स्मृति होती है।

जो मन सदा वासनाओंके साथ-साथ उभरता और गिरता रहता है वह अपने अज्ञानके कारण इस भ्रमपूर्ण जगतको सत्य मानता है। परन्तु इसको संसारका असली स्वरूप बता देना चाहिये तभी यह अपना ब्रह्मरूप पहिचान सकेगा।

'मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।' मनुष्योंके बन्धन और मोक्षके लिये मन ही कारण होता है।

ध्यान कालमें आप अनुभव करोगे कि आप अपने आसनसे ऊपरको उठ रहे हो। कोई-कोई अपनेको हवामें उड़ता हुआ भी अनुभव करते हैं।

भिन्न-भिन्न मनुष्योंके नाना प्रकारके आध्यात्मिक अनुभव होते हैं। सबके लिये एक ही सामान्य अनुभव नहीं हो सकता क्योंकि प्रत्येक अनुभव मनुष्यके अपने स्वभाव, साधना विधि, ध्यानके स्थान और अन्य बातों

पर निर्भर करता है। कोई मधुर स्वर सुनते हैं, कोई प्रकाश देखते हैं, किन्हींको आनन्द मिलता है और किसी किसीको प्रकाश और आनन्द दोनों मिलते हैं।

यदि साधनामें कुछ त्रुटि हो तो तुरन्त अनुभवी संन्यासियों, ईश्वर-प्राप्त आत्माओंसे सलाह लेकर भूलको दूर कर लो। यदि आपका स्वास्थ्य ठीक है यदि आप प्रसन्न हो और मन तथा शरीरसे बलवान हो यदि मन शान्त और उद्वेग-रहित है यदि ध्यानमें आनन्द मिलता है, यदि इच्छा-शक्ति दृढ होती जाती है और पवित्र तथा अबाध्य इच्छा हो रही है तो समझ लो कि आप ध्यानमें उन्नति कर रहे हो और सब चीज ठीक-ठीक चल रही हैं।

दिव्य ज्योति खुले द्वारोंसे नहीं अपितु संकुचित झिरियोंमेंसे आया करती है। जैसे झिरीमें से अधेरे कमरेमें सूर्यकी किरण आती है इसी प्रकार साधक दिव्य किरण देखता है। यह बिजलीकी चमकके समान होती है। इससे सारे शब्दोंका स्वर बन्द हो जाता है। साधक आनन्द और दैवी विस्मयसे आश्चर्य-चकित रह जाता है। प्रेम और भयसे कांपने लगता है जैसे भगवान कृष्णका विराट विश्वरूप देखकर अर्जुन कांपने

लगा था। यह प्रकाश जो दिव्य मूर्तिको आवृत रखता है इतना तीव्र होता है कि साधक चौंधिया जाता है और घबराने लगता है।

एक इस प्रकारका दृश्य ध्यान कालमें बहुधा मिलता है। आप एक तीव्र प्रकाश आकस्मिक गति सहित देखते हो। आपको एक विस्मय-जनक शिर ज्वालाके समान वर्णवाला और बड़ा भयावना दिखता हैं। इसके तीन बड़े विशाल श्वेत पक्ष होते हैं। कभी-कभी वे फड़फड़ाते हैं और फिर चुप हो जाते हैं। शिर एक भी शब्द नहीं बोलता और बिल्कुल शान्त रहता है और इसके फैले हुए पक्ष फड़कते रहते हैं।

ध्यान कालमें नासारन्ध्रमें बहने वाले तत्वके अनुकूल प्रकाशका वर्ण भी बदला रहता है। अग्नि तत्व हो तो रक्त वर्णका प्रकाश दिखता है। आकाश तत्वमें नील वर्ण ज्योति हैं। जलतत्वमें श्वेत वर्णका प्रकाश दिखाई देता है, पृथ्वी तत्वमें पीत वर्णका प्रकाश होता है और वायु तत्वमें कृष्ण वर्णका। आप इस तत्वको अनेक उपायोंसे बदल सकते हो। परन्तु सर्वोत्तम उपाय 'विचार' है। जैसा विचार करोगे वैसे ही बन जाओगे। जब अग्नि तत्व बहता हो तो इच्छा-पूर्वक जलतत्वका चिन्तन

करो। जलतत्व वहने लगेगा।

यदि तीव्र ध्यानके अन्दर आत्माकी झलक देखो, तीव्र प्रकाश देखो, ऋषि, मुनि, देवता, यक्षादिकोंके दृश्य देखो और कोई और असाधारण आध्यात्मिक दृश्य देखो तो भयसे पीछे मत हटो और उनको भूत समझ कर साधना वन्द मत कर दो। आगे बढ़ते रहो। परिश्रमसे लगे रहो। एक-एक करके सारे परदे तोड़ दो।

साहस करके आगे बढ़ते रहो। पीछे मुड़कर मत देखो। विशाल शून्य और अन्धकारको पार कर लो। मोहके स्थलको भेद दो। सूक्ष्म अहंकारको घुला दो। स्वरूप स्वयं प्रकाश करने लगेगा। आपको तुरीय अवस्थाका अनुभव होगा।

कभी-कभी आपको दुष्ट आत्मायें दुख देंगी। उनके डरावने मुख और लम्बे दांत होंगे। अपनी दृढ़ इच्छा शक्तिसे उन्हें भगा दो। आज्ञा दो 'निकल जाओ।' वे चले जावेंगे। ये भूत हैं। ये साधकोंकी हानि नहीं करेंगे। यहां तुम्हारे साहसकी कसौटी है। यदि आप डरपोक हो तो आगे नही वढ़ सकते। उस आन्तरिक अव्यय स्रोतरूप आत्मासे साहस और वल ग्रहण करो। आपको अच्छी आत्मायें भी मिलेंगी। वे आपको आगे

बढ़नेमें सहायता देंगी। ये सब मार्गमें विघ्न होते हैं।

साधकोंको जल्दी अनुभव देखनेकी उत्सुकता होती है। परन्तु जब अनुभव मिलते हैं तो वे डर जाते हैं। जब देह-चेतना से ऊपर जाते हैं तो वे अत्यन्त भयभीत होते है। उन्हें आश्चर्य होता है कि वे शरीरमें लौटकर आवेंगे या नहीं। उन्हें डर क्यों होना चाहिये। कोई बात नहीं उन्हें शरीर चेतना प्राप्त होवे या नहीं होवे।

हमारे सारे प्रयत्न तो शरीर चेतनासे ऊपर उठने और उच्चतम आध्यात्मिक चेतनासे एक हो जानेके ही लिये होते हैं। हमें कुछ प्रतिबन्ध लगे हुए होते हैं। जब अचानक ही यह प्रतिबन्ध गिर जाते हैं तो हमें प्रतीत होता है कि खड़े होनेके लिये कोई आधार नहीं बचा है। यही कारण है कि जब हम शरीर चेतनासे ऊपर उठते हैं तो हमें डर लगता हैं। यह एक नवीन अनुभव होता हैं। साहसकी आवश्यकता है। वीरता बड़ा आवश्यक गुण है। श्रुति कहती हैं बलहीन मनुष्य आत्म-साक्षात्कार नहीं प्राप्त कर सकता। मार्गमें सब प्रकारकी शक्तियोंका सामना करना पड़ता है। डाकू या हत्यारा आसानीसे ईश्वर प्राप्ति कर सकता है क्योंकि वह निर्भय होता है। उसके लिये तो ठीक मार्गक

ओर एक धक्केकी आवश्यकता होती है। बड़े धूर्त जगाई और मधाई किस प्रकार उत्तम साधु बन गये। उन्होंने भगवान् गौराङ्गके शिष्य नित्यानन्द पर पत्थर फेंके थे। नित्यानन्दने उन्हें केवल शुद्ध दिव्य प्रेमसे जीत लिया। डाकू रत्नाकर वाल्मीकि ऋषि बन गया था।

चतुर्थ परिच्छेद

१—मनकी तुलना

(क) मन टेनिसकी गेंदके समान है

जब आप टेनिस खेलते हो तो गेंद आकाशमें बहुत ऊंची चली जाती है और दूसरे सेकण्डमें वह ज़मीनपर आ गिरती है। इसी प्रकार नवीन साधकोंमें ध्यानके प्रारम्भमें बहुत थोड़े काल तक मन दिव्य महत्त्व तक ऊंचा पहुंच जाता है और किञ्चित्काल तक सात्विक गुणोंमें

रहता है और तुरन्त ही नीचे गिरकर अपने पुराने गन्दे रास्तोंमें पड़कर निरर्थक घृणास्पद विचारोंमें रहता है। उन्नतिशील आत्माकी नयी ज्योति इन भयानक विचारों पर काप उठती है। यह कोई बात नहीं है आपको चिन्ता नही करनी चाहिये। जैसे अच्छे हाथके इशारेसे गेंदको फिर आकाशमें चढ़ा देते हो इसी प्रकार आप भी प्रयत्न करके मनको फिर भी दिव्य महत्व और दिव्य चेतनाके उच्च शिखरपर चढ़ा दो।

(ख) मन दर्पणके समान होता है

मनुष्यके मनकी तुलना दर्पणसे की जाती है जिसमें ब्रह्म तत्वका प्रतिबिम्ब झलकता है। इस तत्वका जितना विस्तार आप जानते हो वह आपके मनकी अवस्थापर निर्भर होता है कि वह तत्वके पूर्ण विकासके अनुकूल हैं या नहीं। अन्धेपर रंग प्रकट नहीं होते, बहरेको गायनका सार नहीं मालूम होता और दुर्बल मन-युक्त मनुष्यपर दार्शनिक सिद्धान्त प्रकट नहीं होते। यदि मनमें कोई धब्बा या त्रुटि रहे तो तत्वका प्राकट्य भी विकृत और अपूरण होगा। स्वार्थपूर्ण कामनायें मनरूपी करण और प्रकट होनेवाले तत्वके बीचमें अड़ जाती

हैं। गूढ़ वासनायें साधकपर विविध प्रकारसे आक्रमण करती हैं। साधकोंको उचित है कि बड़े गम्भीर अन्तर्निरीक्षण द्वारा सर्वदा मनपर दृष्टि रखनी चाहिये। जब कर्त्ताका व्यक्तित्व करणकी प्रकृतिको प्रभावित करता है तो तत्त्वका प्रतिविम्ब धुंधला पड़ता है।

(ग) मन टेनिसकी गेंदके समान नीचे गिरता है

यदि आप टेनिसकी गेंदको सबसे ऊंची सीढ़ीपरसे नीचे गिरा दो, वह वीचमें किसी सीढ़ीपर नहीं रुकेगी। यह तुरन्त नीचेकी मंजिलमें आ गिरेगी। इसी प्रकार यदि आप उपयुक्त वचाव नहीं करोगे, यदि आप संसारी मनुष्योंसे ज्यादा मिलोगे तो टेनिस गेंदके समान आपका शीघ्र पतन होगा। जिस मनको आपने आध्यात्मिक अभ्यासों द्वारा छः या आठ वर्षमें ऊंचा चढ़ाया था, उसे विविध मलिनताओंके धब्बे लग जावेंगे। इसलिये हे साधको! सचेत रहो।

(घ) मन भूतके समान है

मन एक वेचैन भूतके समान है। एक समय एक पण्डितने मन्त्र सिद्धिके द्वारा भूतको वशमें कर लिया। भूतने पण्डितसे कहा, "मैं आपके लिये कोई भी काम एक

मिनटमें कर सकता हूं। आप मुझे हमेशा कुछ न कुछ काम बताते रहना। यदि आप एक सेकण्डके लिये भी मुझे बिना कामके रखोगे तो मैं आपको खा जाऊंगा।" पण्डित राजी हो गया। भूतने पण्डितके लिये एक तालाब खोदा, उसके खेतोंमे हल चलाया और थोड़े ही समयमें बहुतसे अनेक काम कर दिये। अब पण्डितजी भूतको कुछ और काम नहीं दे सके। भूतने उन्हें धमकाया, "अब मेरे लिये कुछ काम नहीं है मैं तुम्हें निगल जाऊंगा" पण्डितजी बहुत घबरा गये। अब क्या करना चाहिये यह उनकी समझमे नही आया। वे अपने गुरुजीके पास गये और उनको सारी बात बताई। उनके गुरुने कहा— हे चेले! अपनी बुद्धिका प्रयोग करो। अपने घरके सामने एक बड़ा दृढ़ चिकना लकड़ीका खम्भा गाड़ दो। उसपर तेल, मोम और दूसरे चिकने पदार्थ मल दो। भूतसे कहो कि दिन और रात इस खम्भेपर चढे और उतरे। चेलेने ऐसा ही किया और भूतका निग्रह कर लिया। अब भूत बिल्कुल बेकाबू हो गया। इसी प्रकार आपको उचित है कि मनको भी सर्वदा कुछ न कुछ काम देते रहो, जैसे जप, ध्यान, स्वाध्याय, सेवा, कीर्तन, प्रार्थना और प्राणायाम। इसको हमेशा पूरी तरह काममें लगाये रखो।

तभी मन सुगमतासे वशमें हो सकता है। आप शारीरिक और मानसिक ब्रह्मचर्यमें स्थित हो सकते हो।

(ङ) मनके लिये पारेका दृष्टान्त

मनकी क्रियाकी गतिशील पारेसे तुलना की जा सकता है। यदि आप थोड़ा-सा पारा जमीनपर रख दो तो यह छोटे-छोटे टुकड़े होकर इधर-उधरको भागने लगेगा। आप उन टुकडोंको फिर समेट नहीं सकते। इसी प्रकार मनकी किरणें भी अनेक दिशाओं (विषय भोगों) में विखरी हुई हैं। इनको इकट्ठा करना कठिन हो जाता है। वैराग्य और अभ्यास मनको एकाग्र करनेमे सहायक होते हैं।

(च) मन घूमते हुए सड़कके कुत्ते के समान है

मनकी तुलना सड़कोंपर फिरते हुए निर्लज्ज कुत्तेसे अनेक की जा सकती है जिसके शरीरपर घाव हो गये हैं। कुत्ता एक मकानके दरवाजेपर जाता है। कोई इसे पत्थर मारता है और यह भाग जाता है। यह फिर दूसरे मकान पर जाता है। वहां भी इसपर मार पड़ती है। फिर यह पहले ही वाले मकान पर आ जाता है जहां इसे पत्थर मारा गया था। अबकी बार

कोई बड़ासा पत्थर मार देता है और इसके दूसरा घाव हो जाता है। बार-बार घाव लगते रहने पर भी कुत्ता अपनी घूमनेकी आदतको कभी नहीं छोड़ेगा। इसी प्रकार मन भी विषय भोगोंकी ओर दौड़ता है यद्यपि इसको बड़े-बडे कष्ट, दुःख, शोक और वेदनायें मिलती हैं। यह अपनी पुरानी बानको कभी नहीं छोड़ेगा। आपको इस निर्लज्ज मनको पीटना पड़ेगा और बारम्बार भाव सहित ॐकारके उच्चारणके सहित इसको अपने स्रोत (ब्रह्म) में लौटाकर ले जाना होगा। इसे आत्माका अनन्त आनन्द चखने दो। तभी यह अपने नित्य शान्तिके निवास ॐ में विश्राम पायेगा।

(छ) मन लंगरके समान है

घण्टेमें लगा हुआ लंगर दाहिने और बायेंको चलता रहता है। जब बच्चे झूले पर खेलते हैं तो झूला कभी एक ओरको ऊंचा उठ जाता है और कभी दूसरी ओरको। इसी प्रकार जो साधक गम्भीर ध्यानमें स्थित नहीं हुए हैं उनके मन भी लंगर या झूलेके समान होते हैं। वे कभी कर्म योगका विचार करते हैं दुनियामें आकर कर्म करते हैं, और कभी वे विचार-पूर्ण जीवन

बनानेके लिये हिमालयको भागते हैं। एक आन्तरिक विवाद हुआ करता है कि कर्मयोग ग्रहण करें या ध्यान योग। आपको इसका निश्चय सदाके लिये एक दम करना होगा और जिसका भी निश्चय करो उसीके अभ्यासमें दृढ़तासे जुट जाना होगा। छः महीने तक संसारमें कर्म योगका अभ्यास करना और फिर छः महीने तक ध्यान योगका अभ्यास करनेसे कुछ लाभ नहीं होगा। एक ओरका निश्चय कर लो। संशयकी गांठको काट डालो। जब तक चित्त-शुद्धि न होवे तब तक कर्म किये जाओ। ईश्वर साक्षात्कार होने तक ध्यान किये जाओ। यही सबसे उत्तम मार्ग है।

२—आत्मा मनका स्रोत है

मनका स्रोत या आधार आत्मा या ब्रह्म है। इस मनके द्वारा ही जीव अनेकों जन्मोंमें इस मृत्यु-लोक के सारे अनुभव और ज्ञान प्राप्त करता है। जब विभिन्न अनुभव प्राप्त करके वह सिद्धावस्था (पूर्णता) को पहुंचता है तो मन अपने स्रोत 'प्रकाशोंके प्रकाश', 'सूर्योंके सूर्य' आत्मामें लीन हो जाता है।

छान्दोग्य उपनिषत्में मनकी तुलना उस पक्षीसे की

गई है जो इधर-उधर उड़ता हुआ कहीं विश्राम न पाकर अपने अड्डेपर ही आकर बैठ जाता है। व्यक्तिगत जीवात्मा जो मनसे परिच्छिन्न है, वह सुख दुःख-रूपी अनेकों दिशाओंमें उड़ता है। जाग्रत और स्वप्नावस्था की इच्छाओं और कर्मोंसे उसे प्रेरणा होती है। वह इन सारे सुख और दुःखोंका अनुभव करता है और प्राणके सिवाय कहो और विश्राम नहीं पाकर प्राणका ही आश्रय लेता है।

३—वासना क्षय

ब्रह्म भावना और विचारके द्वारा वासना-क्षय होता है। वैराग्य और त्याग भी उनका नाश करनेमें आपकी सहायता करते हैं। ब्रह्ममें कोई वासना नहीं है। वासनाओंका पूरा-पूरा नाश केवल निर्विकल्प समाधिमें ही हुआ करता है।

४—मनोनाश

जब दीर्घ काल तक वासना-क्षय, मनोनाश और तत्वज्ञानका साथ-साथ अभ्यास किया जावे तो ये फलदायक होते हैं। इनका अभ्यास एक साथ ही करना चाहिये। जब तक वारम्बार इनका एक साथ अभ्यास

नहीं किया जावे तो सौ वर्ष तक भी परमपद प्राप्त नहीं किया जा सकता। दीर्घ काल तक इन तीनोंका अभ्यास करते रहनेसे हृदयकी सुदृढ़ ग्रन्थियां कट जाती हैं जैसे कमलकी डन्डीको तोड़नेसे उसके अन्दरके तार भी टूट जाते हैं।

पहले स्थूल शरीर और वाणीका संयम करो। फिर धीरे-धीरे विचारोंका निग्रह करो। दूसरोंकी बुराई मत करो। जिव्हाको पहले वशमें करो। धीरे-धीरे मनमें दूसरोंकी बुराईका विचार नहीं आवेगा। मन अपने आपसे कहेगा, जब जिह्वा मेरे विचारोंको प्रकट करनेके लिये तैयार नही है तो मैं दूसरोंकी बुराई क्यों सोचूं। जब आपमें नैतिक सदाचार दृढ़ हो जावे तभी आप अपने कर्मोंका निग्रह कर सकते हैं। जब आप किसीकी बुराई करते हैं तो कई मनुष्योंके मनमें विष घोल देते हो। दूसरोंकी बुराई करना बड़ा नीचताका काम है। किन्तु कभी-कभी घृणा और द्वेषके बिना न्याय-पूर्ण आलोचना की जा सकती है।

आपके विचार और शब्दोंमें समानता होनी चाहिये। इसे आर्जव या सरलता कहते हैं। इसका अभ्यास करो। आपको आश्चर्यजनक लाभ होगा। यदि बारह वर्षों

तक सत्यका अभ्यास करो तो आपको वाक्सिद्धि मिल जावेगी। आप जो कुछ कहो वही होगा। चिन्ता दूर हो जावेगी। सत्य बोलनेसे आप बहुतसे पाप कर्मोंसे बच जाओगे।

यदि आप नलपर पानी पीना चाहो तो आपको शरीर झुकाना पड़ेगा। इसी प्रकार नीच मनको परिपक्व मनके आगे झुकना पड़ेगा अर्थात् विनीत होना पड़ेगा यदि वह उसके सद्गुण ग्रहण करना चाहता है।

आप स्वरूप भावना या ब्रह्म भावनाके द्वारा जितना ही अपनी वासनाओंको दुर्बल करते चले जाओगे उतने ही सुखी आप होते जावोगे। जितनी-जितनी वासनायें दुर्बल होती जाती हैं उसी अनुपातसे मन भी क्षीण होता जाता है। मन सिवाय वासनाओंकी गठरी के और कुछ नहीं है।

सैंकड़ों जन्मोंके अभ्याससे जो भ्रमपूर्ण संसारी वासनायें उत्पन्न हो चुकी हैं वे दीर्घकाल तक योगाभ्यासके विना कभी नष्ट नहीं होती। इसलिये हे साधको! विवेकपूर्ण प्रयत्नोंके द्वारा भोग कामनाको दूर हटाकर ऊपर वताई हुई इन तीन वस्तुओंका ही अभ्यास करो। ज्ञानी जानते हैं कि वासनाओंसे युक्त

मन बन्धनमें ले जाता है और वासनासे शून्य मन मुक्त ही कहलाता हैं। मनको उस अवस्थाका अभ्यास करो जिसमें यह वासनाओंसे बिल्कुल शून्य हो जाता है। भली प्रकार किये हुए विचार, ब्रह्मध्यान, वैराग्य और त्यागके द्वारा वासनाका नाश होता है।

जब वासनाये लुप्त हो जाती हैं तो मन उसी प्रकार शान्त हो जाता है जैसे तेल रहित दीपक।

संकल्पों और विकल्पोंका त्याग कर देनेपर ही मनके द्वारा ब्रह्म-साक्षात्कार हो सकता हैं। इस संसारका उद्गम और प्रलय (जो चेतनाके विकारके सिवाय और कुछ नहीं है) मनके संकल्पोंके उद्भव और क्षयके साथ-साथ होता है। मनका सकल्प ही सारे स्थावर और जंगम जीवोंके सहित सारे संसारका उद्भव करता है।

श्रवण, मनन और निदिध्यासन ये तीन वेदान्तकी प्रक्रियायें ज्ञान प्राप्तिके लिये हैं। यदि आप एक बार श्रुति (वेदों और शास्त्रों) का श्रवण करो तो उसका मनन दस बार करो, और सौ बार या हजार बार उसका निदिध्यासन करो। तभी सच्ची फल प्राप्ति होती हैं।

'अमना' एक संस्कृत शब्द है जिसका अर्थ है मनसे रहित। 'अमनस्कता वह अवस्था है जिसमें मन नहीं

रहता। यह मन रहित होती है। यह अवस्था आपको जीवन्मुक्तोंमें मिलेगी। अहंकार, रागद्वेष और सम्पूर्ण वासनाओंको क्षय कर देना ही मनोनाश है। इसका अभिप्राय यह नहीं है कि आप तलवार लेकर मनके टुकड़े-टुकड़े कर डालो।

मनोनाशसे अपना नाश होता ही नहीं। वेदान्ती मनका विभाग उच्च और नीच (उत्तम और निकृष्ट) दो प्रकार करते हैं। इनमेंसे निकृष्ट मन जो वासनायें उत्पन्न करता है उसीका नाश करनेको कहा गया है।

५—मनोलय

ध्यानके पदार्थमें मनका तात्कालिक लीन हो जाना मनोलय कहलाता है। जब आप भगवान् श्री कृष्णकी मूर्तिका ध्यान करते हैं तो कुछ समयके लिये मन भगवान्‌की मूर्तिमें लीन हो जाता है। मनोलय आपको बन्धनसे नहीं छुड़ा सकता, नाहीं यह आपको मुक्ति ही दिला सकता है। केवल मनोनाश ही मोक्ष दिला सकता है। मनोनाश ब्रह्मज्ञानके द्वारा प्राप्त होता है।

६—जीवन्मुक्त पुरुषका मन

जन्म और मरणके दुःखोंसे रहित सन्तको जीवन्मुक्त

कहते हैं। जिस समय वह संसारी व्यवहार करता है तो मन और शरीरसे करणकी भांति काम लेता है। यदि आप कहो कि ज्ञान प्राप्त करते ही उसके मनका पूर्ण नाश हो जाता है तो जीवन्मुक्त अवस्था असम्भव है। राजा जनकके समान जीवन्मुक्तोंके उदाहरण मौजूद हैं जिन्होंने मनुष्य जातिके उपकार और हितके लिये अपने शरीर और मनको करण बनाकर कार्य किया था। यद्यपि जीवन्मुक्तमें अनन्त शक्तियां होती हैं तो भी वह परिच्छिन्न मनके द्वारा उन सब सिद्धियोंको प्रकट नहीं कर सकता।

रहस्य विद्याका विशारद आत्म-निग्रह और संयमके द्वारा एक ही स्थान दो स्तरोंपर काम करना सीख लेता है। जब वह भौतिक स्तरमें कार्य करता हैं तो वह एक अंशमें अपने शरीरसे बाहर भी रहता है जैसे जिस समय वह लिखता या बोलता हो वह अपने सूक्ष्म शरीर द्वारा अन्य कार्य करता रहता हैं। जब रहस्यवादीको इतनी शक्ति प्राप्त होती है तो सिद्ध योगीका तो कहना ही क्या है जो सदा स्वरूपमें स्थित रहता है। वह ब्रह्ममें स्थित हो जाता हैं और जब व्यवहार करता हैं हो अपने मन और शरीरसे करण बनाकर काम लेता है। उसको

द्विरूपी चेतना होती है। अर्थात् ब्रह्म चेतना भी होती है और संसारकी भी। वह संसारको अपने ही अन्दर स्वप्नवत् देखता है। ईश्वर या सगुण ब्रह्मको निर्गुण ब्रह्मकी पूर्ण चेतना होती हैं। यही उसका स्वरूप लक्षण है। साथ ही साथ उसे पूर्ण विश्व चेतना भी होती है। वह जानता है कि प्रत्येक मनमें क्या हो रहा है। ज्ञानी सदा समाधिमें रहता है। राजयोगीके समान ज्ञानीको ऐसा नहीं होता कि वह कभी समाधिमें रहे और कभी समाधिसे बाहर।

७—ज्ञान योगका सार

ज्ञानमें पूर्व या पश्चिम, उदय और अस्त, वृद्धि और क्षय, बैठना या खड़े होना, जीवन या मृत्यु, कार्यरूप चेतना या स्वप्नावस्था, बोलना या लेक्चर देना, विचार करना या जानना, प्रकाश या अन्धकार कुछ नही है। ज्ञानियोंके आत्मामें कर्ता, कर्म और करण तीनो एक ही रूप भासते हैं। यह कितनी उन्नत अवस्था है। यह बड़ी अद्‌भुत हैं विस्मय जनक है। मनुष्य बिल्कुल वाणी रहित हो जाता है। इसका वर्णन शब्दोंमें कभी ठीक २ नहीं किया जा सकता।

जब तक आनन्द-पूर्ण ज्ञानका उदय न होवे आपको निरन्तर और तीव्र साधना करनी चाहिये। यद्यपि आप इस शरीर और संसारको देखते हो, परन्तु वास्तवमें इनकी सत्ता है नहीं। अपनी आत्मस्थितिसे तनिक भी विचलित न होवो। निरन्तर यही विचार करो कि आप सर्वव्यापी आत्मा (चिदाकाश) हो। यदि आप मशीन गनके मुंहपर भी खड़े हो तो भी सोऽहं सोऽहं, अहम् ब्रह्मास्मिका उच्चारण करो। सिंहके समान गर्जना करो। भय उसी समय आता है जब आप अपनेको इस नश्वर मांसके शरीरसे अभिन्न मानते हो। यदि आप उन्नत, नित्य, अमर आत्मासे एकीरूप मानो तो आप तुरन्त ही बिल्कुल निर्भय हो जाओगे। भय अज्ञानीके मनका एक काल्पनिक विकार है।

अपना केन्द्र मालूम कर लो। उसीमें स्थिर रहो। वह केन्द्र आत्मा या ब्रह्म है या वह एक ही सत्य है जो अनन्त कालसे हृदयमें प्रकाश कर रहा है। यदि आप अपने केन्द्रमें स्थित रह सकते हो तो कोई कष्ट या दुःख, हानि या निराशा, शोक या खेद आप पर प्रभाव डाल कर आपको अपनी साम्यावस्थासे नहीं हटा सकता।

यदि आप अपनेको उस अनन्तके साथ मिलाकर रख

सको तो आपका मन साम्यावस्थामें रहेगा। कोई वस्तु आपको चोट नहीं पहुंचा सकती। क्यों कि आप आत्मा से अभिन्न बने रहोगे इसलिये सदा प्रसन्न रहोगे। आप सबसे ऊंचे आत्मामें स्थित होगे। यद्यपि मंसूर और शम्सतबरेज सूफियोंकी ज़िन्दा ही खाल खिचवाई गई थी उनको कोई दुःख नहीं मालूम हुआ।

उन्होंने अनल्हक्का उच्चारण किया अर्थात् 'मैं वही हूं।' उनके रक्तकी एक २ बून्द जो गिरी उससे भी अनल्हककी ध्वनि आती थी। वह हमेशा आत्मानन्दमें रहते थे। इस आश्चर्यको देखो। ये सच्चे ज्ञानी हैं। उन्होंने अपनी शक्ति और आत्म-ज्ञान दिखाया था।

छोटीसी मछली पकड़नेकी डोंगी नदीकी साधारण लहरोंमें भी बड़ी बुरी तरह इधर उधर पटकी जाती है। परन्तु बड़ा जहाज अचल खड़ा रहता है चाहे बड़ी उत्ताल तरङ्गे वेगके साथ इससे टकरावें। वैसे ही चंचल मनवाला ससारी मनुष्य रागद्वेपकी छोटी २ लहरोंसे भी इधर उधर चलायमान रहता है, और साम्ययुक्त शांत मनका जीवन्मुक्त संसारमें बिल्कुल अचल रहता है और उसे दुःख शोकरूपी लहरें तनिक भी नहीं डुलातीं। वह सदा शान्तिपूर्वक आत्माकी न्तर निस्तब्धतामें

विश्राम करता रहता है।

यदि आपका मन जल्दी ही उद्विग्न हो जाता है तो आप अपने नित्यका कर्तव्य भली प्रकार नहीं कर सकोगे। आपको मनको समत्वमें रखनेकी क्षमता होनी चाहिये। नेत्र मूंद लो। उस दिव्य स्रोतमें गहरा गोता लगाओ। उसकी सत्ताको अनुभव करो। सदा उसका स्मरण रखो। उसकी महिमाका वर्णन करो। काम करते हुए भी उसीका नाम गाओ। आपको असीम आत्मिक शक्ति मिलेगी। लोगोंसे मिलने जुलनेसे पहले प्रातःकालमें ध्यान करो। जो हजारों चीजें आपको नित्यके जीवनमें उत्तेजना दे सकती हैं उनसे ऊपर उठो। तभी आप शान्ति पूर्वक प्रतिदिन विस्मयजनक कार्य कर सकते हैं।

बृहदारण्यक उपनिषत्में लिखा है "जो मनमें रहता है जिसको मन नहीं जानता, जिसका शरीर मन ही है जो अन्दरसे मनपर शासन करता है वह तुम्हारा आत्मा, अन्तर्यामी, अमर है।" मन जड है, यह अपना प्रकाश अन्तरात्मासे लेता है, जैसे चुम्बकके आगे लोहेका टुकड़ा नाचता है वैसे ही इस अन्तर्यामीके आगे यह मन नाचता है। यह खेलता है, सोचता है कल्पना करता है अनुभव करता है ठीक उसी तरह जैसे राजाकी मौजूदगीमें प्रधान मन्त्री

खेलता और काम करता है। मन तो मांगे हुए गुणोंसे ही प्रकाश करता है। यह चैतन्य सा प्रतीत होता है। यह मन जो अन्धकारमें टटोलता हैं, हर एक मिनटमें बदलता रहता है, महत् तत्वसे जिसकी उत्पत्ति हैं और प्रकृतिमें जिसका क्षय है, यह चैतन्य कैसे कहा जा सकता है।

ज्ञानके द्वारा मोक्ष आता है। "मैं कौन हूं" इसके विचार द्वारा ज्ञान आता है। अथवा उपनिषदोंके महावाक्य "तत्वमसि"का तात्पर्य समझनेसे ज्ञान मिलता है। यह दोनों एक ही है।

जैसे स्फटिकमें सातों रंग भासते हुए भी वह उनसे निर्लिप्त रहता है इसी प्रकार आत्मा भी मनकी क्रियाओंसे निर्लिप्त रहता है। राग-द्वेष, सुख दुःख, कर्त्तापन और भोक्तापन यह सब मनके धर्म हैं। आत्मा साक्षी और असंग (निर्लेप) रहता है।

ज्ञानावस्थाको समझना बड़ा कठिन हैं। यह बड़ी उन्नत अवस्था है जिसमें सारे तत्व स्वयं ही गिर जाते हैं और केवल चिदाकाश ही भासता है। यह चैतन्य अवस्था है जो प्राकृतिक दृश्यों और सौन्दर्यके आनन्दसे भी अतीत है। पुष्पवाटिकाओं, नदियों, भीलों, हिमा–

च्छादित पर्वतों, हरे २ जंगलोंका सौन्दर्य सब कुछ मायाकी कारीगरी है। यह हमारी आंखों पर पर्दा डाल देती है और हमें आत्माका अनन्त सहज सौन्दर्य देखनेसे रोकती है। पक्षियोंका मधुर गान भी मायाकी रचना है। यह हमें मधुर प्रणव ध्वनि सुननेसे रोकती है। वह निर्वाण दशा जो प्रकृतिसे भी अतीत है वही ज्ञाना-वस्था है।

मैं पद्मासन पर बैठ गया और आत्माका ध्यान करने लगा। मैं अपनेको भूल गया और अन्य सब वस्तुओंको भूल गया। मैंने कोई चीज ऐसी देखी जो पहले कभी नहीं देखी थी। मैंने ऐसा नाद सुना जो इससे पहले कभी नहीं सुना था। ऐसा एक भावना और ज्ञान हुआ कि मैं सारी ममताओंसे नितांत मुक्त हो गया। मुझे नवीन ज्ञान का अनुभव हुआ। कुछ काल तक आत्माका विचार बना रहा। मुझे शुद्ध आनन्दका भी नया अनुभव हुआ। इस संसारकी ऊंचाइयों और नीचाइयोंसे रहित यह प्रकाश, ज्ञान और आनन्दसे पूर्ण आकाश है।

सूर्यमें दोष कौन देखता है कि वह तेजसे चमकता है या बादलोंसे ढका हुआ है। यह नेत्रका काम है। नेत्रका दोष कौन देखता है कि इसमें तिमिर रोग है या नहीं?

बुद्धि देखती है। बुद्धिका दोष कौन देखता है कि यह निर्मल है या मोहमें है। बुद्धिको कौन प्रकाश देता है? अहम् या अनन्त मैं। यह अहम् कूटस्थ आत्मा या ब्रह्म है जो सब पदार्थोंको प्रकाश देता है।

स्वप्नमें कौन प्रकाश करता है? वहां कोई दूसरी रौशनी नहीं होती। मन तो स्वयं-प्रकाश नहीं है। यह जड़ है। ब्रह्म ही स्वप्नमें सारे पदार्थोंको प्रकाश देता है।

मान लो, रातमें बड़ी तेज रौशनी हो रही है। तुम कुछ दूरीपर खड़े हो और तुम्हारे और रोशनीके बीचमें कोई रुकावट है जिससे आप रौशनीको नहीं देख सकते। यद्यपि आप ज्योतिको नहीं देख सकते परन्तु पदार्थोंको देखकर ही आप निश्चय कर लेते हो कि कोई बड़ा प्रकाश अवश्य होगा। इसी प्रकार इस प्रकृतिके पीछे भी कोई स्वयं-प्रकाश ज्योति अवश्य होगी। वह ज्योतियों-की ज्योति इस जगतका अधिष्ठान है।

जब मन एक वस्तुसे दूसरीकी ओर दौड़ता है तो वह बीचकी अवस्था जिसमें आप अति सूक्ष्म कालके लिये भी अमना हो जाते हो वही स्वरूप स्थिति है। वह ब्रह्म है।

रचनाका भाव ही बताता है कि कोई रचनेवाला अवश्य होगा। जड़ पदार्थोंका भाव बताता है कि आत्मा

अवश्य होगा। परिवर्तनका भाव बताता है कि कोई अविकारी वस्तु अवश्य होगी। विकारयुक्त मनका अस्तित्व ही अविकारी साक्षी और मनके नियामकके अस्तित्वको बताता है।

अपनी निर्भीक शक्ति और अथक प्रयत्नोंके द्वारा ही आप ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर सकते हो। गुरु और शास्त्र आप को मार्ग दिखाकर शंकायें दूर कर सकते हैं। अपरोक्ष अनुभव तो स्वयं आप ही कर सकते हो। भूखे मनुष्यको अपने आप ही खाना पड़ेगा। जिसे बड़ी तेज़ खुजली हो उसे अपने आप ही खुजलाना पड़ेगा।

केवल खांडका बना हुआ एक नारियल होता है। उसमें निशान, रेखायें, बाहरका खोपरा, किनारे, आंखें और सब चीज़ बनी होती है। लेकिन आपके मनमें आन्तरिक भाव होता है कि यह केवल खांड ही है। इसी प्रकार यद्यपि आप संसारके विभिन्न पदार्थोंको देखते हो तो भी आपको एक भाव और निश्चय आत्माका होना चाहिये कि सारे पदार्थोंकी जड़में यही है, अन्तिम और प्रत्येक वस्तुका सार यही है।

आप उस आमके वृक्षकी पत्तियों, टहनियों, फूलों और फलोंको क्यों देखते हो? उसके उद्गम रूप बीजको

देखो। कपड़ा भी केवल रुई और डोरा है। कपड़ेको रुई समझो। इसी प्रकार आत्मा या ब्रह्मको भी संसारमें ही देखो।

तस्वीरमें बनी हुई अग्नि किसी चीज़को नहीं जला-वेगी। दोपहरके सूर्यके सामने कोई अन्य ज्योति नही चमकेगी और न अपना प्रकाश डालेगी। इसी प्रकार सात्विक पुरुषका अहंकार किसीको हानि नही पहुचा सकता।

जब आप कोई वस्तु अपनी आंखसे देखते हो तो आप जानते हो कि आप सूर्यके प्रकाशके द्वारा देख सके हो। आपकी दो दृष्टियां होती हैं। इसी प्रकार जब ज्ञानी व्यवहार करता है तो उसकी दो दृष्टिया होती हैं। वह काम करता हुआ भी जानता है कि वह कुछ नही करता है, वह अनासक्त है, वह दुनियाको देखता हुआ भी केवल ब्रह्म ही देखता है।

जब आप लकड़ीका बना हुआ खिलौना—हाथी देखते हो और उसे हाथी मानते हो तो उस खिलौनेने लकड़ी रूप तत्वको ढक लिया होता है। उसी प्रकार इन नाम और रूपोंके पीछे असली तत्व ब्रह्मको नाम और रूपोंने ढक लिया है। जो भ्रान्ति मनमें अनादि कालसे जमी हुई

है उसको दूर कर दो। यह लकड़ी है। हाथी नहीं है।
इसी प्रकार यह ब्रह्म है संसार नहीं है। यह आत्मा
शरीर नहीं है। वेदान्तमें यह अपवाद युक्ति कहलाती है।
मिथ्या वस्तुओंको त्यागनेके उपरान्त जो बाकी बचता है
उसे निकाल लो।

तीनों कालमें भी मिट्टी सत्पदार्थ है, घड़ा असद्वस्तु है।

छान्दोग्य उपनिषद्में कहा है—"वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्" अर्थात् केवल मिट्टी ही सत्य है। इसके विकार घट आदि कहने मात्रके ही लिये होते हैं। इसी प्रकार केवल ब्रह्म सत्य है वही नित्य वस्तु है जो आदि अन्त और विकारसे रहित हैं। शरीर, मन, इन्द्रियां और संसार ये सब विकार नितान्त मिथ्या है। वह केवल नामके ही हैं। सारे मिट्टीके बर्तनोंमें मिट्टी ही देखो, सारे पदार्थोंमें आत्मा ही देखो।

जब ज्ञानके द्वारा सारी कामनाओंसे रहित होकर मन अपने सूक्ष्म रूपका भी नाश कर देता है तब जो आनन्द उत्पन्न होता है वही सच्चा आनन्द है।

जब आत्माको एक बार साक्षात्कार कर लिया जावे तो यह कभी नहीं भूला जा सकता। आत्माकी पहचान का अङ्क यदि एक बार बन जावे तो फिर मनसे कभी

नहीं मिटाया जा सकता। यह सदा ही मनमें बना रहता है।

केनोपनिषत्‌में बताया है "कि जिसे मनुष्य मनके द्वारा सोच नही सकता परन्तु जिसे ज्ञानी जन बताते हैं कि उसके द्वारा मन सोचनेके लायक बनता है केवल उसको ही ब्रह्म जानो।" मनकी विचार शक्ति है परन्तु उसे अन्तरात्मा या ब्रह्मसे प्रकाश मिलता है और उसके द्वारा ही मन क्रियाशील बनता है। जिन्हें आत्म-साक्षात्कार हो चुका है वे बताते हैं कि मनमें ब्रह्म व्याप्त है। मन तो भिखारी है। यह स्वयं—ज्योति आत्मासे अपना प्रकाश और बुद्धि लेता है।

काल, देश और वस्तु ये तीन मनके लक्षण है। प्रत्येक पदार्थके तीन परिच्छेद हुआ करते है। जैसे अंगूर एक ऋतु विशेषमें मिल सकते हैं और विशेष २ स्थानोंमें ही मिलते हैं। यह अंगूरका देशकाल परिच्छेद हुआ। इसका वस्तु परिच्छेद भी होता है जैसे आपको आमके वृक्षमें अंगूर नहीं मिल सकते। परन्तु सच्चिदानन्द ब्रह्मकी सत्ता इन तीनो परिच्छेदोंसे रहित है, क्योंकि ब्रह्म नित्य, अनन्त और सब वस्तुओंका सार तथा अधिष्ठान है।

एक अंग्रेज़ हिन्दुस्तानीसे भिन्न होता है। यह स्वजातीय भेद है। वृक्ष पत्थरसे भिन्न है। यह विजातीय भेद है। वृक्षके फूल, फल और पत्तियोंमें भेद होता है। हाथ, पांव, बांह और टांगमें भेद होता है यह स्वगत भेद है। ब्रह्ममें ये तीनों प्रकारके भेद नही हैं। कोई दूसरा ब्रह्म नहीं हो सकता क्योंकि अनन्त वस्तु एक ही है। इसलिये उसमें स्वजातीय भेद नहीं है। संसार ब्रह्मसे निकला है। यह भ्रमात्मक है, इसलिये यह ब्रह्ममें विजातीय भेद नहीं दिखा सकता। संसार स्वयं ब्रह्म हैं, सत् चित् आनन्द तीन वस्तु नहीं एक ही है। पानी और जलके समान यह शब्द भेद ही है। सत् चित् है, चित् सत् है, चित आनन्द है। इसलिये स्वगत भेद ब्रह्ममे नही है। भेद एक मानसिक रचना है जो देश, वर्ण, आकार आदिसे उत्पन्न होता है।

यदि कोई वस्तु ऊपर कहे हुए तीनों प्रकारके परिच्छेदों और तीनों प्रकारके भेदोंसे रहित हो तो वह अखण्ड कहलाती है। उसको आप अखण्डत्व लक्षण दे सकते हो। यह लक्षण केवल ब्रह्मके लिये ही लागू होता है।

जिस वस्तुको अपना ज्ञान नहीं होता और दूसरी वस्तुओंका भी ज्ञान नहीं होता वह जड़ कहलाती है।

चैतन्य, चित् या चेतन अपने आप भी प्रकाशवान् होती है और दूसरी वस्तुओंको भी प्रकाशित करती है। यह अन्दर तो मन, बुद्धि और इन्द्रियोंको भी प्रकाशित करती है और बाहर सूर्य, चन्द्र, तारागण, विद्युत, अग्नि आदि को भी प्रकाशित करती है। केवल ब्रह्म ही चैतन्य वस्तु है। मन, बुद्धि इन्द्रिया तथा अन्य सब वस्तु जड हैं।

जब कोई विचार मनमें उठे तो पता लगाओ कि यह वृत्ति क्यों उठी है? इसका सम्बन्ध किससे है? मैं कौन हूं? अन्य सारे विचार शान्त हो जावेंगे। सारी मानसिक क्रियायें बन्द हो जावेंगी। मन अन्दरकी ओर मुड़ जावेगा। यह आत्मामें विश्राम करेगा। यह वेदान्ती साधन है; जब कभी इधर, उधरके विचार उठने लगे तो आपको इसी साधनको बार बार करना होगा। "मैं कौन हू' इसी एक विचारसे सारे अन्य ससारी विचार नष्ट हो जावेंगे। यह एक विचार भी स्वयं ही नष्ट हो जावेगा। जो बचता है वह केवल 'अस्ति' चित् मात्र, केवल शुद्ध चैतन्य है, चिदाकाश मात्र है, जो नाम रूप रहित है। जो व्यवहार रहित, मलवासना रहित, निष्क्रिय, निरवयव है जो माण्डूक्य उपनिषत्का शान्त, शिव, अद्वैत है। वह आत्मा है। उसे ही जानना चाहिये।

जब मनुष्यको दृढ़ निश्चय हो जावे कि नाम और रूप मिथ्या है और उनके पीछे अधिष्ठान ही सत्य है, तब कहा जाता है कि उसका दृष्टिकोण बदल गया है।

अन्तर्मुख वृत्ति, बदला हुआ दृष्टिकोण, वैराग्य और मुमुक्षत्व वाला मनुष्य ही वेदान्तके स्वाध्याय, ॐ के अभ्यास और ज्ञान योगके विचारके योग्य होता है। ऐसा ही मनुष्य सच्चा लाभ प्राप्त कर सकता है।

मनकी कल्पना सच्ची योगमाया है। आपको इन विविध कल्पनाओंको नष्ट करना होगा। सारी आध्यात्मिक साधनाओंका यही ध्येय हैं। तब आप निर्विकल्प आनन्द अवस्थामे स्थित हो जाओगे। जब निष्काम कर्म योगके द्वारा चित्त-शुद्धि हो जावे तब इस अवस्थाको प्राप्त करनेके लिये शुद्ध निवृत्तिकी जरूरत होती है।

जो ब्रह्म पर अपना मन लगानेका प्रयत्न कर रहा है वह सबसे ऊचा कर्मयोग, सबसे ऊंचा यज्ञ, सबसे ऊंचा धर्म और उत्तम दान कर रहा है उसे तीर्थों पर जानेकी जरूरत नहीं है। उसे दान देनेकी जरूरत नहीं हैं।

ज्ञान मौन वह अवस्था है जिसमें मन ब्रह्म, आत्मा, या स्वरूपमें लीन रहता है। इस अवस्थामें 'मैं' का जरा भी चिन्ह बाकी नहीं रहता, क्योंकि मानसिक क्रिया

नहीं होती और कर्त्ता भी नही होता, इसलिये सारे कर्म ज्ञानाग्निमें भस्म हो जाते हैं। जीवको प्रतीत होता है कि वह पांचों कोषोंसे बिल्कुल भिन्न है क्योंकि वह आत्मासे तादात्म्यका अनुभव करता है। यह ज्ञानाग्नि है।

जब आप रेलवे स्टेशनपर अपने किसी मित्रसे मिलनेकी आशामें होते हो तो समान रूप-रेखावाले कई अन्य पुरुषोंमें मन उसे देखनेकी चेष्टा करता है, क्योंकि मन एक निर्दिष्ट समयपर एक मित्र विशेषसे मिलनेके एक ही विचारमें संलग्न है। मन उससे मिलनेको बडा उत्सुक होता है। एक कामुक युवक लकड़ीके स्तम्भ पर रंगीन वस्त्र लिपटे होने पर स्त्रीको ही देखता है। उसका मन बड़े बलवान् कामुक विचारोंसे परिपूर्ण होता है। इसके विरुद्ध भगवत्प्रेमका मतवाला वृक्ष, पत्थर, बालक, लड़का, लड़की, गौ, कुत्ता आदि सब वस्तुओंमें परमात्माको ही देखता है। 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म।'

जब पानी सूख जाता हैं तो पानीमें सूर्यकी छाया भी लोप हो जाती है। इसी प्रकार जब सारे संकल्पों और वासनाओंके क्षीण हो जानेसे मानस-सरोवर सूख जाता है तो चिदाभास चैतन्यकी छाया का भी लोप हो जाता

है। 'जीवात्मा' नाम चला जाता है। अहम्भाव भी जाता रहता है।

मुक्ति मनके लिये होती है। मुक्ति प्रकृतिके लिये होती है। जीवके लिये नहीं। जीव तो पहले ही से ब्रह्म है। उसका ब्रह्मके साथ सारूप्य है।

इन्द्रियजन्य सुखसे बुद्धिजन्य सुख उत्तम है। ध्यान जन्य सुख बुद्धिजन्य सुखसे उत्तम है। आध्यात्मिक सुख जो आत्म-साक्षात्कारसे प्राप्त होता है वह अपरिच्छिन्न, अपरिमेय और असीम होता है। यह आनन्दघन होता है।

आसक्ति, प्रेम, और आनन्द ये सब साथ २ चलते हैं। आप अपनी स्त्री और सन्तानमें आसक्त रहते हो। आप उन्हें प्रेम भी करते हो क्योंकि वे आपको आनन्द देते हैं। यह संसार भ्रममूलक है और भ्रान्तिसे ही दुःख सुखके समान भासता है, इसलिये आप सारे संसारी ममत्वको निर्दयतासे काट कर अपना प्रेम और आसक्ति उस तत्व पदार्थ अधिष्ठान रूप ब्रह्मकी ओर लगाओ जो मन और सारे पदार्थोंके पीछे रहता है और जो बुद्धिमें होनेवाली सारी क्रियाओंका साक्षी है।

'तत्वज्ञान' मनुष्यके अपने ही मनके दुःखोंसे छुटकारा पाना है। यही छुटकारा मोक्षकी ओर ले जाता है।

आप आधे सेकण्ड, निमेष मात्रके लिये भी ब्रह्म चिन्तनको बन्द मत करो। आप निदिध्यासनपरायण हो जाओ अर्थात् आपका एक-मात्र आश्रय अर्थ और भाव सहित प्रणवका ध्यान होना चाहिये। तभी ब्रह्मज्ञानका होना सम्भव है।

"अहम् ब्रह्मास्मि" भावनाको धारण करके आपको जीव भावनाका नाश कर देना होगा। जीव भावना व्यावहारिक बुद्धिसे बनती है। शुद्ध बुद्धिका विकास करके आपको इस व्यावहारिक बुद्धिका नाश करना होगा।

जब ज्ञानी बाहर देखता है तब वह केवल देखता ही है, उसकी वृत्ति संसारी मनुष्योंके समान विषयाकार नहीं बनेगी। जैसे सुषुप्तिमें सबका मन किसी भी विषयाकार वृत्तिसे रहित होता है इसी प्रकार ज्ञानीका मन जाग्रत अवस्थामें भी विषयाकार वृत्तिसे रहित होता है। उसे जगत स्वप्नवत् भासता हैं। वह कार्य करता हुआ भी ब्रह्ममें ही रहता है।

वासना सहित मनका होना बन्धन है। कामनाओंसे रहित मन मुक्त है। सच्चा आनन्द आपके ही अन्दर है। यह आत्मामें है। यह कर्तृ वाचक है। यह सत्व-

गुणमें है और सत्वसे भी अतीत है। मनके एकाग्र होनेपर प्रकट होता है। जब इन्द्रियां विषयोंसे रोक ली जाती हैं, जब मन एकाग्र होता है, जब वासनाक्षय और मनोनाश हो जाता है, जब आप कामनारहित और विचार रहित होते हो तो आत्मिक आनन्दका उदय होने लगता है। इससे हर्ष होता है। आप व्यर्थको बाहरी पदार्थोंमे धन, स्त्री, पद, सम्मान, नाम और यशमें जो मिथ्या हैं, निर्मूल्य हैं और गोबरके सदृश हैं इनमें आनन्द क्यों खोजते हो। अपने हृदयके ही अन्दर आत्मामें ढूंढ़ो।

८—मनके साक्षी बनो

मनके नाटकके साक्षी मात्र रहो, मनके साथ लिप्त मत हो जाओ। आप केवल पदार्थोंको देख सकते हो। परन्तु साक्षी या कूटस्थ ब्रह्म मन, इसके विकारों, जीवात्मा और संसारके भिन्न-भिन्न पदार्थोंको देखता है।

आपको वृत्ति पदार्थके साथ बांधती हैं। आपका सारूप्य वृत्तिके साथ होता है और वृत्तिके द्वारा पदार्थके साथ। यही रहस्य है। मनकी वृत्तियोंके साक्षी बन जाओ फिर बन्धन नहीं रहेगा।

जब आप किसी मनुष्यको उदर शूलसे पीड़ित देखते हो तो आपको पीड़ाका अनुभव नहीं होता परन्तु जब आपके ही वह उदरशूल होता है तो आपको तीव्र वेदना और दुःख होता है आप चिल्लाते हो। क्यों? अहंकारके कारण आप अपनेको शरीरके साथ सारूप्य बना लेते हो। यदि अहंकार नहीं होवे तो आपको दुःखका अनुभव नहीं होगा। यह अहंकारहीनता तभी आ सकती है, जब आप व्यक्तित्व छोड़कर साक्षी बन जाओ और अपना सारूप्य ब्रह्मके साथ बना लो।

"मैं न तो शरीर हूं, न मन ही हूं, न प्राण और न इन्द्रियां हूं। मैं इनसे निराला हूं। मैं इनका और इनकी क्रियाओंका साक्षी हूं। मैं सच्चिदानन्द स्वरूप हूं।" वेदान्ती निर्गुण ध्यानके लिये यही पर्याप्त है। आप तुरन्त ही महिमाके उन्नत पदपर उठ जाओगे। यह सबसे उत्तम विधि है।

यदि उपरोक्त विधि पर आपका दृढ़ निश्चय हो जावे तो यह परोक्ष ज्ञान कहलाता है। यदि ध्यानके द्वारा आप वास्तविक अनुभव प्राप्त कर लो तो यह अपरोक्ष ज्ञान कहलाता है।

यदि आप शरीर चेतनासे ऊपर जाओ, शरीरभावको

त्याग दो, यदि मन आपमें स्थित हो जावे तो आप: निःसन्देह सुखी, शान्त और मुक्त हो।

मनमें एक पीछेको पलट जानेकी शक्ति होती है जिससे यह अपनी ही गहराइयोंमें देख सकता है। राज-योगी इस शक्तिका विकास कर लेता हैं। अन्तर्निरीक्षण :इस यौगिक शक्तिके बनानेमें सहायता देता हैं। एक निस्तब्ध अंधेरे कमरेमें अभी आजसे ही चले जाओ। सतर्क होकर मन पर दृष्टि रखो। धैर्यवान् बनो। अपनेको मनके साथ मत मिलाओ। साक्षी रहो। अपनेको पृथक् रखो। आप विविध मानसिक अवस्थाओं-को अपरोक्षमें देख सकते हो।

६—कहो मैं ईश्वर हूं

त्रुटि, अपूर्णता. दुर्बलता, हीनताके प्रत्येक विचारको घोट दो। यदि भोजन नहीं मिले, पहिननेको कपडा नहीं मिले, असाध्य रोगसे भी ग्रसित हो तो भी दृढ़तासे इन भावोंसे चिपटे रहो कि 'मैं ईश्वर हूं। मैं पूर्ण हूं। मेरे पास सारे पदार्थ हैं। मैं पूर्ण स्वस्थ हूं, मैं पूर्ण आनन्द हूं। याद रखो कि यह आपका ठीक मानसिक भाव होना चाहिये। स्वभावतः जैसा आप सोचते :हो वह

एक नमूना बना देता है जिसे जीवनकी प्रक्रियायें बुनती रहती हैं।

आप काम क्रोधादिसे क्यों डरते हो? ये आपके सेवक हैं। आप सच्चिदानन्द आत्मा हो। आत्माकी विशालता और महिमाको बारम्बार कहो।

"मैं वह आत्मा या ब्रह्म हूं जो एक, चिदाकाश, अखण्ड और सर्व भूतोंका अन्तरात्मा है।" इस भावमें सारे प्रयत्नोंसे स्थित होनेकी चेष्टा करो, तो मनकी चंचलता दूर हो जावेगी। तब आपको नित्य सुख मिलेगा। आप जीवन्मुक्त हो जाओगे। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

जब आप ॐकारका ध्यान करोगे और प्रातःकालीन ध्यानमें अपनेको ब्रह्म भावना दोगे तो आपको अद्भुत शक्ति मिलेगी। जिस साहसकी आध्यात्मिक मार्गमें उन्नतिके लिये आवश्यकता होती है, इससे वही साहस प्राप्त करनेमें सहायता मिलती है। तितिक्षा और साहसके द्वारा सत्य मार्गपर बहुतसी कठिनाइयोंको पार करना होगा। ये गुण साहसके ही रूप हैं। तितिक्षाकी मानसिक शक्तिको साहस कहते हैं। संकटका सामना करनेमे दृढ़ता ही साहस है। यह प्रतिबन्धकी शक्ति है।

जब आप याद करोगे कि आजका दुष्ट भविष्यका सन्त है और उसमें सम्भावित रूपमें सारे दिव्य गुण मौजूद हैं तो आप प्रत्येक मनुष्यको प्यार करने लगोगे। शनैः शनैः घृणा जाती रहेगी। केवल समय आने पर ही दुष्ट अपना सात्विक विकास करेगा।

१०—प्रतिपक्ष भावना

चिन्ता और भयके विचार हमारे अन्दर भयानक शक्तियां हैं। वह जीवन स्रोतको विषैला कर देते हैं और शरीरकी शक्ति, बल, सामर्थ्य और मेलको नष्ट कर देते हैं। जब कि प्रसन्नता, आनन्द और साहसके विचार इन शक्तियोंकी पुष्टि और वृद्धि करते हैं और मानसिक बलको भी बढ़ाते हैं। सदा प्रसन्न रहो, मुस्कुराते रहो, हंसते रहो।

प्रत्येक विचार या भावना शरीरके प्रत्येक ममंमे एक बलवान स्पन्द उत्पन्न करती है, उसका दृढ़ अङ्क छोड़ती है। यदि आपको उसके विपक्षी विचार बनानेकी रीति मालूम हो तभी आप शान्ति और शक्तिपूर्ण आनन्द एक रस जीवन व्यतीत कर सकते हो। प्रेम भाव तुरन्त ही घृणाके विचारको बेकार कर देगा। साहसका भाव तुरन्त ही भयपूर्ण विचारको दूर कर देगा।

जब शरीरके मर्मोंमें दूषित विचार, चिन्ता, भय, घृणा द्वेष और कामुक विचारोंके कारण रोग, अनमेल या असामञ्जस्य होते हैं तो आप इनसे विष दूर कर सकते हो और उन्नत, जीवनदाता, आत्माको जाग्रत करनेवाले, सात्विक दिव्य विचारोंके द्वारा, ॐकार उच्चारणके स्पन्दों द्वारा, भगवानके अनेकों नामोंके उच्चारण, कीर्त्तन, प्राणायाम, गीता स्वाध्याय और शास्त्रोंके स्वाध्याय, ध्यान आदिके द्वारा शान्ति, मेल, स्वास्थ्य और नवीन शक्ति स्थापित कर सकते हो।

११—मनका निग्रह कैसे किया जावे

(क्रियात्मक साधक)

मनमें सुखकी इच्छा बनी रहती है। आपको अतीव सतर्क रहना चाहिये। मन सुख चाहता है और आरामके साथ ही काम करना चाहता है। आपको इस स्वभावको रोकना चाहिये।

जो स्वेच्छासे प्राप्त हुई वस्तुओंसे सन्तुष्ट नहीं हैं वे केवल दुर्बल मनवाले हैं। मनका सन्तोष अति महान गुण है। सन्तोषसे आपको बडा लाभ होगा। मोक्षके विशाल साम्राज्यके चार चौकीदारोंमें से एक सन्तोष है। यदि

आपमें सन्तोष है तो यही सत्सङ्ग, विचार और शान्ति प्राप्त करा देगा।

मनको दासत्वसे छुड़ा लेनेपर ही सच्ची मुक्ति मिलती है। यदि मन सारे मलों और संसारी संसर्गों से शुद्ध हो जावे तो यह अत्यन्त निश्चल हो जावेगा। इसकी सारी चंचलता बन्द हो जावेगी। परम निष्ठा प्राप्त होवेगी। तब सारा संसारी भ्रम अपने जन्म मृत्यु रूपी अनुचरों सहित नष्ट हो जावेगा, तब आपको परमधामकी प्राप्ति होगी।

ज्ञानी ऋषियोंके द्वारा बताई हुई मनके रोग दूर करनेके लिये सर्वश्रेष्ठ अचूक औषधि मनके ही द्वारा प्राप्त हो सकती है। आपमें मनको साधनेकी क्षमता होनी चाहिये। शेर या चीतेको साधना मनको साधनेसे कहीं सुगम है। पहले अपने मनको साध लो। तब आप दूसरोंके मन भी सुगमतासे साध लोगे। जो वैराग्यका अभ्यास करते हैं सच्चे अर्थों में वे ही मनको साध सकते हैं। वस्तुओंके लिये कोई इच्छा मत रखो। उनसे बचो। वैराग्य मनको दुर्बल बना देता है। यह मनका, बड़ा भारी शोधक है। जब मन-चोर, वैराग्य, त्याग, संन्यास शब्दोंको सुनता है तो कांपने लगता है। इनका नाम-मात्र ही सुननेसे उसको प्राणान्तकारी आघात पहुंचता है।

जो मनुष्य पदार्थोंकी इच्छा किये विना उनसे बचे रहते हैं वे ही मनका निग्रह करनेवाले कहलाये जा सकते हैं।

जो अपने आत्माके अन्तर्गत वैराग्यका सुगमता और सुखपूर्वक विकास नहीं करते वे मनुष्य रूपमें अन्नके नाशक जन्तु हैं।

यदि मनको 'मैं' के सारे संकल्पोंसे हीन कर दिया जावे तो गुरुसे दीक्षा प्राप्त करके आत्म-चिन्तन के द्वारा और वेदोंके तत्वको जानकर मनको विविध दुःखोंकी ओरसे मोड़ा जा सकता है और कर्तृवाच्य आनन्दपूर्ण आत्मापर आश्रित किया जा सकता है।

जो मोक्षके चाहनेवाले है, जिन्होंने अजेय कामनाओं-को नष्ट कर दिया हैं और जो अपने ही प्रयत्नों द्वारा मोक्ष तकका मार्ग तय करनेकी चेष्टा करते हैं उनके लिये इस दुःखप्रद मनको त्याग देना ही उनका ऊर्ध्वगामी पथ हैं और तव उनको ज्ञान होता है जैसे उनके सिरसे वड़ा भारी वोझ हट गया हो, और कोई मार्ग सच्चा लाभकारी नहीं है।

मनसे प्रत्येक वस्तुका त्याग कर दो और आत्मज्ञान प्राप्तिके द्वारा मनको नष्ट कर दो। स्वयम्भू ब्रह्म पदमें

स्थित हो जाओ। निर्भीक शाक्तके द्वारा ही दुःखरहित मोक्षकी निधि प्राप्त हो सकती है।

यदि सारे सुन्दर दिखनेवाले पदार्थ आंखका कांटा बन जावें और उनके प्रति पूर्वके भावोंके विरोधी भाव पैदा होने लगें तब जान लो कि मनका नाश हो गया है। जब मन बदल जाता है तो जो पदार्थ पहले आनन्द देते थे वे ही दुःख देने लगेंगे। मनको मारनेका यही चिन्ह है।

यदि ब्रह्म-ज्ञान के द्वारा सारे संशय दूर हो जावें तो मनका नाश हो जावेगा। सारे दुःख, क्लेश, पीड़ा, शोक, मनके नाशके साथ ही बन्द हो जावेंगे।

यह मनुष्य और वह मनुष्य, तुम और मैं, यह वस्तु और वह वस्तु इस प्रकारके भेदके विचार मनसे ही सम्बन्ध रखते हैं। अभावनाकी तलवारसे इस मनका अन्त कर दो। जैसे तेज हवास गहरे बादल फट जाते हैं वैसे ही कल्पनाओंके नाश होनेसे मन चित् (अर्थात् परम चेतना) में लीन हो जाता है।

पद्मासन या सिद्धासनसे बैठ जाओ। आंखे बन्द कर लो। दृष्टिको त्रिकुटीपर जमा लो। अब बलसहित पांच मिनट तक दीर्घ प्रणवका उच्चारण करो। यह मनका विक्षेप दूर कर देगा। अब धारणा प्रारम्भ हो जावेगी।

अब ब्रह्म भावनासे ॐकारका मानसिक जप करो। जब कभी मन भागने लगे तो फिर ॐकारका वाचक उच्चारण करो। जैसे मन निश्चल हो जावे फिर ॐकारका मानसिक जप करने लगो। यही क्रिया सगुण ध्यानके लिये भी की जा सकती है।

जो विक्षेपके ससर्गसे प्रभावित नही होता ऐसे मनका मिलना बड़ी अनुपम बात है। जैसे अग्निसे ताप अभिन्न है, मनको गिरानेवाला विक्षेप भी इससे अभिन्न है। इस विक्षेपसे रहित होकर मनका अस्तित्व ही मिट जाता है। इसी विक्षेप शक्तिको निरन्तर आत्मानुसन्धानके द्वारा नष्ट कर देना चाहिये।

यदि मनको सारे विषय पदार्थोंके सुख केन्द्रोंसे शून्य कर दिया जावे तो यह वैराग्य और त्यागको ग्रहण कर लेता है और स्वभावतः आत्माकी ओर चलता है।

आध्यात्मिकताकी ओर की हुई चेष्टाओंके द्वारा मन ज्ञान-स्वरूप हो जाता है परन्तु अज्ञानके द्वारा संसारी स्वभावका हो जाता है।

अशान्त मनको शान्त करनेमें वाद्यका बडा अच्छा प्रभाव पडता है। अमेरिकाके चिकित्सक अनेक रोगोंको दूर करनेके लिये वाद्यका प्रयोग करते हैं और विशेषतया

स्नायु सम्बन्धी रोगोंके लिये। वाद्य मनको भी उन्नत करता है। नवधा भक्तिमें से कीर्तन भी एक प्रकार है। इससे भाव समाधि हो जाती है। यह सारे भारतवर्षमें प्रचलित है। यह ईसाइयोंके स्तुति भजन गायनके समान है। वङ्गालके रामप्रसादने कीर्तनके द्वारा ईश्वर साक्षात्कार किया था। उनके भजन वङ्गालमें अति प्रसिद्ध हैं। इस कलियुगमें परमात्माको प्राप्त करनेका सुगम उपाय कीर्तन है। निरन्तर भगवान् हरिके नाम गाते रहो। उनके गुणोंका गान करते रहो। आपको उनका दर्शन हो जावेगा, जो अच्छा गाना जानते हैं उन्हें एकान्तमे जाकर शुद्ध भावसे दिल खोलकर गाना चाहिये। समय पाकर उन्हें भाव समाधि हो जावेगी इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है।

अपने सात्विक मनके द्वारा आपको इस मनसे बचना चाहिये जो पदार्थों की ओर दौड़ता है, और ऊपरको उन्नति करते हुए, मनमें विना किसी प्रकार खेद किये हुए उस अविनाशी परमपदकी प्राप्तिके लिये तपस्याका धन इकट्ठा करना चाहिये। जैसे राजाधिराज पृथ्वीके सारे राजाओंको अपने वशमें कर लेता है ऐसे ही इस विक्षेप युक्त मनको अविचल मनके द्वारा संयत कर लेना चाहिये तब यह अपने परमपदको प्राप्त हो जावेगा।

गलीके कुत्तेके समान मनको इधर उधर मत फिरने दो। सदा इसको अपने वशमें रखो। तभी आप सुखी रह सकते हो। यह आपकी आज्ञा पूरी करनेके लिये सदा उद्यत रहना चाहिये।

यदि घोड़ोंकी लगाम आपके हाथमें हो तो आपकी यात्रा कुशल-पूर्वक होगी। इन्द्रिया घोड़े हैं। इन्द्रियों पर यदि आपका अधिकार होवे तो मोक्ष मार्गमें आपकी यात्रा सकुशल हो सकती हैं। मनकी सहायताके बिना इन्द्रिया कुछ नहीं कर सकती। इन्द्रिय निग्रहका अर्थ केवल मनका निग्रह हैं। विचारोंके संयमसे मन और इन्द्रियोंका भी निग्रह होता है। इससे अपार आनन्द और अमर जीवन मिलता है। विचारका संयम अनिवार्य है और सबके लिये अत्यन्त अपेक्षित है।

न्यायपूर्ण समालोचना और निन्दामें बड़ा भेद है। समालोचना निन्दा नही है। यह उचित है। यह अनिवार्य भी हैं। आप इससे तभी बच सकते हो जब आप अकेले सुदूर हिमालयकी गुफामें बन्द हो जाओ। यदि आपको मनुष्यसे घृणा नहीं है, यदि आप उससे द्वेष नहीं करते, यदि आप अपने मित्रसे बात-चीतमें उस मनुष्यके गुण और दोष बताते हो कि 'अमुक व्यक्ति खरा है प्रेम

करने वाला, दयालु नम्र, सत्यवादी है परन्तु वह बड़ा चिड़चिड़ा और तेज स्वभावका है।' तो यद्यपि आपने उस मनुष्यके दोष भी बताये परन्तु यह निन्दा नहीं है। निन्दा करनेमें आप किसी मनुष्यको बदनाम करते हो। आप केवल उसके दोष ही बताते हो। आप उसकी कमजोरियोंको बढ़ाकर कहते हो। विना पूछे ही अपनी इच्छासे प्रत्येक व्यक्तिसे यह दोष प्रकट कर देते हो। अपने हृदयके अन्दर आप उस पुरुषसे द्वेष करते हो। आप उसको बदनाम करना चाहते हो।

प्रत्याशा और परिग्रह मनमें दो वृत्तियां होती है जो आपको भिखारियोंका भी भिखारी बनाती हैं और आपकी इच्छा-शक्तिको नष्ट कर देती हैं। किसी वस्तुके लिये पहलेसे आशा मत वांधो। यदि विलासिता देने वाली कोई वस्तु मिलती भी है तो उसे तुरन्त ही छोड़ दो। इससे आप शक्तिवान् बनोगे। प्रारम्भमें मैं मनको बहुत ढील दिया करता था। यह मुझसे कहता था 'हमें प्रयागके कुम्भ स्नानके लिये जाने दो।' मैं कहता था 'मेरे प्यारे मित्र मन, तुम जा सकते हो।' जैसे ही मैं वापिस आता मैं पूछता था "कहो मन अब तो तुम सन्तुष्ट हो। तुमने वहां क्या आनन्द भोगा।' तब यह

छिप जाता और लज्जासे सिर झुका लेता था। धीरे-धीरे इसने अपनी पुरानी आदतोंको छोड़ दिया और यह मेरा सच्चा मित्र, पथ-प्रदर्शक और गुरु बन गया और परमपदकी प्राप्तिके मार्गमें मुझे अच्छी-अच्छी सलाह देने लगा।

यदि आपको मनके ऊपर पूर्ण वशित्व हो जावे और इन्द्रियोंका दमन करके तथा अहङ्कारको नाश करके सच्चा ज्ञान प्राप्त हो जावे तो आप निःसन्देह जन्म मरणके दुःखोंसे छूट जाओगे। 'मैं, तुम, वह' इत्यादिके भेद जाते रहेंगे।

यदि मनको ज्ञानरूपी जलसे स्नान कराया जावे और इसकी सारी मलिनता धो डाली जावे तो प्रयत्न करने वालोंके लिये मोक्ष अपने स्वाभाविक तेजसे प्रकाश करेगा।

सदा धार्मिक कार्य करो। मन पर निगाह रखो और देखो कि यह क्या कर रहा है। यही दोनों मार्ग मनके निग्रहके लिये पर्याप्त हैं।

वासनाओंसे बन्धन बनता है। यदि विचार और विवेकके द्वारा इन वासनाओंका क्षय कर दिया जावे तो

चञ्चल मन उसी प्रकार शान्त हो जावेगा जैसे घीके बिना दीपक शान्त हो जाता है।

एक समय एक स्त्री बड़े क्रोधमें भरी थी। बच्चेने उसका स्तन पान कर लिया और माताके रक्तमें तीव्र विष हो जानेके कारण बच्चा तुरन्त ही मर गया। क्रोधका ऐसा सर्वनाशकारी परिणाम होता है। तीन मिनटके भी क्रोधसे आपके स्नायु जालमें ऐसे दोष पैदा हो सकते हैं जिनकी क्षति पूरी करनेमें कई सप्ताह या महीने लग जावेंगे। इसलिये आपको सर्वदा ही प्रयत्न करते रहना चाहिये कि क्रोधको क्षमा, धैर्य, प्रेम, विवेक विचार, आत्मभाव इत्यादि सद्गुणों द्वारा संयम करो।

षट् सम्पत्तियोंमें से एक-शमका अर्थ वासना त्याग है। यदि मनमें कोई इच्छा पैदा हो तो इसके वशमें मत हो जाओ। यह शमका अभ्यास हो जावेगा। बाह्य क्रियाओं और इन्द्रियोंका निग्रह दमका अभ्यास कहलाता है। यदि आप आम खानेकी इच्छाका त्याग कर दो यह तो शम है, और यदि आप आम मोल लेनेके लिये अपने पांवोंको बाजार तक नही जाने दो, यदि आप आंखोंको आम नहीं देखने दो, यदि जिह्वाको उन्हें नहीं चखने दो तो यह दम हैं। दमका अभ्यास शमके साथ ही साथ होना-

चाहिये। अकेला शम ही पर्याप्त नहीं होगा। कामना रूपी शत्रुपर आन्तरिक और बाह्य दोनों प्रकारका आक्रमण होना चाहिये। तो आप मनको सुगमतासे वशमें कर लोगे।

किसी दिन आपका नौकर आपको नियमानुसार दूध देना भूल जाता है और आप क्रोध करने लगते हो तब अपने मनमें प्रश्न करो "मुझे दूधका दास क्यों हो जाना चाहिये। तब स्वभावतः क्रोधकी लहर दब जायेगी। यदि आप विचारपूर्ण और सावधान रहोगे तो अन्य अवसरों पर भी नही उठेगी।

कोई मनुष्य घासकी एक पत्तीसे एक २ बूंद निकाल कर समुद्रको खाली करनेमें लगा हुआ हो, जितने धैर्य और अथक लगनकी उसको आवश्यकता होती है, ठीक उतने ही धैर्य और लगनसे मनका निग्रह किया जा सकता है।

मिठाई खानेकी इच्छा उत्पन्न होती है। आप पैरोंको मिठाई मोल लेनेके लिये बाजार नहीं जाने दो। जिह्वाको मिठाई मत खाने दो। इस प्रकारका इन्द्रिय निग्रह दम कहलाता है। आप आँखोंको मिठाई देखने भी न दो।

जब आप वासना त्यागके द्वारा मनमें मिठाई संबंधी कोई विचार ही नहीं उठने देते तो यह शम कहलाता है।

विचार, ब्रह्म-चिन्तन, जप, ध्यान, प्राणायाम आदिके द्वारा वासनाओंका त्याग किया जा सकता है। शम आन्तरिक निग्रह है। यह मनका निग्रह है। दम इन्द्रियोंका निग्रह है।

यद्यपि शमके अभ्यासमें दमका अभ्यास भी अन्तर्गत है, क्योंकि मनकी सहायता विना इन्द्रियोंकी गति और क्रिया नही होगी तो भी दमका अभ्यास आवश्यक है। तभी मनका निग्रह पूर्ण रूपसे होगा।

जब कोई वासना या संकल्प मनमें उठे तो मन अन्तर इन्द्रियोंको एक धक्कासा देता है। यही धक्का अन्तर इन्द्रियोंसे बाहरके करण जैसे हाथ, पांव, आंख, कान आदि तक पहुंचता है। शमका अभ्यास इसी धक्केको रोकता है जो कि सारी इन्द्रियों और बाह्य करणोंकी गतिका मूल कारण है।

जैसे आप मौनके द्वारा शक्ति सञ्चय करते हो वैसे ही निरर्थक विचार क्रियाको बन्द करके मानसिक शक्तिका भी सग्रह करो। तब आपके पास ध्यानके अभ्यासके लिये पर्याप्त शक्ति संग्रह हो जावेगा।

यदि आप मनपर सावधानीसे निगाह रखो तो आप देखोगे कि बहुतेरे विचार असम्बद्ध होते है। मन विना

किसी ध्येयके घूमता फिरता है। कुछ विचार शरीर और इसकी आवश्यकताओंके सम्बन्धमें होंगे, कुछ विचार मित्रोंके सम्बन्धमें, कुछ धन कमानेके सम्बन्धमें, कुछ खाने पीनेके, कुछ विचार आपके बचपनके होंगे इत्यादि।

यदि आप मनका अध्ययन कर सकें और अन्य सब प्रकारके विचारोंका बहिष्कार करके एक ही विषयके सम्बद्ध विचार रख सकें तो यह बड़ा भारी कार्य है। विचार संयममें उन्नतिकी ओर यह महान पदविन्यास है। साहस मत छोड दो।

एक पक्षीने समुद्रके किनारे अंडे दिये। लहरें आईं और अण्डोंको बहाकर ले गईं। पक्षीको बड़ा क्रोध आया। वह अपनी चोंचसे समुद्रको खाली कर देना चाहता था। इसने समुद्र खाली करनेमें अपनी सारी शक्ति लगा दी। पक्षियोंके राजाको उसपर दया आई और वह उसकी सहायताके लिये आया। शान्तिकी स्थापना करनेवाले नारद ऋषिने पक्षीको कुछ उपदेश दिया। जब सागरके राजाने यह सब देखा तो वह बड़ा भयभीत हो गया। वह पक्षीके अन्डे वापिस ले आया और क्षमा प्रार्थना तथा प्रणाम करके पक्षीको उसके अण्डे लौटा दिये। जो साधक मनके निग्रहका प्रयत्न कर रहे

हैं उन्हें भी ऐसा ही धैर्य और अथक लगन होनी चाहिये जैसी उस पक्षीको थी जो अपनी चोंचसे समुद्र खाली कर देनेका प्रयत्न कर रहा था।

मनको मूंड़ दो। किसीने गुरु नानकसे पूछा 'महात्माजी आपने सिर क्यों नहीं मुंड़वाया। आप तो संन्यासी हो।' उन्होंने उत्तर दिया—मेरे प्यारे मित्र! मैंने अपने मनको मूंड़ दिया है।' वास्तवमें मनका मुन्डन बहुत साफ होना चाहिये। सारी आसक्ति, कामना, अहंकार, मोह, काम, लोभ, क्रोध आदिसे बचना ही मनका मुन्डन है। जब तक अन्दर तृष्णा बनी हुई है बाहरसे सिरको मुंड़वानेका कोई अर्थ नहीं है।

कुछ लोगोंको पापके विचार सताते रहते हैं। एक आदमी सोचता है मैंने बड़ा घोर पाप किया है। मैं नहीं जानता कि क्या करूं। बारम्बार यही एक विचार उसके मनमें आता रहता है। यह आदत बुरी है। पाप तो केवल एक भूल है। ॐकार या श्रीराम नामके जपसे शीघ्र ही बड़े-बड़े पापोंके ढेर नष्ट हो जाते हैं। देखो डाकू रत्नाकर किस प्रकार वाल्मीकि ऋषि बना था। निराशाका कोई स्थान नहीं है। किसीको निराश नहीं

होना चाहिये। धर्म कार्य करो। सदा प्रभुको याद रखो। अन्तर्यामीसे सच्चे बने रहो।

विचार ही असली कर्म है। दूषित विचार ही पापका श्रीगणेश है। अन्तर्निरीक्षण और जाग्रत रहकर अपने विचारोंको देखो। विचार ही क्रियाकी ओर ले जाता है। विचार ही सारे कर्मोंके स्रोत हैं। यदि आप प्रारम्भमें ही दूषित विचारोंको निकाल दोगे तो आप कोई दुष्कर्म नहीं करोगे। यदि आप इन्हें प्रारम्भ में ही कुचल दोगे तो आप संसारके दुःखोंसे छूट जाओगे।

बुद्धिमान् मनुष्य अपने विचारों पर निगाह रखता है और सारे खोटे विचारोंको जैसे ही वह उठते हैं मनके ऊपरकी तहपरसे हटा देता है, इसलिये वह खुश रहता है उसके विचार सदा शुद्ध रहते हैं। परमात्माका ध्यान करनेसे मनमें शुद्ध विचार प्रकट होते हैं क्योंकि परमात्मा नित्य शुद्ध है।

असम्बद्ध विचारकी पुरानी आदतको अच्छे विचारों की नई आदत बनाकर बदल देना चाहिये। पहले अच्छे विचारोंकी ओर झुकाव होगा। अभ्यास जारी रखनेसे धार्मिक सहायक विचारोंकी निश्चित आदत पड

जावेगी। आपको बहुत ज्यादा कोशिश करनी पड़ेगी। पुरानी आदतें बार-बार लौटकर आनेकी चेष्टा करेंगी।

जिन दिनों आपको बहुतसे दुःख संकट चिन्तायें सुबहसे शाम तक रहती हैं तो छोटीसी बात भी मनमें बड़ी झुंझलाहट पैदा कर देती है, थोड़ीसी बातसे भी मनकी साम्यावस्था बिगड जाती है, एक भी कठोर शब्द आपको अधीर कर देता है। परन्तु जब आप सारे दिन भर शान्त रहते हो तो बडीसे बड़ी गाली और भारीसे भारी आलोचना भी कोई प्रभाव पैदा नहीं करती।

जब तक आप अच्छे विचारोंकी आदतमें दृढ़ता से स्थित नहीं हो जाते, आपको बारम्बार मनमें सात्विक विचार, दैवी विचार, गीताके विचार, भगवान कृष्णके विचार, रामके विचार उपनिषदोंके विचार भरने होंगे। अब नये-नये मार्ग और नालियां बन जावेंगी। जैसे ग्रामोफोनकी सुई प्लेटमें एक छोटा-सा निशान बनाती है इसी प्रकार सात्विक विचार मन और मस्तिष्कमें नई-नई स्वस्थ नालियां बनावेगे, नये संस्कार बन जावेंगे।

जो दूसरे आदमीसे प्रेम करता है वह स्वयम् अपने ही से प्रेम करता है। जो किसी गरीब आदमीको मुसीबतमें

पाच रुपये दान देता है वह अपने आपको ही देता है। क्योंकि संसारमें उसके अपने सिवाय कोई दूसरी चीज़ नहीं है। जो किसीको चोट पहुचाता है, घृणा करता है और गाली देता है, वह स्वयम् अपनेको ही चोट पहुचाता, घृणा करता और गाली देता है। वह अपनी कबर खोदता है।

ईसामसीह कहते हैं "अपनेको खाली करो और मैं तुमको भर दूंगा।" इसका अर्थ है कि अपने अहंकारको नाश करो तुममें ईश्वरीय भाव भर जावेंगे। इसे खाली करनेका तात्पर्य है "योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः" अर्थात् मनके सारे विकारोंका निग्रह करना। यह खाली करनेकी क्रिया निस्सन्देह बडा कठिन साधन है परन्तु तीव्र प्रकार के निरन्तर अभ्याससे सफलता मिलेगी। इसमें कोई सन्देह नहीं है।

अन्तर्निरीक्षणके द्वारा आपको सब प्रकारके कमीने विचार, निरर्थक विचार, अयोग्य विचार, अनुचित विचार, कामुक विचार, द्वेष, घृणा और स्वार्थके विचारोंको अवश्य निकाल देना चाहिये। आपको विचार-संस्कृतिका विकास करना चाहिये। अर्थात् अच्छे प्रेमपूर्ण उन्नत दिव्य विचारोंको बढ़ाना चाहिये।

तब आप पृथ्वीपर पुण्यात्मा बन जाओगे। आप पृथ्वीपर महान् शक्तिशाली हो जाओगे। ईसामसीह और बुद्धके समान अनेकोंकी सहायता कर सकते हो, हजारोंको नीरोग कर सकते हो और बहुसंख्यक मनुष्योंको आत्मबल देकर उन्नत कर सकते हो।

आपको वैरस्य और भेदपूर्ण विनाशकारी विचारोंको दूर करना होगा, हरेक विचार रचनात्मक होना चाहिये।

यह दृढ़, निश्चित और सत्तापूर्ण होना चाहिये। उसकी मनोमूर्ति साफ और निश्चित रूपवाली होनी चाहिये। आपको सद्विचारोंका विकास करना चाहिये। प्रत्येक विचार दूसरोंके लिये शान्ति और सान्त्वना देनेवाला होना चाहिये। यह किसीके लिये तनिक भी कष्ट और दु:ख लानेवाला न होवे।

जैसे आप बगीचेमें चमेली, गुलाब, नरगिस और अन्य प्रकारके फूल लगाते हो वैसे ही आपको अन्त:करण के बड़े बगीचेमें शान्तिप्रद विचारों, प्रेम, दया कृपा और पवित्रताके विचार रूपी पुष्पोंको उगाना चाहिये। अन्त-र्निरीक्षणके द्वारा इस मन रूपी बगीचेको ध्यान और उन्नत विचारोंके जलसे सींचना होगा और निरर्थक भेदपूर्ण विचारोंकी घासको हटाना होगा।

जैसे अगरबत्तीसे निरन्तर मधुर सुगन्धि निकलती रहती है ऐसे ही उस योगीसे जिसने अपने विचारोंका निग्रह कर लिया है और जो निरन्तर ब्रह्म-चिन्तन करता रहता है, दिव्य सुगन्धि और दिव्य तेज निकलते रहते हैं। उसके मुखका तेज और सुगन्धि ब्रह्मवर्चस कहलाता है।

जब आपके हाथमें चमेली, गुलाब और चम्पक पुष्पोंका बना हुआ गुच्छा होता है तो उसकी मधुर सुगन्धि सारे हालमें फैल जाती है और सबको समान रूपसे प्रसन्न करती है, इसी प्रकार जिस योगीने अपने विचारोंका निग्रह कर लिया है उसका यश और कीर्ति रूपी सुगन्ध दूर-दूर फैल जाती है, वह विश्वके लिये शक्ति बन जाता है।

निरर्थक विचारोंमें अपनी तनिक भी शक्ति नष्ट मत करो। सारे मानसिक बलको संग्रह करो। इसको उन्नत आध्यात्मिक उद्देश्योंके लिये दिव्य ध्यान ब्रह्म-चिन्तन और ब्रह्म विचारमें उपयोग करो।

निरर्थक विचार आपकी आध्यात्मिक उन्नतिको रोकते हैं, गन्दे विचार आध्यात्मिक प्रगतिमें रुकावट होते हैं, उपयोगी विचार आध्यात्मिक उन्नतिमें सहायक होते हैं।

अपने मस्तिष्कमें अनुपयोगी जानकारी मत भर लो। मनको अमना करना सीखो। जो कुछ आपने सीखा है, उसे भूल जाओ। अब ये सब तुम्हारे लिये बेकार है। तभी आप अपने मनको दिव्य विचारोंसे भर सकते हो। आपको नई मानसिक शक्ति मिलेगी क्योंकि मनकी सारी किरणें अब सिमट गई हैं।

अपने मनसे सारे अनावश्यक, अनुपयोगी और दूषित विचारोंको भगा दो। केवल उपयोगी और सहायक विचारोंको ही रखो। उनकी जगह ईश्वरके विचारोंको बनाओ। जब आपके मनमें निरर्थक विचार रहते हैं आप परमात्मासे दूर रहते हो। मनको पुराने मार्गोंमें मत दौड़ने दो और इसको अपनी मनमानी मत करने दो। सदा इसपर कड़ी निगाहदारी रखो।

प्राण मनका बाहरी लबादा है। सूक्ष्म प्राणके स्पन्दसे विचार बनता है। प्राणायामसे भी आप मनोबलको बढ़ा सकते हो और विचार-निग्रह तथा विचार-संस्कृति का विकास कर सकते हो। इससे धारणा और ध्यानमें सहायता मिलेगी। इससे मन स्थिर हो जावेगा। इससे रजोगुण और तमोगुण दूर हो जावेंगे। यह मनके मलको जला देगा।

नित्य कुछ घन्टोंके लिये मौन-साधन बोलने और विचारनेकी स्वाभाविक प्रवृत्तिको रोकेगा, शक्तिका संचय करेगा और ध्यान, विचार-निग्रह तथा विचार स्फूर्तिमें सहायक होगा।

यदि आप किसी दूषित विचारके संयममें समर्थ नहीं हो तो पहिले शरीर और वाणीका निग्रह करो। शनैः शनैः आपको मनोबल और इच्छा-शक्ति प्राप्त होंगे और धीरे-धीरे आप विचारोंका निग्रह कर सकोगे। किसी निरर्थक या दूषित विचारोंको शब्दोंमें विकसित मत होने दो। वाणीका निग्रह करो। तुरन्त मनको कुछ सद्विचारोंको ओर लगाओ। गीताके कुछ श्लोकोंको याद करनेकी चेष्टा करो या कुछ प्रार्थना करने लगो। "ॐ हरि, ॐ शिव, ॐ नारायण" आदि कुछ शब्द मूर्तियां बनाये रखो।

जिनको अपने विचारों और वाणी पर थोड़ासा भी संयम होता है उनका मुख शान्त, गम्भीर, सुन्दर और मनोहर, वाणी कोमल और आखें तेज-युक्त तथा श्वेत होंगी।

जैसे आमके वृक्षमें फूल आनेसे आप जान लेते हो कि आपको आमके फल शीघ्र ही मिलेंगे इसी प्रकार

जब आपके मनमें शान्ति रूपी पुष्प खिलें तो जान लो कि आपको अभेद ज्ञान (आत्मा और परमात्माकी एकताका ज्ञान) प्राप्त होनेवाला है। मनकी शान्ति दो प्रकारकी होती है साधारण शान्ति और परम शान्ति। जब वृत्तियोंका संयम हो जाता है और विक्षेप दूर हो जाता है तो साधारण शान्ति आती है; और जब आपको ब्रह्म-ज्ञान प्राप्त होता है तब परम शान्ति मिलती है।

दूषित विचारोंको दूर करनेके चार उपाय हैं। ज्ञान योगी ॐकार या सत्यमें रहकर इसे करता है। राज-योगी या तो उठती हुई वृत्तियोंका नाश करके या सात्विक विचारोंको उनकी जगह देकर इसे करता है। भक्त प्रार्थनाके द्वारा करता है। उसे परमात्मासे आत्म निवेदनके द्वारा सहायता मिलती है।

नटकी लड़की जब अपने खेल दिखाती है, तो बाजेके साथ साथ नाचते हुए भी उसका सारा ध्यान सिरपर रखे हुए पानीके घड़ेपर लगा रहता है इसी प्रकार धार्मिक मनुष्य भी सांसारिक व्यवहार करता हुआ भी अपनी दृष्टि भगवानके आनन्द-पूर्ण चरणोंमें लगाये रखता है।

ईसा मसीहको भी शैतानने लुभा लिया था। बुद्धको निर्वाण प्राप्त करनेसे पहले मार (काम) के साथ बड़ा युद्ध करना पडा था। इसलिये प्रत्येक उस वस्तुसे अतीव दूर रहो जो आपकी वासनाओंको जाग्रत कर दे। तभी आप सुरक्षित रहोगे। जब आप आध्यात्मिक पथ पर प्रारम्भिक अवस्थामें हो तो अपने आत्मबल और पवित्रताकी कभी परीक्षा मत करो। छोटीसी अग्निको मिट्टीकी ढेरी बड़ी आसानीसे बुझा देगी।

आध्यात्मिक पथके नवीन पथिकको यह दिखानेके लिये कि उसमें पाप और मलिनताका सामना करनेके लिये साहस है, कभी कुसगतिमे नही पड़ना चाहिये। यह बडी भारी भूल होगी। आप महान् भयमें चले जाओगे और शीघ्र ही आपका अधःपतन हो जावेगा।

सर्पको संगीत बडा प्रिय होता है। यदि आप मधुर-स्वरसे पुन्नाह विरली तानको गाओ तो वह आपके सामने आ जावेगा। मन भी सर्पके समान है। इसको भी मधुर संगीत ध्वनिया बहुत पसन्द होती हैं। मधुरस्वरोंसे इसे बडी सुगमतासे फंसाया जा सकता है। कानोंको बन्द करके हृदयसे निकलने वाली मधुर अनाहत ध्वनिपर लगाओ, इस रीतिसे इसका निग्रह बड़ी सुगमतासे किया

जा सकता है। यह लययोग है। पिङ्गला गणिकाने अपना मन तोतेकी "राम राम" ध्वनि पर लगा दिया था और भाव समाधि प्राप्त कर ली थी। बङ्गालके एक प्रसिद्धभक्त राम प्रसाद्ने संगीतके द्वारा मनका निग्रह किया था।

मनमें आराम और सुखकी इच्छा जमी होती है। साधकोंको सावधान और सचेत रहना चाहिये। यदि आप अपनी आवश्यकताओंको एक वस्तुसे भी बढ़ा दोगे तो फिर पदार्थोंकी सख्यामें वृद्धि होने लगेगी। एक एक करके विलासिता आने लगेगी। जिन वस्तुओंका आपने त्याग कर दिया है उनको फिरसे ग्रहण कभी मत करो।

जब आप मौन व्रत लो तो अन्दरसे बार बार कभी मत कहो "मैं बोलूंगा नहीं मैं बोलूंगा नहीं।" इससे मस्तिष्कमें थोड़ी गरमी पैदा हो जावेगी क्योंकि मन आपसे बदला लेना चाहता है। केवल एक बार निश्चय कर लो और फिर शान्त रहो। दूसरी बातोंको देखो। सदा यही मत सोचते रहो 'मैं बोलूंगा नहीं मैं बोलूंगा नहीं।

जब आप किसी वस्तुको त्यागते हो तो कुछ दिनोंके लिये उस वस्तुकी इच्छा बलवती हो जाती है। यह

आपके मनको उद्विग्न करती है। चुप रहो। दृढ़ बने रहो। यह दुर्बल होती जाती हैं और अन्तमें मर जाती है।

निरन्तर और तीव्र अभ्यासके द्वारा आप विचार हीन हो सकते हो। विचार रहित योगी संसारमें कार्य करनेवाले पुरुषसे अधिक संसारकी सहायता करता है। साधारण मनुष्य इस बातको कठिनाईसे समझ सकते हैं।

जब आप तरंग-रहित (विचार-रहित) होते हो तो आप संसारके हर एक कणमें व्याप्त हो जाते हो और सारे संसारको पवित्र तथा उन्नत कर देते हो। जड़ भरत और वामदेव जैसे तरङ्ग रहित ज्ञानियोंके नाम आज भी स्मरण किये जाते हैं। उन्होंने कभी आश्रम नहीं बनाये, कभी व्याख्यान नहीं दिये, कभी पुस्तकें नहीं छपाई और कभी शिष्य नहीं बनाये फिर भी इन तरंग-रहित ज्ञानि-योंने लोगोंके मन पर कितना भारी प्रभाव डाला था। ऐसे तरङ्ग रहित ज्ञानियोंकी जय हो।

अन्तर्निरीक्षण करो। सदा आन्तरिक जीवन रखो। मनके एक भाग और हाथोंको स्वाभाविक कार्य करने दो। यह कर्म और ज्ञानयोगका मिश्रण कहलाता है इससे सम्पूर्ण विकास होगा। यही साम्यावस्था है। यही स्व-

नात्मक योग है। कुछ वेदान्तियोंका एक पक्षीय विकास होता है। वह अच्छा नहीं।

सत्संग जप आदिके द्वारा अपने आध्यात्मिक संस्कारोंको जगाओ, उनकी रक्षा करो, विकास करो और पोषण करो। जब कभी आप नियमका पालन करो तो उसे दृढ़तासे अक्षरशः करो, यह मत कहो कि मैं यथा सम्भव करूंगा। यथा सम्भवका शब्द मनको नर्मी देगा। मन अवसरकी राह देखता रहेगा और जब कभी पहला अवसर प्राप्त होगा यह बड़ी खुशीसे लालचके वस हो जायेगा इसलिये दृढ़ बने रहो।

काम और क्रोधकी वृत्तियोंको नाश करनेके तीन उपाय हैं। (नं० १) आप उनको इच्छा शक्ति के द्वारा भगा सकते हो। निस्सन्देह यह कठिन और परिश्रम वाला है। इससे आपकी शक्ति बहुत व्यय होती है। (नं० २) प्रतिपक्ष भावनाका उपाय। विरोधी विचारों अर्थात् पवित्रता और प्रेमके विचार बनाओ। यह सुगम है (नं० ३) ब्रह्म या सत्यमें रहो। ब्रह्ममें कोई वृत्तियां नहीं हैं; ब्रह्म निर्विकार, निर्विकल्प और नित्य शुद्ध है। यह उपाय पूर्ण और बलवान है। वृत्तियां बिलकुल नाश हो जाती हैं।

यदि मन कहे 'पूर्वको चलो' तो पश्चिमको जाओ, यदि मन कहे 'दक्षिणको चलो' तो उत्तरको जाओ। यदि मन कहता है कि जाड़ेमें चायका एक गर्म प्याला पिओ तो एक प्याला ठन्डा पानी पीलो। मछलीके समान मानसिक प्रवाहके विरुद्ध तैरो। आप मनको सुगमतासे वसमें कर लोगे।

जिनके हृदय पवित्र हैं, वे धन्य हैं; क्योंकि उनको भगवानका दर्शन हो जावेगा।

हृदय पवित्र होना चाहिये। आंखकी दृष्टि भी पवित्र होनी चाहिये। आंखमें एक रसना होती है। कामुक नेत्र भिन्न-भिन्न प्रकारके सौन्दर्यको अपनी पसन्दके लिये चखना चाहता है। नेत्रका काम (लालसा) उतना ही भयानक हैं जितना मान्सका। प्रकृतिका सौन्दर्य भगवानसे ही प्रकट होता है। आंखको ठीक प्रकार सधा लो, इसे सब कहीं आत्माका दर्शन करने दो।

विचार ही सच्चा कर्म है। मनकी क्रियायें असली कर्म है। यदि मनका विक्षेप दूर हो जावे तो आपको अच्छी निष्ठा मिलेगी। मन बहुत ही शान्त हो जावेगा। मनकी अशुद्धियोंसे रहित हो जाओ, मनके ऊपर संयम रक्खो तब संसारके सारे दुःखोंका जन्म और मृत्युके

सहित अन्त हो जावेगा। यदि आप अपनेको मनके पञ्जोंसे छुड़ा लोगे तो मोक्ष स्वयम् ही आ जावेगा, इसमें कुछ भी संशय नहीं है। विचार, साधन, निदिध्यासन और सत्संग यह सब मनके निग्रह और मोक्षकी प्राप्तिमें बहुत बडी सहायता करेंगे।

मन माया है, यदि मन बेकाबू होकर विषय पदार्थोंकी ओर दौड़ता है तो माया उस मनुष्य पर दृढ़ अधिकार कर लेती है।

माया मनके ही द्वारा अनर्थ करती है। माया अपनी शक्तिसे मनमें लाखों संकल्प उठाती है। जीव इन संकल्पोंका शिकार बन जाता है। कामनाओंको त्यागो वस्तुओंके संकल्पोंको त्यागो, वैराग्य बढ़ाओ, इस तुच्छ झूठी 'मैं' को त्याग दो। सारे संकल्प इस 'मैं" के चारों ओर घूमते हैं और उसे ठग लेते हैं। शरीरकी ओर अधिक ध्यान मत दो। शरीर और उसकी जरूरतोंका विचार जितना हो सके उतना कम करो।

कोई संकल्प मत रक्खो। विक्षेप वाला मन स्वयम् ही मर जावेगा। यह ब्रह्ममें घुल जावेगा। तब आपको आत्माका साक्षात्कार होगा।

जब मन मर जाता है तो मैं, तुम, यह, वह, काल, देश जीव, और जगत यह सब लोप हो जाते हैं। अन्दर और बाहरका विचार भी नष्ट हो जावेगा। केवल एक अखण्ड परिपूर्ण चिदाकाशका ही अनुभव रहेगा। हृदयके ज्ञानके द्वारा सारे संशय और भ्रम दूर हो जावेंगे।

मान लो कि आपको चाय, आम, अंगूर, और मिठाईयां बहुत पसन्द हैं। इन वस्तुओंको और इनके लिये कामनाओंको भी त्याग देनेका नियम बना लो। कुछ महीने पीछे इन वस्तुओंकी इच्छा दुर्बल हो जायेगी और धीरे-धीरे नष्ट हो जायेगी। आपको नित्य तीन, चार घन्टे, प्रार्थना, जप और ईश्वरके ध्यानमें लगाने चाहिये। जो उपरोक्त पदार्थ पहले आपको रुचिकर होते थे अब वह अत्यन्त हेय मालूम होते हैं। अब वे आपके पहले भावोंके बिलकुल उल्टे भाव बताते हैं, उनसे आपको तीव्र वेदना होती है। यह सच्चे वैराग्यका चिन्ह है और मनोनाशका द्योतक है।

यदि आप सब प्रकारकी कल्पनाको क्षीण कर सको तो मन अपने उद्गम-स्थानमें लीन हो जावेगा तब आप सब प्रकारके दुःख, चिन्ता, और क्लेशोंसे मुक्त हो जाओगे तब आपको नित्य सुख और मोक्षका धन मिलेगा। उन्नत

और सात्विक मनके द्वारा आत्माके शत्रु इस नीच मनको मार दो। यह नीच पशुबुद्धियुत मन आपको सब प्रकारके विषय भोगोंमें नीचेकी ओर घसीटता है और अनेक रीतियोंसे आपको भुलाता है। जिनको सत् और असत्में दृढ़ विवेक है उनके पास नीच मन नहीं फटक सकता।

वेदान्त आपसे यह नहीं कहता कि दुनियांको छोड़ दो। यह तो चाहता है कि आप अपनी मनोवृत्तिको बदल दो और इस झूठी भ्रमपूर्ण अहंता और ममताको त्याग दो। सपेरा सांपके केवल ज़हरीले दो ही दांत उखाड़ता है। सांप वैसा ही रहता है। वह फुंकार मारता है फन भी उठाता है और दांत भी दिखाता है। वास्तवमें वह सब कार्य पूर्वकी भांति ही करता है। सपेरेने सर्पकी ओर अपनी मनोवृत्तिको बदल दिया है। अब उसे यह भावना है कि इसके विषैले दांत नहीं हैं। इसी प्रकार आपको भी मनके दोनों ही विषैले दांत अहंता और ममताको उखाड़ डालना चाहिये। तब मनको जहां वह चाहे जाने दे सकते हो। तब आपको सदा समाधि ही रहेगी।

देहाभिमाने गलिते विज्ञाते परमात्मनि।
यत्र यत्र मनो याति तत्र तत्र समाधयः॥

देहाध्यासके दूर हो जानेपर और परमात्माका ज्ञान हो जाने पर जिस किसी पदार्थकी ओर भी मनको कर दिया जावे वहां ही समाधिका अनुभव होता है। उसपर संसारका असर नहीं पडता। उसको पृथक् कमरा या आसन रखनेका जरूरत नहीं है। उसे आंखें बन्द करनेकी आवश्यकता नहीं है। उसे इन्द्रियोंका प्रत्याहार करनेकी भी जरूरत नहीं है।

कुविचारोंके भारी विनाशकारी परिणाम स्वयं ही जान लो। इस विचारसे जब कभी खोटी भावना आवेगी तो आप सचेत हो जाओगे। जिस क्षणमें ऐसी भावना आवे तुरन्त ही अपने मनको दिव्य विचारों, प्रार्थना और जपमें लगानेका प्रयास करो। खोटे विचारोंको दूर भगा देनेकी सच्ची लगन रहनेसे आप सचेत रहोगे यहाँ तक कि यदि स्वप्नमें भी कोई कुविचार प्रकट होगा तो आप तुरन्त जाग उठोगे। यदि आपके जागते रहने पर शत्रु प्रकट होवे और आप काफी सचेत रहो तो उससे सामना कर लेना बहुत कठिन नहीं होगा।

यदि थोडी देरके लिये आप सोचते हो कि आप किसी कुविचार पर विजय नहीं प्राप्त कर सकोगे तो तुरन्त उठ खड़े हो और कोई शारीरिक परिश्रमका कार्य

करने लग जाओ। एकके बाद दूसरा प्रयत्न करते करते कार्य सुगम हो जावेगा और थोड़े दिनोंमें आपको विचारोंपर पूर्ण वशित्व प्राप्त हो जावेगा।

प्राणायामके द्वारा मन धीरे धीरे स्थूलसे सूक्ष्मकी ओर चलता है। इसलिये काम वासनाका निग्रह करनेके लिये प्राणायाम अच्छा नियन्त्रक माना गया है। जब कभी कोई दूषित विचार आपके मनको क्षुब्ध करे तुरन्त पद्मासन या सिद्धासनसे बैठ जाओ और प्राणायाम करने लगो। वह कुविचार आपको तुरन्त ही छोड़ देगा।

आध्यात्मिक मार्ग बड़ा ही ऊबड़-खाबड़, कंटीला और ढालू है। श्रुतिने बताया है "क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्ग पथस्तत्कवयो वदन्ति।" वह मार्ग छुरेकी धारके समान तेज है और अगम्य है, ज्ञानी लोग बताते हैं कि उसपर चलना कठिन है।

धैर्य और तत्परतासे कांटोंको उखाड़ना चाहिये। कुछ कांटे आन्तरिक हैं और कुछ बाहरी। काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि आन्तरिक कांटे हैं। बाहरी कांटोंमेंसे कुसंगतिका कांटा सबसे बुरा है। इसलिये कुसंगतिसे दृढ़ताके साथ बचते रहो। मनकी निस्तब्धता ब्रह्म प्राप्तिका सीधा उपाय है।

विना सधाया हुआ मन एक समयमें या तो देख ही सकता है या सुन सकता है। परन्तु पूर्ण रूपसे सधाया हुआ मन एक ही समयमें देख भी सकता है और सुन भी सकता है। इसे अनेकों इन्द्रियोंके साथ जोड़ा जा सकता हैं और सबसे अलग भी किया जा सकता है। जैसे योगी चाहे उसी प्रकार इस मनको चला सकता है। यह एक समयमें आठ काम कर सकता है। यह अष्टावधान कहलाता है। यह एक समयमें सौ काम भी, कर सकता हैं।

जो मनका संयम करना चाहता है उस राज योगीको विलासिता और तीव्र तामसिक तप दोनों ही से बचना चाहिये। ज्यादा व्रत करनेसे कमज़ोरी बढ़ती है। आप कुछ भी साधन नही कर सकते। आप विचार नहीं कर सकते। युक्ति नहीं सोच सकते। जो भी भोजन आपके अनुकूल होवे वही खाओ। इसके लिये ज्यादा गड़बड़ मत करो। जो भी आहार सुगमतासे मिल सके और आपके शरीरके अनुकूल होवे वही हानि रहित हैं।

चिड़चिडापन मनकी कमजोरी है। यदि आप जरा सी बातसे भी खीझ उठते हैं तो सम्भव है कि आप बहु-तोंके साथ अन्याय कर बैठो। धैर्य, तितिक्षा, सहनशीलता

करुणा, प्रेम, ब्रह्म भाव, नारायण भाव आदिके अभ्याससे इसको दूर कर दो।

आत्म-साक्षात्कार प्राप्त करनेके लिये मनुष्यको निरन्तर मनके साथ इसकी शुद्धि और स्थिरताके लिये परिश्रम करते रहना चाहिये। केवल इच्छा-शक्ति से ही इसका विक्षेप रुककर निग्रह हो सकता है।

जैसे क्षुब्ध समुद्रमें चन्द्रमाका प्रतिबिम्ब दिखाई नहीं दे सकता इसी प्रकार विक्षेप युक्त मनपर पड़ी हुई आत्माकी छाया भी दिखाई नहीं दे सकती।

जिनमें विवेक और दृढ़ निश्चय है वे मनुष्य मायाको जल्दी ही पहचान सकते हैं और आत्म-प्राप्ति कर सकते हैं। इन शक्तियों (विवेक और इच्छा) के द्वारा मायाका संयम किया जा सकता है।

यदि शीशा मैला हो तो आप अपना मुंह साफ़ नहीं देख सकते। ऐसे ही यदि मनका शीशा मैला है तो आप आत्माका दर्शन नहीं कर सकते। यह मैल काम, क्रोध लोभ आदिका मल है। इनको प्रयास-पूर्ण निष्काम कर्म योगके द्वारा दूर कर दो। मिली जुली अनेक प्रकारकी बात-चीत करना बहुत बुरा स्वभाव है, इससे मन अपकृष्ट रहता है। यह मनको सदा बहिर्मुख बनाता

है और मनुष्य आध्यात्मिकतासे छूट जाता है। सप्ताहमें एकबार मौन अवश्य रहना चाहिये। बोलनेमें बहुत शक्तिका अपव्यय होता है।

राजसिक मनमें दूसरोंके दोष देखनेकी प्रवृत्ति होती है। यह उनके किये हुए बुरे कर्मों और अपराधोंको भी याद रखता है और अच्छे कर्मोंको भूल जाता है। यह दोनों प्रवृत्तिया द्वेषको बढ़ाती हैं और मनमें निरन्तर उद्वेग उत्पन्न करती हैं।

मनकी धारणाके द्वारा किसी मनुष्यको सिद्धियां भले ही प्राप्त हो जावें, परन्तु उसको मनकी शुद्धि नहीं मिलेगी। आत्म-साक्षात्कारके लिये मनकी शुद्धि अत्यन्त आवश्यक है।

साधकको संग छोड़ने और मौन रहनेका इसलिये आदेश दिया जाता है क्योंकि रागके कारण वह बहुत लोगोंसे जानकारी बढ़ाएगा और द्वेषके कारण कुछ अप्रिय शब्द बोलकर कुछ लोगोंको अप्रसन्न कर देगा। जिह्वामें तलवार होती है। शब्द तीरके समान होते हैं। वे दूसरोंके भावको चोट पहुचाते हैं। मौन रहनेसे और संगति छोड़ देनेसे मनुष्य वागिन्द्रियका सयम कर सकता है और रागको दूर कर सकता है।

राजयोगी प्रतिपक्ष भावना द्वारा (अर्थात् उनकी जगह अच्छे या उन्नत विचार बनाकर) दूषित विचारका नाश करता है। भक्त यही काम प्रार्थना और आत्म निवेदनसे करता है। वह कहता है "परमात्मन्। मैंने स्वयं अपनेको, कर्मोंके फलको और कर्मों को भी आपको सौंप दिया हैं। मुझे शक्ति दीजिये कि इन दूषित विचारोंको दूर भगा दूं और नष्ट कर दूं।" ईश्वर काम-वासनाको सत्य अथवा ओजस्‌में उन्नत कर देते है। ज्ञान योगी यही काम विचार और उदासीन वृत्तिके द्वारा करता है। वह कहता है "इसका मुझसे कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। मैं सच्चिदानन्द स्वरूप हूं। शिवोऽहम् शिवोऽहम्। ये चेष्टायें मनकी है। मैं मनसे भिन्न हूं।"

आसुरी शक्तियोंका विरोध करनेके लिये आपके अन्दर सहायक शक्तियां भी होती हैं। यदि आप एक बार 'ॐ' या 'राम' के दस नाम उच्चारण करो या एक बार पांच मिनटके लिये ध्यान करने बैठो तो चाहे आप अविद्या या मायाके कारण आध्यात्मिकताके विषयमें सब कुछ भूल जाओ तो भी इसका संस्कार आपको एक बार फिर भी बारम्बार मन्त्रका जप करने और कुछ काल तक फिर ध्यानमें बैठनेके लिये बाधित करेगा।

काम क्रोधादि विरोधी शक्तियाँ आपको गिरानेका प्रयत्न करेंगी और आध्यात्मिक शक्तियाँ, सत्व गुण और शुभ-वासनाओंकी शक्तियाँ आपको उन्नत करके ईश्वर तक ले जानेकी चेष्टा करेंगी। स्मरण रखो कि दूषित विचार परस्त्री-गमनका श्रीगणेश है। यदि पहले आपके मनमें सप्ताहमें तीन बार कुविचार होता था और अब महीनेमें एक ही बार होता है; यदि पहले सप्ताहमें एक बार क्रोध होता था और अब महीनेमें एक बार होता है तो यह उन्नतिका चिन्ह हैं। यह बताता है कि आपकी इच्छा शक्ति बढ़ गई है। यह आपके बढ़े हुए आत्म-बलका द्योतक है। खुश हो जाओ। आध्यात्मिक उन्नतिका लेखा रखो।

यदि आपको शोरके बीचमें रहना पड़ता है तो इसकी शिकायत मत करो परन्तु इससे लाभ उठाओ। मनुष्य बाहरी उपद्रवोंको धारणाके अभ्यासके लिये उपयोग कर सकता है। आपको मानसिक शक्तिका इतना विकास करना चाहिये कि आपके निकट चाहे कुछ भी होता रहे आप निश्चलभावसे कार्य करते रहो।

यह शक्ति अभ्यासके द्वारा आती है और फिर यह अनेक प्रकारसे उपयोगी होती है। भिन्न २ परिस्थिति-

र्योंमें काम करते रहनेका अर्थ उन्नति है और यह बहुत ही मनोनिग्रहसे होता है।

केवल राजयोगी वृत्तियोंके नाशकी चेष्टा करता है। वेदान्ती सदा आत्मभाव या ब्रह्मभाव रखता है जब कभी उसके सन्मुख पदार्थ आते हैं। इसलिये वह वृत्ति नाशके लिये चेष्टा नहीं करता। उसके लिये प्रत्याहार नहीं है। उसके लिये बहिर्मुख वृत्ति नहीं होती। वह नाम रूपका निराकरण करके अस्ति भाति प्रियका ग्रहण करता है। भक्त सारे पदार्थोंमें नारायण या कृष्णको ही देखता है। वह भी वृत्तियोंका निरोध नहीं करता। वेदान्तीकी भाँति वह भी अपनी मनोवृत्तिको बदल देता है। मन ही सारे भेद और पार्थक्य पैदा करता है। यदि आप अपनी मनोवृत्तिको बदल दो तो संसार सारा आनन्द ही है। आपको पृथ्वीपर ही स्वर्ग मिलेगा।

बाहर तो केवल पदार्थ, स्पन्द या क्रियायें हैं। प्रकृति उदासीन और अन्धी है। पदार्थों में सुख दुःख कुछ भी नहीं है। यह सब मनका ही भ्रम है। मनकी कल्पनामें मायाका दृढ़ आसन है। आत्मामें स्त्री-पुरुषका भेद नहीं है। पंचतत्त्वोंमें यह भेद नहीं है। मन ही यह कामुक भाव बनाता है। शुकदेवको कामुक भाव नहीं हुआ था।

समझो कि स्त्री पंचतत्वोंका संघात है अणुओंका घन है। कामुक भाव धीरे-धीरे नष्ट हो जावेगा।

शिकायत करनेकी जगह जो भी वस्तु जैसी मिले उसे वैसा ही ग्रहण करो। इस उपायसे मनुष्य प्रत्येक अवसरको पकड़ता है। उसका विकास बड़ी सुगमतासे होता है, उसे अधिक मनोबल और समत्व प्राप्त होता है। चिड़चिड़ापन दूर हो जाता है। सहन शक्ति और धैर्य बढ़ता है।

असफलतासे हिम्मत मत हार दो। अपना प्रयत्न करते चले जाओ। अपनी भूलों और हारों पर अधिक विचार मत करो। केवल अपनी असफलताका कारण जाननेके लिये अपनी भूलोंको देखो और फिर प्रयत्न करने लगो। ऐसा करनेसे आप उन वृत्तियोंको सुखा दोगे जिनके कारण आपसे भूल हुई थी। परन्तु उनपर अधिक सोचते रहनेसे उन्हें नया बल मिलता है। छोटी-छोटी भूलके लिये अधिक गड़बड़ मत करो। उनपर बैठे-बैठे विचार ही मत करते रहो।

शान्त मनका अर्थ है साहस। आप विना किसी भयके आध्यात्मिक पथकी कठिनाइयों और परीक्षाओंका सामना कर सकते हो। इसकी जड़ आत्माकी एकता पह-

जाननेमें है। दैवी सम्पदाओंमें से एक 'अभय' है। सर्वदा सोचो कि आप आत्मा हो। शनैः २ आपमें अत्यन्त साहसकी वृद्धि हो जावेगी। मोह, अविद्या, शरीरकी ममताके कारण भय होता है।

आपको चोर और साहूकारमें अन्तर जानना चाहिये। परन्तु चोरसे प्रेम करना चाहिये। संसारी मनुष्य चोरसे द्वेष करता है उसे अपनेसे बाहर देखता है और सोचता है कि वह चोरसे बिल्कुल अलग है। किन्तु ज्ञानी चोरको अपना ही आत्मा समझता है और उसे अपने ही अन्दर देखता है।

जैसे खट्टा, कड़वा, मीठा आदि छहों रस तब ही उपभोग किये जा सकते हैं जब स्वादकी शक्तियां और मन एक ही हो जाते हैं। इसी प्रकार जब उपासनाके सारे साधन जैसे सन्तोष, समत्व दृष्टि आदि शान्तिके साथ मिलते हैं तब ही परिपूर्ण ब्रह्मका उद्भव होता है।

यदि आप सचेत रहकर इच्छानुसार प्रत्याहार कर सकते हो—अर्थात् मनको इन्द्रियोंके साथ जोड़ सकते या जुदा कर सकते हो तो आपने मनका बहुत निग्रह कर लिया है। किसी समय भी आप मनकी बहिर्गामी वृत्तियोंको रोक सकते हो। आन्तरिक आध्यात्मिक

जीवनके लिये प्रत्याहार पहली सीढ़ी है। जो प्रत्याहारमें सफल हो गया है वह सुगमतासे दीर्घ काल तक मनको एकाग्र कर सकता है। यदि प्रत्याहार पूर्ण होवे तो धारणा और ध्यान स्वयं ही आ जाते हैं। प्रत्याहार पर पूर्ण अधिकार प्राप्त करनेके लिये साधकको बड़ा प्रयास करना पड़ता हैं। प्रत्याहारमें सफलता होनेके लिये वैराग्यका होना आवश्यक है। कुछ वर्षों तक निरन्तर परिश्रम सहित प्रयास करते रहनेसे आपको सफलता मिल सकती है। योग सूत्रमें कहा है कि जब प्रत्याहार पूर्ण हो तो सारी इन्द्रियों पर पूरा निग्रह रहता है। "ततः परमा वश्यतेन्द्रियाणाम् ।"

साधना कालमें अधिक मत मिलो जुलो। अधिक बातचीत मत करो। अधिक चलो नहीं। अधिक भोजन मत करो। अधिक सोओ नहीं। इन पांचों बातोंका सावधानीसे पालन करो। मिलने जुलनेसे मनमें उद्वेग होगा। ज्यादा बोलनेसे मनकी एकाग्रता भंग होगी। ज्यादा चलनेसे थकान और कमजोरी होगी। अधिक भोजनसे आलस्य और तन्द्रा आवेगी।

वेदान्तके प्रारम्भिक अभ्यासमें आपको चार साधन मोक्षके लिये बताये जाते हैं उनमें से एक षट् सम्पद् है।

इनमें भी शम, दम और समाधान वास्तवमें मनको निग्रह करनेके लिये यौगिक साधन हैं। वासना त्यागके द्वारा जो राज योगियोंका चित्त वृत्ति निरोध है वही वेदान्तियोंका शम है। प्रत्याहार ही दम हैं। समाधान योगियोंकी एकाग्रता है। हंस पक्षी (मोक्ष) के योग और ज्ञान दो पख हैं।

प्रारम्भमें मनका साम्यभाव प्राप्त करनेके लिये आपको प्रयास करना पड़ेगा। फिर पीछे आपको स्वाभाविक ही मानसिक साम्यावस्था प्राप्त हो जावेगी। यही बात ध्यानके विषयमें ठीक है। कुछ वर्षों के अभ्यास करनेसे ध्यान स्वाभाविक हो जाता है।

जो बाते आपको जल्दी नाराज़ कर दिया करती थीं वे अब आपको स्पर्श तक नहीं करेंगी। जिन अवसरों पर पहले आप खीझ उठा करते थे उनसे अब ऐसा नहीं होता। आपको बल, सहन-शक्ति, सामना करनेकी क्षमता और विघ्नोंसे सुलटनेकी सामर्थ्य मिल गई है। दूसरोंके कुछ कठोर शब्द जो आपको बेचैन कर दिया करते थे अब कुछ दुःख नहीं पहुचाते। और यदि आप खीझ भी जाओ और क्रोधके चिन्ह प्रकट भी करो तो अब आप शीघ्र ही अपनेको संभाल लेते हो। ये सब

बातें बताती हैं कि आपका मनोबल और इच्छा शक्ति बढ़ रही हैं। ध्यानके अभ्याससे यह सब लाभकारी फल प्राप्त होते हैं।

सचेत मनको वशमें कर लेना सुगम है। परन्तु अर्ध चेतन मन (अन्तः करण) को वशमें करना अत्यन्त कठिन है। चाहे आप संन्यासी हैं चाहे सदाचारी। आपको देखना चाहिये स्वप्नमें मनकी गति विधि कैसी रहती है।

आप स्वप्नमें चोरी करने लगते हो। परस्त्रीगमन करते हो। कामुक भाव, नीच भावनायें आपमें जमी हुई होती हैं और वे अन्त करणमें गहरी दबी रहती हैं। इस अन्तः करण और इसके संस्कारोंको विचार, ब्रह्म-भावना तथा प्रणवके अर्थ सहित ध्यानके द्वारा नाश करो। जो मनुष्य मानसिक ब्रह्मचर्यमें स्थित है उसको स्वप्नमें एक भी कुविचार नहीं आ सकता। उसको कभी दु.स्वप्न नहीं आ सकता। स्वप्नमें विवेक और विचार नहीं होता। इसी कारण यद्यपि जाग्रत अवस्थामें विवेक और विचारके द्वारा आप पवित्र रहते हो तो भी आपको दुःस्वप्न दिखाई देते हैं।

एक प्रकारकी मनोवृत्ति बना कर अपनेको सत्तात्मक बनाने और हानिकारक तथा अवाञ्छनीय प्रभावोंसे बन्द

कर लेनेकी शक्ति प्राप्त करनेकी चेष्टा करो। ऐसा करनेसे आप अन्तरात्माकी सारी उच्चतर चेष्टाओंको ग्रहण कर सकोगे और बाह्य जगतके भी उन्नत प्रभावों और शक्तियोंको प्राप्त कर सकोगे। अपनेको यह भावना दो "मैं अपनेको सारी नीच वस्तुओंके लिये बन्द करके सत्तात्मक बनाता हूं और सारी उन्नत शक्तियोंको ग्रहण करने योग्य बनाता हूं।" कभी-कभी चेतना-पूर्वक इस प्रकारका मनोभाव धारण करते रहनेसे शीघ्र ही वह स्वभाव बन जाता है। जीवनके दृष्ट तथा अदृष्ट अङ्गोंसे सारे अवनत तथा अवाञ्छनीय प्रभाव बन्द हो जाते हैं और सारे उच्चतर प्रभावोंका आवाहन होता है। जितनी संख्यामें इनका आवाहन होता है उसी अनुपातसे ये मनमें प्रवेश करेंगे।

जब कभी मनमें शंका होवे कि "ईश्वर है या नहीं, मैं आत्म साक्षात्कारमें सफल होऊंगा या नहीं" तो इसको भली प्रकार लगाई हुई भावनाओंसे दूर कर देना चाहिये जैसे "यह सच है मैं अवश्य सफल हो जाऊंगा इसमें कोई सन्देह नहीं है।" मेरे शब्द कोषमें ये शब्द नहीं हैं "नहीं कर सकता' "असम्भव है", "कठिन है।" संसारमें सब कुछ सम्भव हैं। जब आप दृढ़ निश्चय कर

लो तो कोई बात कठिन नहीं है। दृढ़ निश्चयसे हर एक कार्यमें सफलता अवश्य होती है।

पदार्थ विज्ञानमें एक शब्द आता है "संचालन शक्ति।" यद्यपि शक्तिघन मौजूद होता है फिर भी करेन्ट नहीं चलता। जब यह मैगनेटसे जोड़ दिया जाता है तो संचालन शक्तिके द्वारा विद्युत प्रवाह चलने लगता है। इसी प्रकार मानसिक शक्ति जो अकिञ्चन संसारी व्यवहारोंमें अपव्यय और क्षीण होती है उसे ठीक-ठीक आध्यात्मिक मार्गमें लगाना चाहिये। यदि शीशा मैला हो तो आपको अपना मुख साफ साफ नहीं दिख सकता। इसी प्रकार यदि काम क्रोधादिक मल इकट्ठा हो जानेसे मन रूपी मुकुर मैला हो जावे तो मनमें ब्रह्मकी छाया नहीं दिखाई देती। जब यह पूर्णतः निर्मल कर दिया जावे और सात्विक बना दिया जावे तो यह ब्रह्मका प्रतिबिम्ब ग्रहण करने योग्य बन जाता है।

मनोनिग्रहके लिये आपको सात बातें करनी होती हैं–

(१) आपको सारी कामनाओं, वासनाओं और तृष्णाओंसे रहित होना चाहिये।

(२) आपको अपनी भावनाओं, क्रोध और अधीरताका संयम करना चाहिये।

(३) आपको मनका संयम करना चाहिये जिससे विचार शान्त और उद्वेग रहित हो।

(४) मनके द्वारा आपको नाड़ियोंका संयम करना चाहिये कि वे जितनी हो सकें उतनी ही कम उत्तेजित होंवे।

(५) आपको अभिमानका त्याग कर देना चाहिये। अभिमानसे मनको बल प्राप्त होता हैं। अभिमान मनका बीज है। जब आप निरभिमानो बन जाते हो तो आक्षेप और आलोचनाका आपके ऊपर कैसे असर हो सकता है।

(६) आपको सारी ममताओंका कठोरतासे नाश कर देना चाहिये।

(७) आपको सारी आशाओं और पक्षपातोंका त्याग कर देना चाहिये।

क्षमा, धैर्य, सहिष्णुता, दया, विश्व प्रेम, उदासीनता, निरभिमानिताकेअभ्यासके द्वारा आप क्रोधकेभावको निकाल सकते हो। क्रोधका भाव चले जानेके बाद भी थोड़ी अधीरता बची रहती है। इसको भी निकाल देना चाहिये। जो मनुष्य दैवी जीवन बितारहा हैउसके लिये यह बडी त्रुटि है।

प्रेम और दया मनको कोमल बनाते हैं। दयामें यह लक्षण होता है कि वह दुःख निवारणका उपाय निका-

रहती है। किसीको कष्ट पाता हुआ देख नहीं सकती, किसीको चोट नहीं पहुंचाती और जो दुःखमें हों उनकी आवश्यकताओंको देखती रहती है। दुःख पहुंचानेकी वृत्तिको दबादेनेमें इसकी पूर्णता है, और शोककी उत्पत्ति इसकी असफलता है।

संशय मनको बड़ा कष्ट देनेवाला है। इसका अपना ही मानसिक जगत होता है। यह मनुष्यको बारम्बार दुःख देता है। सन्देहोंका अन्त नहीं होता। यदि एक संशय दूर कर दिया जावे तो दूसरा इसकी जगह ले लेनेको तैय्यार खड़ा रहता है। यह मनका धोखा है। संशयकी ग्रंथियोंको ज्ञानकी तलवारसे काट दो। उसको जान लो जो सन्देह करता है। उसके अस्तित्वमें किसीको संशय नहीं होता।

जिस मनुष्यसे द्वेष करते हो उसकी सेवा करो। जो आपके पास होवे उसमेंसे उसको भी हिस्सा दो। उसको कुछ चीज खानेको दो। उसकी टांगें दबाओ। सच्चे हृदयसे प्रणाम करो। तुम्हारा द्वेष कम हो जावेगा। वह भी तुमसे प्रेम करने लगेगा। उपहार और मधुर शब्दोंसे उद्धत मनुष्य भी वशमें हो जाते हैं। इनके द्वारा मनुष्य शिर झुकाते हैं।

जब कभी द्वेष प्रकट होवे तो प्रेमके मधुर परिणामका विचार करो, धीरे-धीरे द्वेष जाता रहेगा। प्रेमके अनेक फल हैं। वह मनुष्य सुखसे सोता है सुखसे रहता है। बुरे स्वप्न नहीं देखता। वह सबको समान रूपसे प्रिय होता है। वह अमानुषी जीवोंको भी प्रिय होता है। देव उसकी रक्षा करते हैं। अग्नि, विष और तलवार उसके निकट नहीं जा सकते। वह शीघ्र ही मनको एकाग्र कर लेता है। उसका भाव शान्त रहता है। वह शान्तिपूर्वक मरता है और ब्रह्मलोकको जाता है।

कोई मनुष्य अपने आचरणमें शान्त होता है। जैसे वह अपना छोटा या बड़ा कर्तव्य सुचारु रूपसे पूर्ण करता है सब कोई उसकी शान्तिको देखते हैं। कोई दूसरा मनुष्य अपनी वाणी और व्यवहारमें शान्त होता है। उसकी शान्तिको हरएक देखता है। क्योंकि वह स्वभावसे ही सबका मित्र मधुर भाषी, उदार और अभिवादनशील होता है। आपको तीनों अवस्थाओंमें शान्त होना चाहिये। ऐसे मनुष्यमें प्रेमका विकास कठिन नहीं होता।

जब आप अपने शत्रुको सोच रहे हो, यदि अपने प्रति किये गये उसके अपराधोंका स्मरण करो तो मनमें द्वेष उत्पन्न होगा। आपको उसके प्रति बारम्बार प्रेमका

चिन्तन करके द्वेषभावको निकालना होगा। बार बार कल्पना करो कि वह आपका प्रेमी मित्र है और प्रयत्न पूर्वक उसके प्रति प्रेमकी प्रबल धारा उठाओ। भक्त विजयमें लिखी हुई पथहारी बाबाकी और गीत गोविन्दके रचयिता पंडित जयदेवकी कथा याद रखो जिसने उसके हाथ काट देनेवाले शत्रु डाकूके लिये मोक्षकी हार्दिक प्रार्थना की थी।

जो मनुष्य क्रोधका दास है वह भले ही स्नान करले चन्दन लेपन कर ले, थास बनाले, उज्ज्वल वस्त्र पहनले, फिर भी क्रोधके वशमे रहनेके कारण वह भद्दा (कुरूप) ही है। यदि आपको क्रोध आता है तो आप जीवन संग्राममें हार जाओगे। यदि आप सच्चा प्रयत्न क्रोधको दवानेका करो तो द्वेष जाता रहता है। यदि ऐसा न होवे तो आप किसी शान्त और पवित्र अवस्थाका स्मरण करो जो एक बार मनमें आनेपर द्वेषको दवा देती है और चित्तकी स्थिरता लाती है।

जब द्वेष उत्पन्न होवे तो मनमें प्रेमपूर्ण भावोंको लाओ जिससे कोमलता और अनुराग उत्पन्न होवे।

जो साधक भेदकी रेखाको मिटाना चाहते हैं उन्हें तुरन्त ही एक अत्यन्त प्रिय मनुष्यके लिये प्रेमका विकास

करना चाहिये, उसके पीछे एक उदासीन मनुष्यके लिये और फिर एक शत्रुके लिये ; और ऐसा करनेसे प्रत्येक विभागमें उनको हृदय कोमल बनाना चाहिये और प्रेमकी भावनाके साथ-साथ ध्यानका अभ्यास भी करना चाहिये।

कोई शत्रु मत बनाओ। किसी मनुष्यने यदि आपका कोई अपराध भी कर दिया है तो उसकी ओर भी शत्रुताका भाव मत रखो। कुभाव द्वेषका हल्का रूप है। यदि बारम्बार कुभावको दोहराया जावे तो वह द्वेषमें बदल जाता है। बारम्बार दोहराया गया द्वेष ईर्ष्यामें बदल जाता है।

क्रोध उस मनुष्यमें उत्पन्न होता है जो अपने शत्रुका चिन्तन करता है। काम उस मनुष्यमें उत्पन्न होता है जो स्त्री जातिमें आसक्ति रखता है। इसलिये स्त्रियोंमें आसक्ति बढ़ानी नहीं चाहिये।

जो साधक प्रेम, दया, सहानुभूति और साम्यभाव इन चारों दिव्य गुणोंके विकाससे प्रारम्भ करना चाहता है उसे सारी बाधाओंको अलग करके सबसे पहिले ध्यान-का अभ्यास करके लघु आहार करना चाहिये। फिर भोजनके पीछेके आलस्यको भगा कर एकान्त स्थानमें

सुख-पूर्वक बैठकर द्वेषकी खराबियों पर विचार करना चाहिये और सहिष्णुता तथा क्षमाके लाभोंपर ध्यान देना चाहिये। निःसंदेह इस अभ्याससे घृणा दूर होकर सहनशीलता बढ़ जावेगी। जिस मनुष्यके मन पर द्वेषका प्रभुत्व होता है और जो स्वयं द्वेषसे दब जाता है वह प्राणियोंकी हत्या करता है। धैर्य सबसे उत्तम गुण है। क्षमासे कोई वस्तु नहीं बढ़ सकती। जो मनुष्य क्षमामें दृढ है वह अवश्य ही दिव्य पुरुष है।

'एक समयमें एक ही काम भली प्रकार करना अच्छा होता है।' जीवनमें सफलता पानेके लिये यह बड़ा सुन्दर नियम है। कुछ लोगोंका स्वभाव ऐसा होता है कि एक समय एक कामको करनेकी चेष्टा करते हुए भी किसी और बातको विचारते रहते हैं। ऐसे मनुष्य अपने कार्यमें सफल नहीं होते।

मनका विचारात्मक अङ्ग और क्रियात्मिक अङ्ग दोनोंको साथ कार्य करना चाहिये। किसी एक वस्तुकी ओर ध्यान देते हुए हमारे विचार दूसरी वस्तुकी ओर नहीं जाने चाहिये। जब आप पढ़ रहे हो तो पढ़ाईका ही विचार रखो उस समय क्रिकेट मैचका विचार मत करो। जिस समय क्रिकेट मैच खेल रहे हो उस समय

पढ़ाईका ध्यान मत करो। असफलताका निरन्तर कारण यही होता है कि एक समयमें एकसे अधिक विषयोंका विचार करनेका प्रयास किया जाता है।

जो मनन करता है और अन्तर्मुख वृत्तिके द्वारा अन्तर्निरीक्षण करता है केवल वही पुरुष अपनी संसारी प्रकृतिको बदल सकता है। ब्रह्मका भाव केवल उसी मनुष्यमें स्थायी रूपसे ठहर सकता है।

यदि आप इसे हस्तगत करनेका रहस्य जान लो तो मन जल्दी ही इच्छानुसार ढाला जा सकता है। जिधरको आप चाहो उधरको ही इसे मोड़ सकते हो। जिन वस्तुओंको आप बहुत पसन्द करते हो उनके लिये अरुचि पैदा कर सकते हो और जिन्हें अत्यन्त नापसन्द करते हो उनके लिये रुचि पैदा कर सकते हो।

दृढ़ कामना, श्रद्धा और बलवती इच्छा-शक्ति इन तीनों साधनोंके द्वारा आप अपने प्रत्येक प्रयासमें आशा पूर्ण सफलता प्राप्त कर सकते हो।

यदि आप स्वभावको बदल दो तो चरित्रको भी बदल सकते हो। एक कर्मका बीज बोते हो उससे स्वभाव बनता है। स्वभावसे चरित्र बनता है और चरित्रसे प्रारब्ध बनता है। स्वभाव सचेत मनसे उत्पन्न

होता है ; और जब बारम्बार दोहराये जानेसे यह अर्ध चेतन मन (अन्तः करण) में प्रवेश कर जाता है तो मनुष्यकी प्रकृतिका अङ्ग बन जाता है। नये अभ्याससे आप अपनी लेख शैलीको बदल सकते हो। इसी प्रकार नई विचार शैलीके द्वारा आप अपने प्रारब्धको भी बदल सकते हो। अब तो आप सोचते हो मैं शरीर हूं। इस विचारको बदल कर सोचने लगो 'मैं ब्रह्म हूं।' कुछ काल बीतने पर आप ब्रह्म भावनामें स्थित हो जाओगे।

यद्यपि स्वभाव प्रकृतिका अंग ही है, यह नये, अनुकूल तथा बलवान स्वभावसे बदला जा सकता है। मन स्वभावोंकी गठरी है। धैर्य पूर्ण प्रयत्न और लगनके द्वारा आप किसी भी स्वभावको बदल सकते हो। दिनमें सोना, देरसे सोकर उठना, ऊंचे स्वरसे बात करना इत्यादि स्वभाव नये-नये स्वभाव बना कर बदले जा सकते हैं।

मन तो तुम्हारा औज़ार ही है। आपको इससे भली प्रकार काम लेना जानना चाहिये। जब मनमें भिन्न-भिन्न भावनायें, मुद्रा और भाव उत्पन्न होवे तो उनको अलग-अलग कर लो, उनका प्रत्येकका स्वभाव पहिचानो उनकी काट छांट करो, विश्लेषण करो। अपने आपको

उनके साथ मत मिला दो। असली 'मैं' तो उनसे बिल-कुल पृथक् हैं। यह मूक साक्षी है। अपनी भावनाओं, चेष्टाओं और मुद्राओं पर प्रभुत्व प्राप्त करो और दासकी अवस्थासे उठकर आध्यात्मिक राजा बन जाओ जो कि उनपर शक्ति और बल सहित शासन कर सके। वास्तवमें आप नित्य स्थायी, सर्वव्यापक आत्मा हो। अपनेको मनके अन्यायसे छुड़ा लो। इस मनने आपको अब तक तंग किया है, आपपर शासन किया है और अपनी इच्छा-नुसार आपसे काम लिया है। शेरके समान हिम्मत करके उठ बैठो। अपने सच्चे आत्माकी महिमाको वर्णन करो और मुक्त हो जाओ।

इस शक्तिशाली, सूक्ष्म मन रूपी मशीनके चतुर सचालक बन जाओ। अपनी सारी मानसिक शक्तियोंको अपने उत्तम लाभके लिये उपयोग करो। जब आप इसको योग्यतासे उपयोग करना जान लोगे तो मन आपका अच्छा और इच्छुक सेवक बन जावेगा। अर्ध-चेतन मनसे भी काम लो। सुषुप्तिमें अथवा सचेत जाग्रत अवस्थामें इसे काम करनेके लिये आज्ञा दो। यह एक पलभरमें सारे आंकड़े यथास्थान ठीक करके छांट देगा।

आपको अपने भावों और विचारों पर प्रभुत्व होना चाहिये। साधारण मनुष्य अपने विचारोंका शिकार बन जाता है और वे उसपर अधिकार जमा लेते हैं कि आने वाली मुसीबतका चित्र बड़ा बोझल होता है और इसका बोझलपना ही इसे मनमें हर समय बनाये रखता हैं और इसे निकालनेकी चेष्टा व्यर्थ रहती है। यदि आपके जूतेमें एक कंकर घुस जावे और दुःख देने लगे तो उसे निकाल देते हो। जूता उतारते हो और झटकार देते हो। यदि मामलेको अच्छी प्रकार समझ लिया जावे तो किसी बार-बार आने वाले दुःखदायी विचारको भी मनसे हटाना इतना ही सुगम है। इसमें कुछ भी संदेह नहीं होना चाहिवे। बात बिल्कुल साफ है। दुःख-दायी विचारको मनमेंसे निकाल देना भी उतना ही सुगम होना चाहिये जितना कि जूतेमेंसे कंकरी निकाल देना और जब तक मनुष्य इतना नहीं कर सके उसे प्रकृतिके ऊपर विजय पाने और उससे ऊपर उठ जानेकी बात करनी निरर्थक है। वह चिमगादड़के पंख जैसी आकृति वाले उन विचारोंका ही दास और शिकार है जो उसके मस्तिष्कमें चक्कर लगाते रहते हैं। ऐसे मनुष्योंका भाग्य भी शोचनीय है।

राजयोग चित्त-वृत्ति-निरोध सिखाता है। मानसिक विकारोंका निग्रह योग है। यह आपको बल देता है जिससे आप विचारोंको निकाल सको और यदि आवश्यक होवे तो उन्हें वहांपर ही मार भी सको। स्वाभाविक है कि इस कलाके लिये भी अभ्यास आवश्यक है परन्तु दूसरी कलाओंकी भांति जब एक वार इसे सीख लिया जावे तो इसमें कोई रहस्य या कठिनाई नहीं है। यह तो अभ्यास करने योग्य ही है।

यदि आपको अपने विचारों पर वशित्व है तो आप गम्भीर एकाग्रतासे बहुत कार्य सम्पन्न कर सकते हो। सब प्रकारकी मानसिक व्यथायें, चिन्तायें और क्लेश दूर हो जावेंगे; और जो शान्ति आपको प्राप्त होगी उसका तो उचित रीतिसे वर्णन हो नहीं हो सकता।

सुख-पूर्वक आसन पर बैठ जाओ और जहां तक हो सके बाहरी बखेड़ोंसे रहित हो जाओ। एक शान्त कमरेमें चले जाओ जहां आपको किसी बाधाका भय नहीं हो जिससे कि आपका मन सुरक्षित और विश्रान्त रहे। इसमें सन्देह नहीं कि सदा आदर्श अवस्था नहीं मिल सकती क्योंकि यह जगत ऐसा ही हैं। सब स्थानोंमें गुण और अवगुण साथ-साथ मिले हुए हैं। आपको

ऐसी जगह पसन्द करनी चाहिये जिसमें अधिकसे अधिक गुण हों और कमसे कम अवगुण। जो कुछ अच्छेसे अच्छा कर सकते हो वह आपको करना चाहिये। आपको थोड़ी कठिनाइयोंको भी सहना चाहिये और उन पर प्रभुत्व प्राप्त करना चाहिये। अपने आप अकेले रहो। बाधक कारणोंसे अपनेको अलग हटा लो। मनको वशमें करनेके लिये बल-पूर्वक प्रयत्न मत करो। इससे बल-पूर्वक कुश्ती मत लड़ो। ऐसा करना भूल है। थोड़ी देरके लिये इसे खुला छोड़ दो और इसे इधर उधर भाग कर अपने प्रयत्नको समाप्त कर लेने दो। पहिले तो यह मन अनसिखे बन्दरके समान कूदेगा। धीरे-धीरे यह कम होता जायेगा। तब आप इसे अपने लक्ष्यपर या तो साकार मूर्तिपर या किसी निराकार भावपर जमा सकते हो।

विचार-पूर्ण मनुष्यका मन लोपसा ही हो जाता है।

"मैं दन्तधावन करूं, मैं प्रातः की चाय पियूं, मैं स्नान करूं, मैं दिनका भोजन करूं, तीसरे पहर थोड़ासा आराम करूं।" ऐसे-ऐसे विचार मनके ऊपरी स्तरोंपर तैरते रहते हैं। इनका भी निग्रह होना चाहिये। आपको इन विचारोंसे रहित होकर मनको शान्त करना चाहिये।

घृणा, पक्षपात, असहिष्णुता ये द्वेषके विकार हैं। अत्यन्त शत्रुताको दौर्मनस्य कहते हैं। इन दोषोंको प्रेम-तितिक्षा, ब्रह्म-भावना, आत्म-दृष्टि, सत्संग, विचारादिसे दूर करो। पृथ्वीमें प्रेम बड़ी शक्ति है। करुणा सबसे उच्चतम साधना है। दूसरोंको दुःख मत दो और दुःखियोंका दुःख निवारण करो। यह करुणा है। जब तक मनमें द्वेष, पक्षपात, ईर्ष्या, क्रोध, कामादिक रहते हैं तब तक समाधि नही हो सकती।

कोई कहते हैं कि बच्चे बहुत सुखी हैं। यह ठीक नही। वे बहुत अधिक प्रसन्न हो जाते हैं। उनको गम्भीर प्रतिफल भी मिलता है। उनका मन साम्य-भाव में नहीं होता। वे बिना किसी बातके भी घन्टों तक रोते रहते हैं। साम्य-भावमें मन रखनेवाला मनुष्य ही सच्चा सुखी हो सकता है।

जब क्रोध प्रकट होनेका प्रयत्न करता है तो मौन हो जाओ। चुप रहो। कठोर वाणी या गन्दी बात मत निकालो। अन्तःकरणसे निकलने से पहिले ही इसे कुचल देनेका प्रयत्न करो। आपको बहुत सचेत रहना होगा। यह अकस्मात् ही निकलनेकी चेष्टा करता है, क्रोधके प्रकट होनेसे पहिले मनमें उद्वेग होता है, आपको

इस उद्वेगको ही मसल डालना चाहिये, इससे पहिले कि यह अधिक स्थूल रूप धारण कर ले जैसे मुखका स्नायु मंडल सिकुड़ जाना, दान्तोंका भिचना, आंखोंका लाल हो जाना इत्यादि। आपको मनको भी दण्ड देना होगा। जब कभी मनमें उद्वेग प्रकट होवे तब ही आपको एक दिनका उपवास करके आत्म-दण्ड और आत्म-निग्रह करना होगा।

जैसे सागरके ऊपर छोटी और बड़ी लहरें उठती है इसी प्रकार मन रूपी समुद्रमें क्षुद्र वासनायें और मिथ्या संकल्प उठा करते हैं। अनेक प्रकारकी सनक छोटी-छोटी लहरें हैं। आपको इससे भय नहीं करना चाहिये। ये आती हैं और शीघ्र ही चली जाती हैं। आपको बलवती लहरों अर्थात् अलीक संकल्पोंसे सतर्क रहना चाहिये। बलवान् विचारोंको सद्विचारके दृढ़ अभ्यास और तर्क द्वारा निकाल देना चाहिये।

बकरी जैसा मन या वेश्याका सा हृदय मत रखो। कुछ सेकण्डोंके लिये बकरी हरी घासके एक टुकड़ेमें चरती है और फिर तुरन्त ही दूसरे दूरके टुकड़ेमें कूद जाती है भले ही पहले टुकड़ेमें बहुत घास खानेके लिये होती है। इसी प्रकार अस्थिर डोलनेवाला मन एक

साधनासे दूसरी साधना, एक गुरुसे दूसरे गुरु, भक्ति योगसे वेदान्त, ऋषिकेशसे वृन्दावन इस प्रकार कूदता रहता है। साधकके लिये यह बड़ा हानिकारक है। एक ही गुरु, एक स्थान, एक प्रकारके योग, एक प्रकारके साधनमें लगे रहो। स्थिर और दृढ़ बने रहो। तभी आपको सफलता होगी। अपने मनको स्थिर और दृढ़ निश्चयी बनाओ।

सनकें मनमें उठनेवाली तरंगे हैं। वे जल्दी-जल्दी उठती और टूटती हैं। वे आपको इधर उधर घसीटती हैं। इनको देखते रहो। ये मनमें आकस्मिक परिवर्तन उत्पन्न कर देती हैं। ये आपको बेचैन करती हैं। सनकके वशमें होकर कार्य मत करो। विवेक और बुद्धि सहित कर्म करना चाहिये। सनकके द्वारा किये हुए कर्मसे क्लेश मिलता है। मन आपको सनकके द्वारा धोखेमें डालता है। जैसे ही सनक उत्पन्न होवे वैसे ही विचार द्वारा उसको नष्ट कर दो। सदा प्रश्न करो कि प्रस्तुत कार्यसे आपको आनन्द और आत्म-कल्याण मिलेगा या नहीं। चौकन्ने रहो।

निम्नाङ्कित बातें आपको निश्चय ही मनकी शान्ति प्राप्त करावेंगी।

(१) दुष्ट पुरुषोंकी सङ्गतिसे बचो। (२) अकेले रहो। (३) अपनी मांगोंको कम करो। (४) विवाद (बहस) मत करो। इससे विरोधका भाव बढ़ता है। यह कोरा शक्तिका अपव्यय है। (५) अपनी तुलना दूसरोंसे मत करो। (६) जनताकी आलोचनाकी ओर ध्यान मत दो। (७) नाम और यशका विचार छोड़ दो।

महर्षि पतञ्जलिके मतानुसार मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षाके द्वारा चित्त प्रसाद् अथवा मनकी शान्ति मिलती हैं। अपने बराबर वालोंसे मित्रता, अपनेसे नीचे लोगों पर करुणा, अपनेसे श्रेष्ठ पुरुषोंकी ओर मुदिता, और दुष्टोंकी ओर उदासीनताको उपेक्षा कहते हैं।

पति और पत्नीका प्रेम मुख्यतः शारीरिक होता है। यह स्वार्थ पूर्ण, अस्थायी और बदलता रहने वाला होता है। जिसने आत्माका साक्षात्कार कर लिया है केवल वही पुरुष सबको सच्चे हृदयसे प्रेम कर सकता है। मन और बुद्धिकी समानताके आधारपर बनाया हुआ दो साधकोंका प्रेम सच्चा और स्थायी होता है। स्वार्थ रहित हो जाओ। स्वार्थ बड़ा प्रधान मल है। यह बुद्धि को ढक लेता है। इसे निःस्वार्थ सेवा, दान, वेदान्त साहित्यके स्वाध्याय और सत्सङ्ग द्वारा दूर कर दो।

जिसने अपने मनको पवित्र कर लिया है वह शक्तिका केन्द्र बन जाता है। अन्य दुर्बल, अपवित्र और हीन मन स्वतः ही इसकी ओर खिचे आते हैं क्योंकि उन्हें ऐसे शुद्ध और उन्नत मनसे शान्ति, शक्ति और बल प्राप्त होते हैं।

मौन धारण करनेके ये लाभकारी फल हैं। वाक् इन्द्रिय मनको बुरी तरह अपकृष्ट करती है। मौन रहनेसे अतुल शान्ति मिलती है। वाक्-शक्ति ओजस्-शक्तिमे बदल जाती है। संकल्प बहुत घट जाते हैं। इच्छा-शक्ति बलवती हो जाती है। आध्यात्मिक साधकों को नित्य ही कुछ घण्टोंके लिये मौन रखना चाहिये

केवल सदाचार पालनसे ईर्ष्या, राग, द्वेष, काम और क्रोधादिको दबाया जा सकता है, परन्तु उनको पूर्णतया निकाला नहीं जा सकता। अशुद्ध वासनाओंके बीजको केवल निर्विकल्प समाधि ही भून सकती है। इन अपवित्र अशुभ वासनाओंको सदाचार संस्कृतिके द्वारा दुर्बल किया जा सकता है। उनका सूक्ष्म रूप हो जाता है। वे किसी व्यक्तिकी हानि नहीं कर सकती। वे पूर्ण संयममें रहती हैं।

सबसे प्रथम और अग्रणी विचार "अहंता" का है। इसकी उत्पत्तिके पीछे ही और सब विचारोंकी उत्पत्ति होती है। पहिले उत्तम पुरुष सर्व नाम "मैं" मनमें प्रकट हो जाता है उसके पीछे ही प्रथम पुरुष सर्व नाम "यह" और मध्यम पुरुष सर्व नाम "तू" प्रकट होते हैं। यदि 'मैं' का लोप हो जावे तो 'तू" और "यह" का भी लोप स्वयं हो जावेगा। यथा योग्य ब्रह्म विचारके द्वारा इस भ्रम-पूर्ण तुच्छ 'मैं" को निकाल दो और कोई मार्ग है ही नहीं।

साधारणतः युवती विवाहिता स्त्रीके विचारोंका आधार काम-पूर्ण होता है। वृद्धा माताके विचारोंका आधार अपने पुत्रों और पौत्रोंकी ओर प्रेम-पूर्ण होता है। बहुसंख्यक मनुष्योंके विचारोंका आधार अधिकतर ईर्ष्या और द्वेष होता है। लक्ष्य तक पहुंचनेके लिये आपको अपने विचारोंका आधार सात्विक बनाना चाहिये। यदि आप भगवान् कृष्णके भक्त हैं तो आपको उनके रूप स्मरण और सुविख्यात मन्त्र 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' का जप करनेका आधार बनाना चाहिये। निर्गुण उपासकको ॐकार चिन्तन और उसके अर्थ स्मरण (सच्चिदानन्द, व्यापक, परिपूर्ण आत्मा) का

आधार बनाना चाहिये। संसारमें कार्य करते रहो और जिस क्षण भी चित्तको अवकाश मिले अपने विचारोंके आधारका चिन्तन प्रारम्भ कर दो चाहे वह आपकी रुचि, स्वभाव और सामर्थ्यके अनुसार सगुण हो या निर्गुण।

निरन्तर चिन्तनसे एक टेव पड़ जाती है और मन बिना प्रयासके ही विचारके आधारकी ओर दौड़ने लगेगा। यह बड़े खेदकी बात है कि बहु-संख्यक लोगोंका कोई लक्ष्य, कार्यक्रम और विचारका आधार नहीं होता। वे नाशकी ओर ही जाते हैं। विश्वविद्यालयोंसे सम्मान पत्र प्राप्त शिक्षित कहाने वाले लोगोंका भी कोई लक्ष्य (उद्देश्य), कार्यक्रम और विचारका आधार नहीं होता। आध्यात्मिक ज्ञानके सामने तो यह विश्वविद्यालयोंकी शिक्षा भूसाके समान ही है। डिप्टी-कलक्टरकी जब पेन्शन हो जाती है तो वह तीसरा विवाह कर लेता है और किसी रियासतमें दीवान पदपर नियत हो जाता है। जीविका वृत्तिसे निवृत हो जानेपर प्रत्येक मनुष्यको अपने विचारोंका एक आधार बनाना चाहिये और अपना समय दार्शनिक स्वाध्याय और दैवी ध्यानाभ्यासमें बिताना चाहिये।

यदि आप अपना सारा समय आध्यात्मिक साधनमें लगा देनेको असमर्थ हो तो इस जीवनमें कमसे कम कुछ आध्यात्मिक संस्कार बनानेकी तो चेष्टा कर लो। नित्य ही थोडी देरके लिये किसी प्रकारका ध्यान किया करो कमसे कम प्रातःकाल और सायंकाल आधे घन्टेके लिये अवश्य ही एक कमरा ध्यानके लिये बनालो। किसी मन्त्रका थोड़ासा जप किया करो। नियम-पूर्वक गीता का स्वाध्याय किया करो। सत्सङ्ग करो। वर्षमें एक वार एक सप्ताहके लिये ऋषिकेश, नासिक, बनारस, हरद्वार, प्रयागमें रहनेके लिये जाया करो। महात्माओंका दर्शन करो। ऐसा करनेसे आपको कुछ आध्यात्मिक संस्कार प्राप्त हो जावेंगे, जो नया सात्विक जीवन प्रारम्भ करनेमें उपयोगी प्रतीत होंगे। आपको उत्तम जन्म मिलेगा। आपके अगले जन्ममें योग साधनके लिये अपने अन्दर छिपे हुए दिव्य रहस्यका उद्घाटन करनेके लिये उपयुक्त सामग्री प्राप्त होगी। ईश्वर अपनी कृपा द्वारा आपको आध्यात्मिक साधनके लिये सारी सुगमतायें और अवसर प्रदान करेंगे। थोडेसे भी नियम पूर्वक योगाभ्यास और वेदान्तिक साधनके द्वारा आप अपनी मनोवृत्ति और पुराने कुसंस्कारोंको बदल सकते

हो। आप कई आगामी जन्मोंको काट सकते हो। तीन वर्षके अभ्याससे आप जन्म मरणके पंजोंसे छुटकारा पा सकते हो। आप संन्यासी बन सकते हो। इसी जन्ममें अभी क्यों नहीं? अनावश्यक जन्मोंके चक्रको और इनके अनुगामी क्लेशोंको आप क्यों नहीं काट देते? आप कब तक इस संसारके, विषयोंके, और इन्द्रियोंके दास बने रहना चाहते हो? आप जाग जाओ। साधन करो और अमृतत्व प्राप्त कर लो। अपने ही द्वारा आत्माका उद्धार करना चाहिये।

सात्विक पुरुषोंका संग और अच्छी सामग्री मनको उन्नत करते हैं। सत्तात्मक सत्सङ्गके अभावमें आत्म-दर्शी पुरुषोंकी लिखी हुई पुस्तकोंका स्वाध्याय जैसे श्रीशङ्कराचार्यके ग्रन्थ, योगवासिष्ठ, श्री दत्तात्रेयकी अवधूत गीता आदि पढ़ो।

दान, जप, व्रत, तीर्थयात्रा, सेवा, दया, स्वाध्याय, अग्निहोत्र, यज्ञादि सारे सत्कर्मोंका आशय मनकी शुद्धि है। यदि आप सत्य और ब्रह्मचर्यका अभ्यास करो तो आप निर्भय हो जाओगे। अन्तमें आप ब्रह्म-प्राप्ति भी कर लोगे। एक बातको दृढ़तासे पकड़ लो।

शुद्ध किया हुआ संखिया (विष) जब ठीक मात्रामें

दिया जावे तो लाभ दायक होता है। यह अनेकों रोगोंको दूर करता है। रक्तको शुद्ध करके उत्तम बनाता है। जब अशुद्ध होता है और ठीक २ मात्रामें नहीं दिया जावे तो इसके अनेक कुपरिणाम होते हैं। इसी प्रकार मनको जब निर्विषय और शुद्धकर दिया जावे तो यह मोक्षतक पहुचा देता है। जब यह अशुद्ध और विषयासक्त होता है तो बन्धनका कारण होता है।

आपको न केवल संस्कारोंका नाश करनेकी चेष्टा करनी चाहिये किन्तु मनका, अहम् वृत्तिका (जो देहाध्यास बनाती है) और व्यावहारिक बुद्धिका भी (जो जीव भाव और ससारके अनेक भेद बनाती है) नाश करना चाहिये। तब आप स्वरूप (अर्थात् सहज, सच्चिदानन्द, निर्विकल्प) अवस्थामें स्थित हो जाओगे। यही वास्तविक मौनावस्था या अद्वैत ब्रह्म-निष्ठा है। मनके निग्रहमें ही बुद्धिका संयम भी शामिल है और इस तुच्छ 'अहंता' का विनाश भी अन्तर्गत है।

आपको मनके साथ नर्मी नहीं करनी चाहिये। यदि आप इसे आज एक प्रकारकी विलास-सामग्री दोगे तो कल यह दो चाहेगा। इस प्रकार प्रतिदिन विलासिता बढ़ेगी। यह अधिक लाड़ दुलारमें बिगड़े हुए बच्चेके

समान हो जावेगा। बच्चेको डांटना बन्द कर दो तो वह बिगड़ जाता है—यही कहावत मनके लिये भी लागू होती है। इसकी प्रत्येक गम्भीर भूलके लिये आपको उपवास आदिके द्वारा इसे दंड देना चाहिये। इन्द्रियोंको यथा स्थान वशमें रखो। उन्हें एक इञ्च भी मत हिलने दो। जब भी कोई इन्द्रिय अपना सिर उठानेके लिये फुंकार करे तभी विवेकका डन्डा उठा लो। इस अभ्याससे आपका मन एकाग्र हो जावेगा।

वासनाओंके त्यागसे जो चित्तको शान्ति होती है उसे शम कहते हैं। शमयुत पुरुषका अन्तःकरण वर्फसे भी अधिक ठन्डा होता है। उसकी ठन्डककी बराबरी चन्द्रमाकी शीतलता भी नहीं कर सकती। संसारी मनुष्यका अन्तःकरण साधारणतः धधकती हुई भट्ठीके समान होता है। शमयुत पुरुष इष्ट वस्तुकी प्राप्तिसे हर्षित नहीं होता और अनिष्ट वस्तुके प्राप्त होनेसे शोक नहीं करता उसका मन सदा साम्यावस्थामें रहता है। उसका कोई शत्रु नही होता। शमयुत पुरुषकी महती आध्यात्मिक शान्तिकी तुलनामें एक सम्राटका सुख भी तुच्छ होता है मोक्षके चार अङ्ग रक्षकोंमें से एक शम है। यदि आपमें शम है तो इसके बाकी तीनो मित्र भी आपके पास स्वय-

मेव आजावेंगे—अर्थात् सन्तोष, विचार और सत्सङ्ग ये भी प्राप्त हो जायेंगे।

मोक्ष प्राप्तिमे सत्संग वहुत सहायक होता है और उपाय नहीं है। यह मनको वद्ल डालता है इसके राजसिक स्वभावको भी। यह पुराने विषय संस्कारोंको हटाकर मनमें सात्विक संस्कार भर देता हैं। आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक तीनों प्रकारके तापोंको दूर करके अन्तःकरणको शीतल वना देता है। मोहका नाश कर देता है। यदि आपको सत्सङ्ग मिल सके तो फिर किसी तीर्थको जानेकी जरूरत नहीं है। यहो तीर्थों का भो तीर्थ हैं। जहा कहीं सत्सङ्ग होता है पावन त्रिवेणी तो वहां पहिलेसे ही होती है।

तप पापोंको नाश करता है इन्द्रियोंको दुर्वल करता है चित्तको शुद्ध करता है और मनको एकाग्र कर देता है।

आपको मनके दूषित विकास और इसे अनुचित मार्ग में जानेसे वचना चाहिये। मनकी उद्दण्ड शक्तियोंको सत्यके प्राकट्यके लिये उत्तम मार्गों की ओर झुकाना चाहिये। मनको सत्यसे भरना चाहिये। इसे निरन्तर सत्य या ईश्वरके चिन्तनकी शिक्षा देनी चाहिये। मन खेलाड़ी वच्चेके समान है।

योग मार्ग आपको उपदेश देता है, किस प्रकार आप मनको शुद्ध करके शीशेके समान निर्मल बना सकते हो और काम, क्रोध, लोभ, अहकार ईर्ष्या आदि मलोंसे छूट सकते हो। यह केवल बड़े तीव्र साधनसे ही हो सकता है कि आप अनुपम अपौरुषेयके उच्चतर शिखर पर पहुंच जाओ जहांसे संसारकी वरप्राप्त आत्मायें सुदूर दृश्योंका दर्शन करती हैं और उन्नत दिव्य जीवनका उपभोग करती हैं।

ईर्ष्याको नष्ट करनेके तीन उपाय हैं (१) मिथ्या-दृष्टि, (२) भ्रातृ-भावना, (३) आत्म-भाव।

(१) सारा संसार, इसके भोग, धन और विलासके सहित भ्रमपूर्ण है। मैं दूसरेसे ईर्ष्या करके क्या लाभ पाऊँगा।" जब कोई इस प्रकार गम्भीरतासे दिनमें कई बार सोचता है तो ईर्ष्याकी वृत्ति शनैः २ मर जावेगी। यह वृत्ति सारे क्लेशोंकी जड़ है। यह अत्यन्त दृढ़तासे जमी होती है।

(२) आप अपने प्रिय मित्र और भाईसे ईर्ष्या नहीं करते। आप मित्र और भाईके साथ एक ही बन गये हैं। अन्दरसे आपको मालूम होता है कि जो कुछ इनका है वह आपका भी है। इसी प्रकारकी भावना सबके साथ रखनी होगी। हर किसीको अपने भाई या मित्रके

समान प्रेम करना होगा। तब आपको ईर्ष्या वृत्ति नहीं रहेगी।

(३) तीसरा निर्विकल्प अवस्था है। मनमें बार-बार कहो "मैं ही यह सब हूँ" "मैं सब कुछ हूँ।" अपनेमें यह कहो अनुभव करो। भावना करो कि तुम्हारे अपने आत्माके सिवाय कहीं और कुछ है ही नहीं। इस आत्म-भावके धारण करनेसे और न ईर्ष्या दूर हो जायेगी। आपको सदा ईसीका मनन करना चाहिये। "वासुदेव सर्वमिति" वासुदेव सब कुछ है। वासुदेवका अर्थ है सर्व व्यापी। आपको अनन्त आनन्द मिलेगा जिसका वर्णन नहीं हो सकता। यह केवल अनुभवसे ही जाना जाता है।

योग मार्गमें यह आवश्यक है कि हम मानसिक और आध्यात्मिक साधन क्रमको पूरा करें। उपनिषद् भी लक्ष्यको प्राप्त करनेके लिये तीव्र तपस् पालन पर जोर देते हैं। ब्रह्मचर्यका जीवन—जिसमें गृहस्थीकी कोई आसक्ति आपके मनमें उद्वेग नहीं करेगी, हो आपको आध्यात्मिक साधनामें पूर्ण अवधान देने योग्य बनायेगा। तपस्से मानसिक मौन मिलेगा। मनकी बेचैनी दूर होगी। यह मनकी बेचैनी ध्यानमें बाधक होती है। श्रद्धा का होना आवश्यक है।

जब आप अपना मन परमात्मामें जमानेकी चेष्टा करते हो और पवित्रताकी भावना करते हो ठीक उसी क्षणमें सारे कुत्सित विचार और संस्कार बड़े वेगके साथ फूट पड़ते हैं और बदला लेनेकी इच्छासे विरोध करते हैं। इसे संस्कारोंका जमघट कहते हैं। अच्छे संस्कार भी आपकी सहायता और कुसंस्कारोंको भगानेके लिये इकट्ठे हुआ करते हैं। स्वामी श्री अद्वैतानन्दजीका पिता बड़ा चण्डीका भक्त था। मृत्युकालमें वह अर्ध-चेतन अवस्थामें था। जवानीमें जितने चण्डी स्तोत्रके श्लोक उसने याद किये थे, वह उन सबकी आवृत्ति करने लगा। यह आध्यात्मिक संस्कारोंका जमघट है।

कभी-कभी मन अनावश्यक ही गोंदके समान एक विचारको चिपक जाता है और उसे छोड़ता ही नहीं। एक ही विचारके दास मत बन जाओ। जब कभी आपको नये सुदृढ़ विचार मिलें, पुराने विचारोंको अवश्य त्यागना चाहिये। विवेक द्वारा अभिमानका त्याग कर दो। प्रत्येक वस्तु अनित्य है। आप व्यर्थ ही अभिमानसे क्यों फूले हुए हो?

—

१२—भयको कैसे दूर किया जावे

भय एक बड़ा मानव अभिशाप है। यह एक गुणहीन अभावात्मक विचार है। यह आपका सबसे बुरा शत्रु है। इसके अनेक रूप हैं यथा रोग भय, मृत्यु भय, लोक समालोचनाका भय, धन-सम्पत्ति विनाशका भय आदि। भयके कारण अनेकों जीवनोंपर पाला पड़ जाता है, लोग दुःखी हो जाते हैं और अपने प्रयत्नमें असफल रह जाते हैं। यही विचार रखो कि आप अमृत अभय आत्मा हो। शनैः-शनैः भय दूर हो जावेगा। सत्तात्मक सद्गुण 'साहस' का विकास करो। भय भाग जावेगा। मनमें कल्पना शक्ति भयको तीव्र करती है। देहाध्यास (शरीरका मोह) सारे भयका कारण है। जो योग या ज्ञानके द्वारा स्थूल शरीर इस अन्नमय कोषको फेंक सकता है वह भयसे मुक्त हो जावेगा। जिसने भयको जीत लिया है उसने सब कुछ जीत लिया। उसे मनपर प्रभुत्व प्राप्त हो गया।

कुछ लोग वीरतासे रणभूमिमें गोले या गोलियोंका सामना कर सकते हैं, परन्तु वह जन:समाजकी आलोचनासे डरते हैं। कुछ लोग निर्भय होकर वनमें चीतेका सामना कर सकते हैं, परन्तु वह सर्जनकी छुरी और

अस्त्रोंसे डरते हैं। आपको सब प्रकारके भयसे रहित हो जाना चाहिये। एक यही विचार कि आप अमर आत्मा हो सब प्रकारके भयको भली भांति नष्ट कर सकता है। भयके इस घातक रोगके लिये एक यही संजीवनी औषधि है।

१३—योगमाला

अभाव दर्शनका विषय कहा गया है क्योंकि किसी पदार्थका अभाव किसी दूसरी जगह उसकी सत्ताकी सूचना देता है।

अग्नि दो प्रकारकी होती है सामान्य और विशेष। सामान्य अग्नि सारे वृक्षों और काष्ठमें छिपी रहती है। जलानेके लिये इसका कोई उपयोग नहीं है। विशेष अग्नि जो दियासलाईके घिसने अथवा काष्ठके दो टुकड़ोंको रगड़नेसे निकलती है, वह भोजन बनाने तथा अन्य कार्यों में मनुष्यके लिये उपयोगी होती है। इसी प्रकार सामान्य चैतन्य सब कहीं व्यापक है और विशेष चैतन्य भी होता है। सामान्य चैतन्य मनुष्योंकी अविद्याका नाश नहीं कर सकता। आत्माकार वृत्ति या अविच्छिन्न विशेष चैतन्य ही मूल अज्ञानको नष्ट कर देता है जिससे

कि स्वरूप घिरा हुआ रहता है। यह विशेष चैतन्य तभी विकसित होता है जब मनुष्य शुद्ध हृदयसे अनन्त रूप आत्माका ध्यान करता है।

वैशेषिक और न्याय दर्शनमें सूत्र और वस्त्रका कार्य कारण सम्बन्ध समवाय सम्बन्ध कहलाता है। नीले वस्त्र और नीले रंगका सम्बन्ध अर्थात् पदार्थ और उसके गुण का सम्बन्ध, शरीर और हाथका सम्बन्ध अर्थात् अङ्ग और अङ्गीका सम्बन्ध भी समवाय सम्बन्ध कहलाता है। नगाड़े और डंकेकी लकड़ीका सम्बन्ध संयोग सम्बन्ध कहलाता है।

प्रत्येक मनुष्य विचार शैलीमें, स्वभाव, रुचि, मनो-वृत्ति शारीरिक लक्षण आदिमें दूसरोंसे भिन्न होता है। प्रत्येक मनुष्यका मानसिक संसार अपना निराला ही होता है। देह निर्माणमें भी मनुष्य एक दूसरेसे भिन्न होता है थोडीसी समानता भले ही हो। भिन्न २ मनु-ष्योंके नाक, कान, ओष्ठ, नेत्र, भौवों, दन्त पङ्क्ति, कंधों हाथ, उङ्गलियों, अंगूठों, दृष्टि, स्वर, गति, तथा बातचीतके ढंगको ध्यान पूर्वक देखो। आपको किन्हीं दो मनु-ष्योंमें बड़ा अन्तर मिलेगा। हथेलियोंकी रेखायें भी

भिन्न होंगी। कोई दो पत्तियां भी एक समान नहीं होतीं भिन्नता ही सृष्टिका सौन्दर्य है।

आवश्यक बुलावा होनेपर साधक अपने जन्म स्थानमें थोड़े समय ही रह सकता है। चाहे वह स्थान उसको कितना ही अनुकूल हो और उसका वैराग्य चाहे कितना बढ़ा हुआ हो यौगिक नियम उसको अति दीर्घकाल तक वहां रहनेकी आज्ञा नही दे सकते। संस्कारोंका बल बड़ा भारी होता है। जब तक सारे संस्कार असम्प्रज्ञात समाधि या निर्विकल्प अवस्थाके द्वारा पूर्णतया भस्म न हो जावे उसके लिये अपने जन्म स्थानमें दीर्घ काल तक रहना सुरक्षित नहीं है। अभी वह भय प्रदेशमें ही है।

रेडियम बड़ा दुर्लभ पदार्थ है। सारे जगतमें केवल १६ ग्रेन है। जिन योगियोंने अपने विचारोंका संयम किया हुआ है इस संसारमें वे भी रेडियमके समान दुर्लभ हैं।

यदि कोई साधक धनिकों, जमीदारों, राजाओंके साथ रहता है तो उसका मन इनकी विलास पूर्ण टेवोंकी नकल करने लगता है और शीघ्र ही उसका अज्ञात अधः पतन हो जाता है। उसमें कुछ बुरी टेवें पड़ जाती हैं।

और उसे इनको दूर करना कठिन प्रतीत होता है। चालीस वर्षकी अवस्थाके पीछे पुरानी आदतोंको दूर करना और नई स्वस्थ आदतें बनाना कठिन होता है।

मन वाणीसे अधिक आन्तरिक है। बुद्धि मनसे अधिक आन्तरिक है। अहंकार बुद्धिसे अधिक आन्तरिक है। जीव चैतन्य अहंकारसे अधिक आन्तरिक है। आत्मा या कूटस्थ जीव चैतन्यसे अधिक आन्तरिक है। आत्मासे आन्तरिक अन्य कोई वस्तु नहीं है। यह परिपूर्ण है।

प्राण अन्नको पचाता है, इसको रस और रक्तमें बद-लता है और मस्तिष्क तथा मनमे भेजता है। तब मन सोच सकता और ब्रह्म विचार कर सकता है।

जब आप हारमोनियम बजाते हो तो पहले रागनी ठीक करते हो, और स्वर मिलाते हो। आपकी वाणीकी शक्तिके अनुसार इसे दूसरे या चौथे पर्दे पर रखा जा सकता है। तब आप भिन्न-भिन्न पर्दोंको बजाने लगते हो। अब सप्त स्वरोंका उच्चारण होता है। आप भिन्न भिन्न राग रागनियाँ निकाल सकते हो। जो मुख्य श्रुति—स्वरको पहचानता है उसकी तुलना उस ज्ञानीसे की जा सकती है जो आत्मा या जगतके अधिष्ठानको

जानता है, परन्तु जो मुख्य श्रुतिको जाने बिना केवल सप्त स्वरोंको जानता है वह उस अज्ञानीके समान है जो आत्माको तो जानता नही परन्तु जिसको विषय भोगोंका ज्ञान है।

छकड़ेके पहियेका आधार उसके अरे होते है। अरे नाभिमें टिके हुए होते हैं। इसी प्रकार मन प्रकृति पर आश्रित होता है और प्रकृति ब्रह्म पर।

यदि कोई खरा मनुष्य प्रथम बार घूंस खाने लगे तो वह कांपता है। उसकी चेतनतामें कम्प होता हैं। उसे बहुत बेचैनी मालूम होती हैं। यदि फिर भी इसे बार-बार करे तो उसकी चेतना कुण्ठित हो जाती है। यदि कोई सच्चरित्र मनुष्य प्रथम बार वेश्याके घर जावे तो उसका अन्तः करण व्याकुल होता है और उसकी चेतनामें कम्प होता है। यदि वह बार-बार जावे तो उसका अन्तः करण कुण्ठित हो जाता है। उसे किसी बातका अनुभव नहीं होगा। अन्तः करणकी आन्तरिक कल घड़ी सूक्ष्म है। केवल सत्कर्म ही करते रहकर उसको सजीव रखो।

यदि अनिच्छा पूर्वक किसी ज़रूरत वाले मनुष्यको आप कम्बल दो तो यह दान नहीं है। यह स्वार्थ युक्त-

कर्म है। मन अवसर आनेपर कम्बल लौटा लेनेको रास्ता देखता रहेगा। जो कुछ भी दो स्वेच्छा-पूर्वक दो।

आप देखोगे कि बंगलेमें दो सदर फाटक हुआ करते हैं एक आनेके लिये और दूसरा जानेके लिये। हमारी देह भी भगवानके लिये अच्छा बंगला है। आंखें और कान रूप और शब्दके आनेके फाटक हैं। यह इन्द्रिय ज्ञानके रास्ते हैं। उपस्थ इन्द्रिय और गुदा ये बाहर जानेके फाटक हैं। इनसे मल और मूत्र बाहर निकलते हैं।

राजसिक मन वस्तुओंमें भेद करके भ्रम-कपट द्वारा नानात्व दिखाता है। सूर्य एक है। चन्द्रमा एक है। आकाश एक है। भाषाके पीछे विचार एक है। सत्यता का भाव एक है। न कुछ अन्दर है न बाहर है। पति और पत्नी हृदयमें एक हैं। सच्चे मित्र हृदयमें एक होते हैं। जड़ पदार्थ एक है। शक्ति एक है। सात्विक मन एक है। यह मिलता है। विश्वमहत् एक है। कर्म एक है। धर्म एक है। सत्य एक है। ब्रह्म बिना किसी दूसरेके एक ही है।

अज्ञानियोंका मन विक्षेप युक्त, चञ्चल और करोड़ों -सकल्पोंवाला होता है। उनके मन संकल्पों द्वारा डोलते

रहते हैं। परन्तु ज्ञानी संकल्पोंसे मुक्त होंगे। वे सदा आत्मज्ञानमें स्थित होंगे जो सर्वोच्च तृप्ति और परम शान्ति देता है।

वाणीसे अधिक आन्तरिक दृष्टि होती है क्योंकि साधारणतया दृष्टि विना किसी विरोधके सूचना देती है। इसी प्रकार दृष्टिसे अधिक आन्तरिक श्रवण शक्ति है क्योंकि आंख भले ही धोखा दे जावे जैसे सीपीको चांदी देखना परन्तु कान किसी अस्तित्व विना शब्दको कभी नही सुनता। इसी प्रकार कान भी मनके अवधान की सहायतासे क्रिया करता है और मन प्राणके आश्रित रहता है। इसलिये प्राण सबसे आन्तरिक है वही ब्रह्म है।

"प्रेम करो मार डालो", "विवाह करो और ब्रह्मचर्य पालन करो", "इच्छारहित होकर विषय भोग करो", "फलकी वाञ्छा विना कर्म करो", यह विरोधा-भास-युक्त शब्द हैं। स्थूल व्यावहारिक बुद्धि-युक्त मनुष्य कठिनतासे इनका तात्पर्य समझ सकता है। इसके लिये सूक्ष्म शुद्ध बुद्धिकी आवश्यकता है। मान लो आप पिछले १५ वर्षों से अत्यधिक सिगरेट पीते थे। फिर आपने पांच वर्ष तक सिगरेट पीना छोड़ दिया। सिगरेट

पीनेकी वासना भी मर गई। छठे वर्षमें आपका कोई मित्र आपको सिगरेट देता है। अब आपको सिगरेट पीनेकी वासना भी नही है। यदि आप अब सिगरेट स्वीकार करके अपने मित्रको प्रसन्न करनेके लिये पीलो तो यह शुद्ध भोग कहलावेगा। आपने बिना किसी वासनाके इसका भोग किया है। ईश्वर शुद्ध भोग भोगता है।

आध्यात्मिक साधकको साहसके साथ नासमझी, बदनामी और (Misrepresentation) अलीकवादका सामना करना पड़ेगा। जिन्होंने अपने साथियोंसे ऊंचा उठनेकी चेष्टा की है, उन्हें सदा ऐसा ही प्रारब्ध मिलता है, इसका सामना करनेके लिये नैतिक-बल और साहसकी आवश्यकता है कि वह मनुष्य अपनी स्थिति बनाये रखे और उसे चारों ओरके लोग भले ही कुछ भी सोचें, करें या कहें वह वही कार्य करता रहे जिसे कि वह ठीक समझता है। लोग आपसे घृणा करेंगे और आपको कष्ट देंगे। आपको अपने विश्वासोंके अनुकूल जीवन बनानेके लिये साहसके साथ नैतिक पदपर खड़े होना होगा।

जो साधक समाजके नियमोंको अतिक्रमण कर चुका है उसे अपने अन्तः करण और शुद्ध बुद्धिकी आज्ञा-

नुसार चलना चाहिये। तभी वह आध्यात्मिकतामें उन्नति कर सकता है।

अपने गुरुके सामने हृदयके रहस्य खोल कर रख दो और जितना ही अधिक आप ऐसा करोगे उतनी ही सहानुभूति और सहायता आपको गुरुसे मिलेगी। इस सहानुभूतिका अर्थ यह होगा कि पाप और प्रलोभनसे लड़नेके लिये आपमें अधिक शक्ति आ जावेगी। गीतामें कहा है कि "यह ज्ञान तुम प्रणिपात (प्रणाम), पूछ-ताछ और सेवा द्वारा सीखो। तत्व दर्शी ज्ञानी तुम्हें ज्ञानोपदेश करेंगे।"

फिर निराश होनेका क्या कारण है। सबसे अपवित्र मनुष्य भी सच्ची लगनसे परमात्माकी भक्ति करके सर्वोच्च आनन्दको प्राप्त कर सकते हैं। गीतामें भगवानने कहा है "यदि सबसे अधिक पाप कर्म करनेवाला भी अनन्य भावसे मेरी उपासना करता है तो उसे साधु ही समझना चाहिये क्योंकि उसने ठीक-ठीक निश्चय कर लिया है। तू निश्चय करके समझ कि मेरा भक्त नष्ट नहीं होता।" इसलिये उठो और कर्तव्य करो। ईश्वर निःसन्देह आपके प्रयत्नमें सफलता देगा। हममेंसे दुष्टसे भी दुष्ट मोक्ष प्राप्त कर लेगा।

भाषा भिन्न-भिन्न होती हैं परन्तु विचार एक ही होता है। सबमें मनोमूर्ति समान होती है। शब्दके चार स्वरूप होते हैं परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी। वैखरी साधारण वाणी है, अनेक देशोंमें यह भिन्न-भिन्न होती है। परन्तु परा, पश्यन्ती और मध्यमा एक सी ही होती है। जो मूल स्वरूपमें शब्द ब्रह्ममें निश्चेष्ट अवस्थामें बिना भेदके रहता है वह परा वाणी है, देवताओंकी भाषा, तथा मानसिक स्तरकी भाषा एक ही होती है। कारण शरीर का (Rotatary) घूमनेवाला स्पन्द पश्यन्ती है। यह तुम्हारा वास्तविक नाम है। जब आप कारण शरीरके द्वारा कार्य करो, जब कारण शरीरके चक्षु द्वारा देखो (जिसे दिव्य दृष्टि कहते हैं) तब आप पश्यन्ती वाणी अथवा अपना सच्चा नाम सुनोगे।

जीवन्मुक्त अवस्थामें यह जगत भी वैसा नाश नहीं होता जैसा माना जाता है। वास्तवमें स्थूल जगतकी सत्ता नही रहती। परन्तु इसका अर्थ नाश नहीं है। इसका अर्थ तो केवल यही है कि सत्ताका रूप और रंग परमात्मासे बदल जाता है। व्यक्तिगत सत्ता दूर होकर विश्व सत्ता रह जाती है। वास्तवमें सत्ता रहती है परन्तु इसके परिच्छिन्न रूप जाते रहते है। बाहरीपन,

काल और देशकी स्थिति, कार्य कारण सम्बन्ध, एकता तथा अनेकता अवश्य दूर हो जाती है। यह अनिवार्य है, परन्तु मुक्त आत्माके लिये भी विश्व और इसका अस्तित्व दूर नही होगा। केवल इसका स्वरूप, अर्थ और तात्पर्य बदल जावेगा। कुछ भी लोप नहीं होगा सिवाय मिथ्या दृष्टि, संकुचित क्षितिज, मिथ्या भाव तथा परिच्छिन्न दृश्यके, परन्तु वस्तु सत्य, सत्ता सदाकी भांति बनी रहेगी। केवल दृष्टि कोण बदल जावेगा।

आध्यात्मिक साधक या सत्यके सच्चे खोजकसे इन बातोंके पूरा करनेकी आवश्यकता समझी जाती है:— बाहरी पदार्थोंसे पूर्ण सम्बन्ध विच्छेद, इन्द्रिय ज्ञानका नानात्व और आन्तरिक पदार्थोंके लिये एकाग्रता। जब तक सारे ऊपरी अङ्ग अपनी क्रिया बन्द न कर दें शुद्ध आत्माका शब्द सुनाई नही दे सकता।

स्वर्गमें मनके सारे भौतिक अनुभवोंकी छटाई और विश्लेषण किया जाता है। सार भाग ग्रहण कर लिया जाता है। मानसिक जगतने जो सार भाग निकाला है उसके स्वरूपके अनुकूल ही मनोवृत्ति आदिके सहित जीव फिर पृथ्वी पर जन्म लेता है।

मन और पाँचों तत्त्वोंमें आन्तरिक सम्बन्ध है। जब नथुनोंमें अग्नि तत्त्व चलता है तो मनमें अधिक उद्वेग होता है और ध्यानमें अन्तराय पड़ता है। आकाश तत्त्व चलनेके कालमें ध्यान क्रिया अनुकूल होती है। जिनको इन तत्त्वोंके चलनेका ज्ञान है वह शीघ्र ही ध्यानमें उन्नति कर सकते हैं। जो ध्यानका अभ्यास करते हैं उनके लिये स्वर साधन या स्वरोदयका ज्ञान अनिवार्य है।

आप पहाड़को नहीं मिटा सकते किन्तु पहाड़के विचारको मिटा सकते हो। जितने व्यक्तिगत मन हैं उतने ही आध्यात्मिक साधन हैं। जो साधन एक मनके अनुकूल होता है वह दूसरेके अनुकूल नहीं हो सकता। एकके लिये राजयोग सुगम होगा तो दूसरेके लिये ज्ञान योग। एकको एक प्रकारका तप अच्छा लगेगा तो दूसरेको दूसरे प्रकारका।

अनावश्यक विवाद मत करो। विवादसे विरोध, उत्तेजना बढ़ते हैं और शक्ति क्षीण होती है। प्रत्येक आदमीका अपना-अपना मत, विचार, भाव, और विश्वास होता है। दूसरोंके मतको बदलना अति कठिन है। दूसरोंको विश्वास दिलानेका प्रयत्न मत करो। जब तक आप साधक हो और धार्मिक विषयोंमें जानकारी प्राप्त

ही कर रहे हो, जब तक आपके विचार परिपक्व और स्थिर न हो जावें दूसरेसे विवाद मत करो।

आप मानसिक सिद्धियोंकी परवाह क्यों करते हो। ये बिल्कुल बेकार हैं। यदि वे प्रकट होनेकी चेष्टा करें भी तो उनसे निर्दयतासे अलग रहो। वे आपको मार्ग भुला देंगी। सावधान रहो। भगवान बुद्धने मारकी उपेक्षा ही की थी। ब्रह्मज्ञान प्राप्त करनेका प्रयत्न करो। तब आपको सब कुछ मिलेगा। सारी आध्यात्मिक सिद्धियां हाथ फैलाकर आपका स्वागत करेंगी। तब आपका पतन नहीं हो सकता।

ब्रह्मकी चर्चा करना कठिन है। उसे समझना और भी कठिन है। आध्यात्मिक साधनका अभ्यास करना इससे भी कठिन है। इसीसे मिलते जुलते विचार गीता अध्याय २ श्लोक २९ में मिलते हैं। यथा—

"आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेनमाश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः
आश्चर्यवच्चैनमन्यः शृणोति श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित्॥

कोई मनुष्य उस परमात्माको आश्चर्यसा देखता है। कोई उसे आश्चर्यसा बताता है। कोई उसे आश्चर्यसा सुनता हैं फिर भी कोई-कोई सुनकर भी नहीं समझता।"

ब्रह्म प्राप्तिके लिये स्वच्छ, शुद्ध और निर्मल मन, दृढ़ निश्चय, धैर्य, लगन और उत्साहकी आवश्यकता हुआ करती है।

श्री राम और श्री कृष्ण अपना राज्य शासन करते हुए भी ब्रह्ममें स्थित रहते थे। उन्होंने मनुष्य रूप धारा था फिर भी वे अपने सच्चिदानन्द स्वरूपको सदा ध्यानमें रखते थे। भिन्न-भिन्न क्रियाओंको करते हुए वे अपने शरीर और मनको निमित्त मात्र बना रखते थे। ज्ञानी अपने सत्स्वरूपसे वह सब कुछ करता है जो राजयोगी अपने योग संयम द्वारा करता है। वह केवल इच्छा मात्र करता है। जो कुछ वह इच्छा करता है वही पूर्ण हो जाता है।

यह इच्छा सहित कर्म है। यदि आप आत्म-निवेदन कर दो तो आपको प्रयत्नको त्यागना पड़ेगा। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि आपने इच्छासहित कर्मको भी त्याग दिया। इसके विपरीत अपनी इच्छाको ईश्वरकी इच्छामें मिला देनेसे आप आत्म-साक्षात्कार शीघ्र प्राप्त कर सकते हो। यह दूसरे रूपमें आत्म-निवेदन ही है। आपसे यह नहीं अभीष्ट है कि आप शिलाकी भांति अकर्मण्य हो जाओ और अक्रिय निवेदन कर दो।

आपको तो अपनी इच्छा भगवान्‌के अधिकारमें सौंप देनी है। परन्तु साक्षात्कार होनेसे पहले यह कैसे किया जा सकता है। आपकी एक इच्छा शक्ति है और आप उसीको अर्पण कर सकते हो। अपने स्वप्नोंका ज्ञान प्राप्त करनेका ही उदाहरण लो। यदि आप अक्रिय निवेदनका भाव स्वीकार करो तो आप कहोगे "जब भगवानकी इच्छा होगी कि मैं स्वप्नोंका ज्ञान प्राप्त करूं तभी मुझे यह चेतना आवेगी।" दूसरे यदि आपने अपनी इच्छा भगवान्‌के अर्पण कर दी तो आप क्रियात्मिक इच्छा करने लगते हो। आप कहते हो "अपने स्वप्नोंका ज्ञान मैं प्राप्त कर लूंगा।" आपकी इच्छा होती है कि ऐसा हो। आप अकर्मण्य होकर नहीं बैठ रहते। समर्पण जब आता है जब आपका भाव हो कि "मैं अपनी इच्छा भगवानको देता हूं। मैं स्वप्नोंका ज्ञान प्राप्त करना चाहता हूं। मुझे यह ज्ञान नही है। ईश्वरीय इच्छा मुझे इसका ज्ञान देवे।"

आपकी इच्छाको बराबर स्थिरता-पूर्वक कार्य करते रहना चाहिये, किसी वस्तु विशेपको प्राप्त करनेके लिये नहीं परन्तु अपना लक्ष्य प्राप्तिपर केन्द्रित करके उन्नतिकी कल्पनाके लिये। यह प्रथम पद है। यदि आप सचेत

रहो, यदि आप सावधान रहो तो निःसन्देह आपको कुछ न कुछ सन्देश कर्तव्यके विषयमें मिलेगा और उसे आप तुरन्त करने लग जाओ। यह ध्यान रखो कि निवेदनका तात्पर्य यही है कि आपके कर्मका जो कुछ परिणाम हो उसे स्वीकार किया जावे भले ही वह इच्छित परिणामसे भिन्न क्यों न होवे। दूसरी ओर यदि आपका निवेदन अक्रिय होगा, आप न तो कुछ कार्य करोगे न कुछ चेष्टा करोगे, बस आप तो किसी चमत्कारकी आशा करते हुए सो जाओगे।

यह जाननेके लिये कि आपकी इच्छा ईश्वरेच्छाके अनुकूल है या नहीं, आपको देखना चाहिये कि आपको कुछ उत्तर मिलता है या नहीं, आपको सहायता मिलती है या विरोध होता है, मन, प्राण या शरीरसे नहीं परन्तु हृदय-गुहाके अन्तःस्तलमें रहनेवाले परमात्मासे।

बहुसंख्यक मनुष्य केवल अन्नमय-कोशमें ही रहते हैं। उनके विचार शरीर धोनेमें, खाने और पहिनने ही में लगे रहते हैं। शिक्षित कहलानेवाले लोग भी अन्नमय-कोषमें ही रहते हैं। कभी-कभी वे मनोमय कोशमें रहते हैं। आध्यात्मिक साधक और विवेकी विज्ञानमय-कोषमें रहते हैं। वेदान्त, साहित्यके स्वाध्याय और शुद्ध विचार द्वारा

आपको अपने विज्ञानमय कोषका विकास करना चाहिये। तब आप सुरक्षित हो जाओगे। मन आपको धोखा देना और दुःख पहुचाना बन्द कर देगा।

प्रेरक पुस्तकोंका स्वाध्याय साधनमें सहायक होता है परन्तु अधिक स्वाध्यायसे मस्तिष्क गंदला हो जाता है। जब आप ध्यानसे उठो तो थोड़े समयके लिये अवधूत गीता, योगवासिष्ठ, कठोपनिषद्, बृहदारण्यकोपनिषद् जैसे ग्रन्थ पढ़ो। इससे मन उन्नत होवेगा।

ऐत्तरेयोपनिषद्में बताया है :—

"यदेत्तद्धृदयं मनश्चैतत्। संज्ञानमाज्ञानं प्रज्ञानं विज्ञानं मेधादृष्टिर्धृतिर्मनीषा जूतिः स्मृतिः संकल्पः क्रतुरसुः कामोवश इति सर्वाण्येवैतानि प्रज्ञानस्य नामधेयानि भवन्ति।" यह जो हृदय है यही मन है यही चेतना, विवेक, बुद्धि, तर्क, दर्शन, स्थिरता, विचार, तीव्रता, शीघ्रता, स्मृति, संकल्प, निश्चय, बल, कामना और निग्रह यह सब संज्ञानके ही नाम हैं।

संज्ञान चेतना है। पुस्तकोंके तत्वको याद रखनेको मेधा कहते हैं। यही उपदेशोंको समझनेका नाम है। मति विचार हैं। वेदविहित मार्गमें श्रद्धाको भी मति कहते हैं। स्वतन्त्र विचारशक्ति मनीषा कहलाती है। यही

ऋषियोंकी प्रेरित विचार शक्ति है। रोगसे आक्रान्त होकर मनको क्लेश होना जूति कहलाता है। लगनको क्रतु कहते हैं। असु जीवनका प्रयास कहलाता है अर्थात् जीवन धारण करनेके लिये कोई भी कार्य हो वह असु है। वश स्त्रियोंके संगकी इच्छा है।

राजयोगके यमके अभ्यासका सार ईसामसीहके "पर्वतीय उपदेश" में है। इन उपदेशोंको चरितार्थ करना कठिन है। परन्तु यदि इनको अभ्यासमें लाया जावे तो मनका निग्रह सुगम हो जाता है। उस उपदेशको संक्षेपसे नीचे दिया जाता है।

(१) भीरु पुरुष धन्य हैं क्योंकि स्वर्गका राज्य उनकाही है।

(२) जो शोक करते हैं वे धन्य हैं क्योंकि उन्हें सान्त्वना मिलेगी।

(२) विनीत पुरुष धन्य हैं क्योंकि उनको पृथ्वी उत्तराधिकारमें मिलेगी।

(४) जो धर्मके वास्ते भूखे और प्यासे रहते हैं वे धन्य हैं क्योंकि वे पूर्ण हो जावेंगे।

(५) दयावान पुरुष धन्य हैं क्योंकि उनको दया मिलेगी।

(६) जिनका हृदय शुद्ध है वे पुरुष धन्य है क्योंकि वे परमात्माका दर्शन करेंगे।

(७) शान्ति करानेवाले धन्य हैं क्योंकि वे ईश्वरके बच्चे कहलायेंगे।

(८) जिन पुरुषोंपर धर्मकी खातिर अत्याचार होता है वे धन्य हैं क्योंकि उनको स्वर्गका राज्य मिलेगा।

(९) तुम लोग धन्य हो। जब लोग तुमको तंग करेंगे, तुमपर अत्याचार करेंगे और मेरी खातिर तुम पर सब प्रकारके झूठे दोष लगायेंगे। आनन्द मनाओ और अत्यन्त प्रसन्न हो जाओ, क्योंकि स्वर्गमें बड़ा इनाम मिलेगा। उन्होंने तुमसे पहले होनेवाले महात्माओंपर भी इसी प्रकार अत्याचार किये थे।

(१०) लेकिन मैं तुमसे कहता हूं कि तुम बुराईका मुकाबिला मत करो, किन्तु जो कोई तुम्हारे दायें गाल पर मारे उसके आगे बांया गाल भी कर दो।

(११) और यदि कोई मनुष्य तुम्हारे विरुद्ध मुकद्मा करे या तुम्हारा कोट उतारकर ले जाये तो उसको अपना चोगा भी दे दो।

(१२) अपने शत्रुओंको अपने ही समान प्रेम करो। जो तुम्हें गाली दें उनको आशीर्वाद दो, जो तुमसे द्वेष करते हैं उनका भला करो और जो तुमको हानि

पहुचाते हैं और तुमपर अत्याचार करते हैं उनके लिये प्रार्थना करो।

नित्य प्रति कामपर जानेसे पहले प्रातःकाल साव-धानीसे भगवान मसीहके इस पवित्र उपदेशको पढ़ो और दिनमें एक या दो वार इस उपदेशका स्मरण करलो कुछ समयमें आप अपनी भावनाओं और मुद्राओंको संयम करनेके योग्य हो जाओगे और दोषोंको निकालकर सद्गुणोंकी वृद्धि कर सकोगे। आपको असीम आनन्द और इच्छाशक्ति प्राप्त होगी।

इस सम्बन्ध युक्त संसारमें न तो कोई वस्तु बिलकुल ठीक ही है और न बिलकुल अलीक। ठीक या गलत यह दोनों भाव मनके बनाये हुये हैं। हर कोई मनुष्य अपनी अपनी दृष्टिके अनुसार ठीक होता है। हर एक वस्तुमें सच्चाईका एक अंश होता है। हर एक मनुष्यके जीवनमें दृष्टिकोण ही निश्चयात्मक खण्ड होता है, जब ज्ञानसे बुद्धि आलोकित होती है तो दृष्टिकोण विशाल और पूर्ण हो जाता है, जब बुद्धि अज्ञानसे कलुषित हो जाती है तब दृष्टिकोण भी संकुचित परिछिन्न और एकान्तिक होता है। विशाल दृष्टिकोण हृदयकी उदार-ताका सूचक है। विशाल दृष्टि कोणका मनुष्य संदेह

पक्षपात, पूर्व धारणा और अनेकों प्रकारकी असहिष्णु-
ताओंसे मुक्त होता है। विदेश यात्रा, अच्छे कुलमें जन्म,
सद्ग्रन्थोंका स्वाध्याय, लोकसेवा, विविध अनुभव, और
ध्यान आदिसे विशाल दृष्टि कोण बनता है। विशाल
दृष्टि वाला मनुष्य वस्तुओंको उनके पूर्णरूप और उप-
युक्त सम्बन्धमे देखता है। विशाल दृष्टि सामञ्जस्य और
मिलान बनाती है, संकुचित दृष्टि वैरस्य और विभेद
बनाती है।

इच्छित पदार्थोंकी प्राप्तिसे उत्पन्न हुई प्रसन्नताको
हर्ष कहते हैं। जो कुछ प्राप्त हुआ है उसका रसास्वाद
आनन्द कहलाता है। जहाँ हर्ष है वहाँ आनन्द भी है
परन्तु जहां आनन्द है वहाँ हर्षका होना आवश्यक नहीं
है। हर्ष तो उस थके हुये पथिकके समान है जो दूरसे
चलनेके बाद जलका शब्द सुनता है या छायादार जंगल-
देखता है। आनन्द उसको पीना और जंगलकी छायामें
प्रवेश करना है।

हममेंसे ऐसे मनुष्य भी हैं जो दूसरोंकी अपेक्षा
इन्द्रिय ज्ञानमें अधिक विकसित होते हैं। उनके शरीर
इन्द्रिय ज्ञानके लिये सूक्ष्मतर बने होते हैं। साधारणतया
ऐसे लोग सदा दूसरे मनुष्योंकी मनोवृत्तिसे प्रभावित-

होते हैं जिनके संगमें यह रहते हैं या जिनके संसर्गमें ये आते हैं।

जब आप कलके लिये वस्तुओंका संग्रह नहीं रखना चाहते तो इसे असंग्रह बुद्धि कहते हैं। यह सच्चे सन्यासीकी मनो दशा है। सन्यासीको कलका कोई विचार नहीं होता। इसके विपरीत, गृहस्थीको संग्रह बुद्धि हुआ करती है। हमें पक्षीकी भांति स्वतन्त्र होना चाहिये और संग्रह बुद्धि नहीं रखनी चाहिये।

समभाव और समदृष्टिमें थोड़ा सा अन्तर है। समभाव मानसिक दशा है यथा सुख दुःखमें, हानि-लाभमें, गर्मी-सर्दीमें, जय-पराजयमें समान रहना। समदृष्टि ज्ञानकी अवस्था है। ज्ञानीजन भंगी और राजामें केवल आत्मा ही देखता है।

जब छोटा बच्चा दूसरे वर्षमें प्रवेश करता है तो धीरे धीरे द्वैत भाव बढ़ने लगता है। एक वर्षसे कम आयुके बालकको किसी भी स्थानमें रख दो। वह वहां पत्थरकी भांति रहेगा। वह हंसेगा और सब लोगोंको बिना राग द्वेषके समान रूपसे ही देखेगा। दो वर्षके बच्चेको बैठनेको कहो तो वह खड़ा हो जावेगा। उसे पास आनेको कहो तो वह पीछे हट जावेगा। बच्चेको कहो

बाजार मत जाना तो वह तुरन्त बाजारको ही जाता है। वह विरुद्ध आचरण करेगा क्योंकि अब उसमें द्वैतका विकास हो रहा है।

शब्दमें दो प्रकारकी वृत्तियां होती है एक लक्षणा-वृत्ति और दूसरी शक्तिवृत्ति। प्रत्येक शब्दमें एक अचिन्त्य शक्ति होती है। मनके अन्दर शब्दकी गति होती है। जब आपका मित्र गलीमें चिल्लाता है तो आप शब्द सुनते ही द्वार खोलते हो और उससे मिलनेके लिये दौड़ पडते हो। जब कालेजके छात्रावासमें घण्टा बजता है सारे विद्यार्थी भोजन करने जाते है। सारे वेदान्त-शब्दोंमें जो ब्रह्मका स्वरूप वर्णन करते हैं यथा अखण्ड, अद्वैत, अपरिच्छिन्न, व्यापक, एक अचिन्त्य शक्ति होती है। कोई - कोई कहते हैं कि 'तत्वमसि' महावाक्यमें जीव और ब्रह्मकी एकता बतानेकी विशेष अचिन्त्य शक्ति होती है।

जब आप कोई नाटक लिख रहे हो, यदि निद्रा आती है तो आप लिखाई बन्द कर देते हो और सोने चले जाते हो। जब आप सोकर उठते हो जहांसे आपने पूर्व रात्रिमें लिखना छोड़ा था वहाँसे आगे लिखने लग जाते हो। इसी प्रकार पूर्व जन्मकी वासनाओंके अनुसार नये जन्ममें

भी आप वही कार्य जारी रखते हो जिसे पूर्वजन्ममें आपने अधूरा छोड़ा था ।

जैसे आप किसी मनुष्यको एक संतरा दे सकते हो और उसे वापिस भी ले सकते हो। इसे शक्ति सचार कहते हैं। पक्षियों, मछलियों और कछुओंकी भांति गुरु आत्मिक शक्तिका संचार, स्पर्श, दृष्टि या केवल इच्छा या विचार द्वारा ही कर सकता है। कभी-कभी संचार करनेवाला शिष्यके कारण शरीरमें प्रवेश करके उसके मनको अपनी शक्तिके द्वारा उन्नत कर देता है। वह उसे अपने सामने बिठाकर उसे आंखें बन्द करनेको कहता है और फिर आत्म-शक्ति का संचार करता है। शिष्य वास्तवमें विद्युत प्रवाहको मूलाधार चक्रसे ऊपरको गर्दन और सिर तक चढ़ता हुआ प्रतीत करता है।' वह प्रेरणा द्वारा विना किसी शिक्षाके आसन, प्राणायाम, बन्ध मुद्रादि हठयोगकी क्रियाये स्वयं कर लेता है। यहां प्रकृति स्वयं कार्य करती है। शिष्यको अपनी इच्छाशक्ति को नहीं दबाना चाहिये। उसे आन्तरिक प्रकाशके अनुकूल कार्य करना चाहिये। मन अत्यन्त उन्नत हुआ होता है। जिस क्षण साधक अपने नेत्र बन्द करता है ध्यान स्वयमेव बन जाता हैं। शक्ति संचारके

द्वारा गुरु कृपासे शिष्यमें कुण्डलिनी शक्ति जाग्रत हो जाती है।

संगसे १५ दोष उत्पन्न होते हैं इसलिये साधना कालमें साधकको अकेले रहना ही उचित है। संग दोष यह हैं :—नासमझी, कुभाव, अप्रसन्नता, रागद्वेष, ईर्षा, अहंकार, आसक्ति, दूसरेके दुःखमें मानसिक भाग, दूसरेकी आलोचना, अनात्म विषयों की चर्चा, बोलनेका स्वभाव, बहिर्मुख वृत्ति और द्वैतका भाव और संस्कार दासत्वकी मनोवृत्ति, और दुर्बल इच्छा शक्ति और घृणा। थोड़ा प्रेम करो परन्तु दीर्घकाल तक।

मन पदार्थोंसे पहले बनता है यह वेदान्तका सिद्धान्त है। विज्ञानका सिद्धान्त यह है कि पदार्थ मनसे पहले बने हैं।

संसारी मनुष्योंको कुछ मिन्टोंके लिये भी जीवनकी समस्याओं तथा जीवनके रहस्यों पर विचार करनेका समय नहीं मिलता। रागके कारण उनका मन विषय भोगके पदार्थोंकी ओर दौड़ता है। उनकी मानसिक शक्तियां देहके विचारों, खाने और पहिननेके विचारों, स्त्री, बच्चों, और मित्रोंके विचारों तथा कार्यालय और व्यापार सम्बन्धी विचारोंमें व्यय होती हैं और इस

प्रकार दिन पूरा हो जाता है। दिन प्रतिदिन, सप्ताह, प्रति सप्ताह यही क्रम चलता है। वर्षों बीत जाते हैं और जीवन व्यर्थ चला जाता है। यह बड़ी शोचनीय बात है।

हर एक शब्दके लिये एक पदार्थ और एक अर्थ होता है। गौ शब्दके लिये भी एक अर्थ और एक पदार्थ है। माया आपको शब्द जालके द्वारा धोखा दे रही है। सारा संसार भाव-मात्र है। यह सकल्प-मात्र, भ्रान्ति मात्र है यह कल्पना-मात्र है, आकाश-मात्र है इसकी स्थिति केवल नाम-मात्र है। "वाचारम्भण विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्।" अर्थात् सारे विकार नाम मात्र ही हैं जिनके आधारशब्द है। सत्य तो यह है कि सब कुछ मिट्टी है। सारा संसार पञ्चभूतोंका बना हुआ है। विश्लेषण करो, पदार्थोंकी भ्रम मूलक दशा जान लो और सारे मिथ्या पदार्थोंको त्याग दो। जब आप विश्लेषण करना प्रारम्भ करोगे तो सारा संसार लोप हो जावेगा और इसके साथ-साथ शब्द, भाव और पदार्थोंका भी लोप हो जायेगा।

कभी किसीसे भेंट स्वीकार मत करो चाहे वह आपके घनिष्ट मित्र हों। इससे दासत्व बुद्धि और आसक्ति बढ़ेगी तथा दुर्बल इच्छा शक्ति बनेगी। किसीसे

कुछ मांगना ही भिखारीपन है। किसीसे सिफारिश करवाना भी भिखारीपन है। भिखारी स्वतंत्रता और आध्यात्मिक क्रियाओंके सर्वथा अयोग्य है।

धारणा, शुद्धि और ध्यानके द्वारा प्राकाम्य दिव्य दृष्टि, ज्ञान चक्षुका विकास करो।

जब समान गुणों और बलवाली दो शक्तियां मिलती हैं तो एक तीसरी शक्ति बनती है। जब समान बल और गुणों वाले दो मनुष्य एक दूसरेकी ओर आकृष्ट होते हैं तो उनके बीचमें एक तीसरी शक्ति बनती है जिसे प्रेम कहते हैं। प्रेमके बतानेका यह वैज्ञानिक ढंग है। एक आकर्षण शक्ति होती है और एक विकर्षण शक्ति होती है। जब मैं दूसरे मनुष्यमें अपनी ही आत्माको देखता हूं। जब मैं उसको अपना ही आत्मा सा देखता हूं तो मैं उससे अपने ही समान प्रेम करने लगता हूं। प्रेमके बतानेका यह वेदान्तिक ढंग है। अपने प्यारको दूसरे पर उंडेल देना प्रेम कहलाता है। प्रेम ईश्वर है। प्रेम दो प्रकारका होता है स्वार्थ-पूर्ण या भौतिक। दूसरा दिव्य प्रेम जो निःस्वार्थ और चिरस्थायी होता है। पहले प्रकारका आसक्ति सहित प्रेम है। दूसरी प्रकारका प्रेम बिना आसक्तिके है। जो वेदान्त मार्गका सच्चा साधक

है जिसको अपना आत्मा ही सब कहीं प्रतीत होता है और जो सच्चा भक्त है जो हर एक वस्तुमें नारायणको देखता है केवल वही वास्तवमें दूसरोंसे प्रेम कर सकता है। जब कोई हीन मनुष्य अपने सुखके लिये या अपने जीवनके लिये दूसरेके आश्रित रहता है तो भौतिक आसक्ति उत्पन्न हो जाती हैं। आसक्तिसे दास-बुद्धि और दुर्बल इच्छा शक्ति होती है। आसक्ति मृत्यु है, भौतिक प्रेम मृत्यु हैं।

जब मैं तुममें कोई चीज़ देखता हूं जो मेरे पास भी हैं तो मैं स्वभावतः तुम्हारी ओर खिचता हूं और मैं तुमसे प्रेम करने लगता हूं। "असंगशस्त्रेण दृढ़ेन छित्वा" सब प्रकारकी आसक्तियोंको असंग रूपी तलवारसे काट दो।

१४—सस्कार

अन्तर्मन या चित्तमें संस्कार बने रहते हैं। अन्तर्मन दूसरे शब्दोंमें अचेतन मन भी कहलाता है। इस अन्तर्मन-का स्थान मस्तिष्कका पिछला भाग हैं। एक सचेत क्रिया चाहे वह अभिज्ञान, अनुभव या संज्ञान सम्बन्धी होवे वह चेतना द्वारके ठीक नीचे सूक्ष्म और अव्यक्त रूप बना लेती है। इसे संस्कार कहते हैं। स्वप्नमें और हिप्ना-टिक मूर्छामें यह अन्तर्मन कार्य करता है।

आन्तरिक या बाह्य उद्बोधक शक्तिकी ठेसके कारण यह बीज रूप संस्कार फिर फैल जाते हैं और आगे क्रियाओंको जन्म देते हैं। निरन्तर समाधिके द्वारा इन संस्कारोंको भून देना चाहिये। तभी आप जन्म और मृत्युसे मुक्त हो सकोगे।

नये संस्कार पुराने संस्कारोंको बहा देते हैं। यदि संस्कार नये-नये हों तो उन्हें याद करना सुगम होता है। वे फिर शीघ्र ही अन्तर्मनकी गहराईसे सचेत मनके ऊपर आ जाते हैं। पुराने संस्कारोंका संजीवन हो जाता है। यदि सरकारी पदाधिकारी बन जानेके दस साल पीछे आप अपने पुराने कालेजमें जाओ तो आपके विद्यार्थी जीवनके पुराने संस्कार फिर सजीव हो जावेंगे। अब आप अपने पुराने शिक्षकों, मित्रों, पुस्तकों और अनेकों अन्य वस्तुओंको स्मरण करोगे।

आपके जन्म समयमें मन कोरा कागज नहीं होता है। यह सस्कारोंका, पूर्व धारणाओं और स्वभाव आदि का भण्डार होता है। प्रत्येक मनुष्य अपने सस्कारों सहित जन्म लेता है और वे संस्कार चित्तमें जमे रहते हैं। भौतिक जीवनमें उसे और बहुतसे संस्कार प्राप्त

हो जाते हैं और ये पूर्वके भण्डारोंमें मिलकर आगामी संचित कर्म बन जाते हैं।

बालक अपने संस्कारों सहित उत्पन्न होता है। उसके पिछले अनुभव मानसिक और नैतिक वृत्तियों तथा शक्तियोंमें बदल जाते हैं। भौतिक अनुभव बौद्धिक शक्तियां बन जाते हैं।

संसार मनमें आँखों, कानों, वाणी और पुराने संस्कारोंके द्वारा प्रवेश करता है। यदि आप एकान्तमें रहो तो पहले तीन द्वारोंको बन्द कर सकते हो। विचारके द्वारा तुम चौथे द्वार संस्कारोंको भी बन्द कर सकते हो तभी ज्ञानका उदय होगा।

इन्द्रिय ज्ञानका अनुभव चित्तकी गहराईमें उतर जाता है और वहां संस्कार बन जाता है आप गत अनुभवोंको अन्तर मनमें संस्कारोंके भण्डारसे स्मरण कर सकते हो। भूतकाल सूक्ष्म दशा तक रक्खा रहता है। उसमें से जरा सा भी नहीं खोता। संस्कारकी सहायताके बिना स्मृतिका सम्भव नहीं। जब सूक्ष्म संस्कार सचेतन मनके ऊपर आ जाते हैं तो उसे स्मृति कहते हैं।

संस्कारको अवशिष्ट शक्ति भी कहते हैं। इन संस्कारोंके ऊपर किया हुआ संयम अवशिष्ट शक्तियोंका ज्ञान

कराता है। योगी संस्कारोंका अपरोक्ष ज्ञान प्राप्त करके पूर्व जन्मोंकी चेतना पाता है। ऐसा ज्ञान विश्वविद्यालयोंमें कठिनाईसे प्राप्त होता है। सत्पात्र साधकोंको योगी ही ऐसा ज्ञान दे सकता है।

मनके यह लक्षण हैं:—परिणाम, चेष्टा, निरोध, शक्ति, जीवन और धर्म।

यदि आप एक मिन्टके लिये भी अपने सच्चे ब्रह्म स्वभावको भूल जाओगे तो अज्ञानके पुराने संस्कार ऊपर आने और तुमको दबा लेनेकी चेष्टा करेंगे। देखो नारदने ध्यानमें स्थित होते हुये भी जब देव कन्याओंको देखा तो उसका निश्चय डगमगाने लगा था। उसको तुरन्त काम वासनाका अनुभव हुआ। उसने वीर्यको एक घड़ेमें रक्खा और उसमेंसे कुम्भ मुनिके रूपमें रानी चूड़ाला प्रकट हुई। इसलिये आपको बहुत सावधान रहना होगा हर प्रकारके प्रलोभनोंसे यथा धन, स्त्री, नाम, यश आदिसे दूर रहो।

मन संस्कारोंके द्वारा अपना आधिपत्य जमाता है। जब तक संस्कार रहेंगे आपको नये-नये, जन्म लेने पड़ेंगे। साधकका लक्ष्य निर्बीज समाधिके द्वारा इन संस्कारोंको जला देना होता है। तब वह जन्म मरणसे मुक्त होगा।

सारे संस्कार एक साथ मनमें रहते हैं। धीरे-धीरे वृत्तिया शान्त हो जाती हैं और मनमें अपना अंक छोड़ जाती हैं। यह अंक संस्कार होते हैं। इन संस्कारोंसे स्मृति बनती है। यदि आपको योग प्राप्त है तो आप मनुष्यकी मानसिक प्रयोगशालामें होने वाले आश्चर्योंको साफ साफ देख सकते हो, कैसे वृत्ति उठती है कैसे यह शान्त होती है और कैसे सस्कार बनता है आप आश्चर्य चकित रह जाओगे।

एक विशेष अनुभव संस्कार विशेष छोड़ता है इस अनुभव की स्मृति उसी संस्कारसे बनती है जो कि उस विशेष अनुभवसे बना था।

ध्यानमें मन अपने इन्द्रिय दर्शन और निश्चयको ग्रहण करता है और उन्हें पकड़ लेता है, विचारके विषयको अपना लेता है, संस्कारोंको दृढ़ करता है और इसकी इच्छागत स्मृतिको सुगम कर देता है। साधारण बातचीतमें हम कहते हैं "श्री रामकृष्णकी वेदान्तमें अच्छी धारणा है। इसका अर्थ यह है कि श्री रामकृष्णके वेदान्त विषयक विचार स्थिर और दृढ़ है। उसे कोई भी बदल नहीं सकता। उसकी वृत्ति डावाडोल नही है। वह केवल वेदान्तमें ही लगा रहता है। उसे कोई भी नहीं हिला सकता।

जब आप ॐकार या अहंब्रह्मास्मि महावाक्यका उच्चारण करते हो तो मनमें एक संस्कार बनता है कि "मैं ब्रह्म हूं।" ॐकारका नित्य २१६०० जप करनेका तात्पर्य यह है कि यह संस्कार दृढ़ हो जावे।

जब आप संतरेको पहली बार देखते और चखते हो तो आपको सन्तरेका ज्ञान होता है। आप पदार्थ रूप सन्तरेको जान लेते हो। तुरन्त अन्तर्मनमें उसका संस्कार बन जाता है। किसी समय भी यह संस्कार पदार्थ रूप सन्तरे और उसके ज्ञानकी स्मृति बना सकता है। यद्यपि पदार्थ और ज्ञान क्रियामें भेद किया जा सकता है फिर भी वे अभिन्न रहते हैं।

मनरूपी समुद्रमें वृत्ति उठती है। कुछ काल तक यह क्रिया करती है। तब यह सामान्य चेतना द्वारके नीचे बैठ जाती है। चेतनाके उपरिस्तरसे यह अर्ध चेतन मनमें गहरी उतर जाती हैं। वहां यह क्रियाका सूक्ष्म रूप होकर संस्कार बन जाती है। संस्कार चित्तमें रहते हैं। वह खोये नहीं जाते। पुरानी वृत्ति जब सचेत मनके उपरिस्तल पर फिर आ जाती है तो वह स्मृति कहलाती है।

बीजसे वृक्ष होता है और वृक्षमें फिर बीज बनता है। यह कार्य-कारणका चक्र कहलाता है। इसी प्रकार वृत्ति

संस्कारको बनाती है और संस्कार फिर वृत्ति बनाता है। जैसे बीज-वृक्षके उदाहरणमें उसी प्रकार यहां भी कार्य-कारणका चक्र चलता रहता है। यह चक्र अनादि है परन्तु दिव्य ज्ञान और मोक्षकी प्राप्ति होनेसे इसका अन्त हो जाता है। ये प्रकृतिमें लय हो जाते हैं। जीव-न्मुक्त पर इनका प्रभाव नही पडता।

प्रारब्धका स्थान क्या है? यह चित्त है। सारे संस्कार चित्तमें निश्चेष्ट पड़े रहते हैं, न केवल इसी जन्मके किन्तु अनादि कालसे पूर्व जन्मोंके भी। पशु जीवनके संस्कार, देव योनिके संस्कार, राजाके जीवनके, कृषकके जीवनके सारे संस्कार चित्तमें छिपे पड़े रहते हैं। मनुष्य जन्ममे केवल उसी प्रकारके संस्कार क्रिया शील होंगे जो उस जन्मके उपयुक्त होंगे। अन्य प्रकारके संस्कार प्रच्छन्न और निष्क्रिय रहेंगे।

शक्तियोंकी भाति संस्कार भी एक दूसरेकी सहायता करते हैं। जब आप किसी मनुष्यको असाध्य रोगमें ग्रसित देखते हो तो आपके मनमें दयाका संचार हो जाता है, आपके पुराने दयामय कर्मोंके संस्कार इकट्ठे हो जाते हैं, आपको रोगीकी सहायता औरसेवा करनेको बाध्य कर देते हैं। इसी प्रकार जब आप किसी मनुष्यको

आर्थिक दशासे हीन देखते हो तो आपके उदारता पूर्वक दानके पूर्व कर्मोंके सारे संस्कार सचेत मनके ऊपर आ जाते हैं और आपको उसकी सहायताके लिये बाध्य कर देते हैं। आप अपनी सम्पत्तिमेंसे उसे भी एक भाग देने लगते हो। जब किसी धार्मिक कार्यका संस्कार उभरा हुआ हो तो उसका विरोधी संस्कार भी प्रकट हो सकता है और उसके पूर्वगत संस्कारकी पूर्णतामें बाधक हो सकता है यह धार्मिक और अधार्मिक संस्कारोंकी टक्कर है।

स्थूल शरीर भले ही मर जावे परन्तु कर्मोंके, भोगोंके और विचारोंके संस्कार मृत्युके बाद भी आपका अनुसरण करते हैं जब तक कि आप मोक्ष प्राप्त नहीं कर लेते। यह उपाधियां मृत्यु के पीछे आपके साथ-साथ रहती हैं। यह उपाधियां परिवर्तनशील हैं क्योंकि आप प्रत्येक मृत्युके समय भिन्न-भिन्न प्रकारके संस्कार ले जाते हो। अनेकों जन्मोंमें आप भिन्न-भिन्न प्रकारके संस्कार बनाते हो। जो निश्चित उपाधियाँ मृत्युके बाद आपके साथ जाती हैं, वह हैं ज्ञानेन्द्रियां, कर्मेन्द्रियां, प्राण मन और कारण शरीर जो लिंग शरीरका आधार होता है। संस्कारोंका नाश या कारण शरीरका नाश ही

मोक्ष प्राप्त कराता है। यह ब्रह्मज्ञान प्राप्त कराता है। जब तक ब्रह्मज्ञान प्राप्ति द्वारा सारे संस्कार जल नहीं जावें आपको बारम्बार जन्म लेना पड़ेगा। जब संस्कार मिट जावेंगे तो ब्रह्मज्ञान स्वयं प्रकाश करने लगेगा।

आपके मनमें दो पदार्थों ने बड़ा गहरा प्रभाव डाला है। एक स्त्री और दूसरा बिच्छू। गर्मीके दिनोंमें आपको निद्राके समय नित्य ही बिच्छूका विचार सताता है। इस भयसे आपको नित्य ही बिच्छू डंककी पीड़ा होती है।

१५—दिनचर्या

आध्यात्मिक कार्यक्रम

पूर्णकाल साधकोंके लिये आध्यात्मिक दिनचर्या दी जाती है। जो दफ्तरोंमें काम करते हैं वे अपनी सुविधा और समयके अनुसार आवश्यक परिवर्तन हेर-फेर कर सकते हैं।

१	जप और ध्यान	प्रातः	४ घन्टे
		रात्रि	४ घन्टे
२	स्वाध्याय	....	३ घन्टे
३	मुलाकात (यदि आवश्यक हो)		१ घन्टा
४	आसन, प्राणायाम	प्रातः	१ घन्टा
		रात्रि	१ घन्टा

५	सैर	....	....	१ घन्टा
६	निद्रा	....	....	५ घन्टे
७	सेवा	....	....	१½ घन्टा
८	स्नानादि	....	....	१ घन्टा
९	भोजन	....	....	१ घन्टा
१०	विश्राम	....	....	½ घन्टा
				२४ घन्टा

प्रारम्भमें चौबीसों घन्टे परमात्मामें मनको लगाना कठिन होता है। ध्यान समाप्त होते ही मन भागने लगेगा और अपनी पुरानी आदतों पर कार्य करनेकी चेष्टा करेगा। इसकी चेष्टा रोकनेके लिये आप क्या करोगे? आप इसे अन्य सात्विक पदार्थ दो। इसे भिन्न-भिन्न प्रकारके पदार्थ चाहिये। अब कुछ घन्टोंके लिये दार्शनिक पुस्तकें पढ़ो। जैसे ही स्वाध्याय समाप्त हो, जो कुछ आपने पढ़ा है उसे नोट कर लो। इसमें भी थोड़ा समय लगा सकते हो। यह मनको ढीला कर देगा। मनके लिये यह विनोद बनेगा। आप थोड़ा समय दरिद्रों, रोगियोंकी सेवामें अपनी सामर्थ्यके अनुसार लगा सकते हो। आपकी दिनचर्याके लिये कार्यक्रम नीचे देते हैं :—

ध्यान	....	८ घन्टे
स्वाध्याय	....	४ घन्टे
लिखना	....	२ घन्टे
सेवा	....	२ घन्टे
भोजन, स्नान, व्यायाम	....	२ घन्टे
निद्रा	....	६ घन्टे
		२४ घन्टे

ॐ पूर्णमदः, पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः
हरि ॐ तत्सत